Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ए.९३८८
२५२५

3.3 VHP

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भरत-चरित्र

ड़-१३९९
२५८५

श्री रामकिंकर उपाध्याय

तुलसी साहित्य परिषद
४२।१, स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता—७

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकाशक
तुलसी साहित्य परिषद
४२।१, स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता—७

आवरण शिल्पी
शशिकान्त

प्रथम संस्करण
रामनवमी १९६२

मुद्रक
श्री देवप्रसाद मित्र
इल्म प्रेस
६३, विडन स्ट्रीट, कलकत्ता—६

मूल्य ३·००

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दो शब्द

श्री तुलसी साहित्य परिषद के उद्देश्यों में सन्त साहित्य पर उत्कृष्ट रचनाओं का प्रकाशन एक मुख्य उद्देश्य है और तदनुरूप ही परिषद की ओर से आप सभी की सेवा में परिषद के प्रथम पुष्प के रूप में भारत के उत्कृष्ट मानस व्याख्याता माननीय श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय द्वारा लिखित "रामचरित मानस में शिवतत्व" प्रकाशित की जा चुकी है। यह लिखना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पुस्तक का कलेवर छोटा होते हुए भी अति गहन और गूढ़ तत्वों से निहित है। तदर्थ ही देश-विदेशों से इस मानस में शिवतत्व की माँग आज दिन भी सजीवता के साथ आ रही है। प्रथम प्रयास से उत्साहित होकर मैंने आदरणीय उपाध्यायजी से पुनः प्रार्थना की कि भरत-चरित्र "जो कि आपका सर्वप्रिय विषय है" पर सरस एवं भावपूर्ण पुस्तक लिखकर परिषद को प्रदान करें, जिससे परिषद् द्वितीय पुष्प के रूप में जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत कर सके। मान्यवर किंकरजी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए और अत्यधिक सरस एवं भावपूर्ण शैली में भरत-चरित्र लिखकर परिषद् को गत वर्ष प्रदान की, वस्तुतः यह हमलोगों की अनवधानता के कारण ही विलम्ब से प्रकाशित हो रही है, जिसके लिये हम अपने पाठक एवं श्री उपाध्यायजी से क्षमा प्रार्थी हैं। भरत-चरित्र के विषय में मैं अधिक क्या कहूँ। स्वयं गोस्वामीजी ने कहा है कि--

भरत सरिस को राम सनेही।
जप जप राम राम जप जेही॥

पाठकों को मानस में शिवतत्व में उपाध्यायजी की जिस आध्यात्मिक शैली का पुट मिला है, भरत-चरित्र में उनको कहीं अधिक उत्कृष्ट भावनात्मक प्रेम एवं विशिष्ट रसात्मक वर्णन मिलेगा। प्रकाशन से पूर्व ही उपाध्यायजी के हजारों श्रोताओं की भरत-चरित्र के लिये माँग आ रही थी, हमें दुःख है कि हम उनकी माँग की पूर्ति देर से कर रहे हैं।

श्री रामकिंकरजी के हमलोग आभारी हैं, जो हमारे प्रकाशन एवं प्रवचन सम्बन्धी कार्यक्रमों में बराबर सहयोग देते हैं, और परिषद यह आशा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करती है कि भविष्य में भी हमें उनका सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा। जिन सहयोगियों ने हमें भरत-चरित्र के प्रकाशन-कार्य में हमारी सहायता की है, उन्हें भी हम धन्यवाद देते हैं।

जनता जनार्दन की सेवा में परिषद का द्वितीय पुष्प भरत-चरित्र भेंट कर रहे हैं। प्रकाशन की त्रुटियाँ होनी सहज है, आशा है विज्ञ पाठक त्रुटियों का परिमार्जन कर हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

बैजनाथ तापड़िया
प्रधान मंत्री,

श्री तुलसी साहित्य परिषद
४२।१, स्ट्राण्ड रोड,
कलकत्ता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लेखन से प्रकाशन तक

भरत-चरित्र का लेखन प्रारम्भ किया गया था एक लेख के रूप में, जिसे 'कल्याण' के कुछ अङ्कों में क्रमशः प्रकाशित होना था। कल्याण के दस वर्ष से भी अधिक पुराने अङ्कों में इसका कुछ भाग प्रकाशित भी हुआ। पर जब लिखने चला तो वह विस्तृत ही होता चला गया। लिखते समय मेरे समक्ष पाठक की पठनीयता का दृष्टिकोण भी नहीं था। वह तो एक यांत्रिक प्रणाली जैसा प्रतीत हो रहा था, जिसमें मैं स्वयं ही उसका लेखक और पाठक दोनों ही था। वह एक ऐसी अद्भुत अनुभूति थी, जो स्वयं मुझको ही आज स्वप्न जैसी प्रतीत होती है।

फिर पाण्डुलिपि अनेकों के हाथ पहुँची। ये सब मेरे स्नेही थे, जो प्रकाशन से पूर्व ही उसका रस पाना चाहते थे। प्रकाशन की बात चली, पर बीच में पाण्डुलिपि ही दो बार अन्तर्धान हो गई। एक भावुक महिला के सन्दूक की चोरी हुई, तो यह ग्रन्थ भी उसमें था। चोर वस्त्र तो ले गए, पर इसे निरर्थक समझ कर कहीं दूर जङ्गल में फेंक गए। हमारे एक दूसरे स्नेही सज्जन के पास तो यह कई वर्षों पड़ी रही। उन्हें इससे इतनी अधिक ममता हो गई थी कि बार-बार याद दिलाने पर भी लौटाना भूल जाते थे। मैं शङ्कालु और निराश हो गया, यह सोचकर कि सम्भव है पाण्डुलिपि खो गई हो। पर अन्त में लौटकर यह प्रति पुनः मेरे पास आई। कुछ पन्ने खो गए थे और इसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता थी। इस कार्य का भार मैंने श्रीमती शीला पर छोड़ दिया, उन्होंने तथा उनके पति त्रिलोकीनाथ कोचर ने इसे सुव्यवस्था के साथ ही टाइप करा कर पाण्डुलिपि खो जाने के भय से मुक्त करा दिया। एतदर्थ उन्हें धन्यवाद।

प्रकाशन का कार्य हो रहा है 'तुलसी साहित्य परिषद' द्वारा। इसका श्रेय है श्री बैजनाथजी तापड़िया और पं० प्यारेलालजी शर्मा के अदम्य उत्साह को। संस्था ने थोड़े ही समय में तुलसी-साहित्य की सेवा का जो कार्य किया है, वह सराहनीय है।

—रामकिंकर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भारत विख्यात मानस मर्मज्ञ
पं० श्रीरामकिंकर उपाध्याय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२५८८५
हि१३८६
हि१३८६

॥ श्री रामः शरणं मम ॥

॥ अमृत-मन्थन ॥

गोस्वामीजी की लेखनी से जिन अनेक उत्कृष्ट पात्रों का चित्रण हुआ है असंदिग्ध रूप में भरत उनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। और इसका कारण है श्री भरत के साथ गोस्वामीजी की पूर्ण एकात्मकता। यूँ तो किसी भी पात्र का यथार्थ चित्रण बिना उससे तादात्म्य की अनुभूति के होना सम्भव नहीं है। फिरभी, उस तादात्म्य में भी एक भेद तो होता ही है। साधारण जीवन में एक पात्र से स्वभावगत भिन्नता होते हुए भी महान लेखक उससे अल्पकालिक एकता प्राप्त कर लेता है। और वर्णन के पश्चात् उससे पृथक् हो जाता है। पर हम दूसरी ओर किसी ऐसे पात्र की कल्पना करें जिससे उसकी एकता सर्वकालिक हो, जो साहित्य में ही नहीं उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लेखक की चिरसंगी हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया में स्वयं साहित्यकार का जीवन साकार हो उठे वस्तुतः यही तादात्म्य पूर्ण होता है। और तब स्वभावतः ऐसे पात्र का चित्रण अद्वितीय होता है। मानस के श्री भरत से गोस्वामीजी का तादात्म्य ठीक इसी प्रकार का है।

भक्ति के विविध रूपों का चित्रण मानस में किया गया है। और विविध धाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं पृथक् पृथक् पात्र पर भक्ति का वह स्वरूप जो स्वयं गोस्वामीजी को अभीष्ट है, प्रिय है उसकी समग्रता भरत के जीवन में ही चरितार्थ होती है। स्वयं अपने लिये उन्होंने जिस जीवन-दर्शन का आश्रय लिया, साधन की जिस प्रणाली को अपनाया, वह भरत-चरित्र में निहित है।

वस्तुतः गोस्वामीजी जिस समन्वयी प्रणाली के समर्थक हैं उसका मूल श्रोत भरत-चरित्र से ही लिया गया है। भरत-चरित्र में कर्म, ज्ञान और भक्ति की जो त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है, वह अनोखी है। देखा यही जाता है कि इन तीनों में किसी एक की स्वीकृति व्यवहारतः अन्यों की अस्वीकृति बन जाती है। कर्म और कर्त्तव्य की दुहाई देने वाला भक्ति की उपेक्षा करता है। क्यों कि ऐसा लगने लगता है कि दयालु ईश्वर की स्वीकृति से कर्म की वह सजग प्रेरणा समाप्त हो जाती है जो "निजकृत कर्म भोग सब भ्राता" के स्वीकार करने पर बनी रहती है। अतः बहुधा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कर्त्तव्य परायणता का आग्रही " भक्ति " को दुर्बल व्यक्ति का धर्म समझता है। दूसरी ओर भक्ति पथ का पथिक दयालु ईश्वर से जिस आशा का सन्देश और आश्वस्तता की अनुभूति पाता है वह कर्म सिद्धान्त की कठोर प्रक्रिया से विरत बना देता है। ' ज्ञानी भक्त और कर्म परायण दोनों को ही सत्य से दूर केवल कर्म बन्धन और भावना में पड़ा हुआ मान लेता है। वस्तुत: इन तीनों के समन्वय का अभाव व्यक्ति के जीवन को किसी न किसी अंश में दुर्बल बना देता है। पर इन तीनों के एकत्रीकरणमें व्यवहारत: कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं। एक समस्या तो यही है कि इन तीनोंमें 'इस या उस' की स्वीकृति किसी सत्यको दृष्टिगत रख कर नहीं की जाती। स्वीकृतिमें भी स्वभावगत संसकार मुख्य होते हैं। इसका एक भयावह परिणाम होता है- मान लें एक व्यक्ति की सक्रियता और एक चरित्र में त्रुटि है। स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्तिको कर्म सिद्धान्त अप्रिय लगे और एक दयालु भगवान के गुणों का बखान करके आत्म सन्तोष पाने का प्रयास करे। अब ऐसे व्यक्ति की भक्त के रूप में स्वीकृति का फलितार्थ क्या होगा ? उस व्यक्ति की त्रुटि को हम भक्ति सिद्धान्त की त्रुटि के रूप में देखेंगे। इसी प्रकार एक रजोगुणी व्यक्ति की अहं मूलक स्फूर्ति और दूसरे व्यक्ति का बुद्धि वैभव और अंह के प्रति झुकाव कर्म और ज्ञान की प्रेरक बन कर इसी प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं। अत: फलितार्थ रूपमें तीनों ही वह परिणाम उत्पन्न नहीं कर पाते जिसकी सैद्धान्तिक रूप में उनसे अपेक्षा की जाती है। अत: सही अर्थों में तीनों का समन्वय एक दूसरे की कमी को पूर्ण कर सकते हैं। जैसे कर्म सिद्धान्त की सक्रियता, भक्ति सिद्धान्त में जिस निष्क्रियता का भय है उसे न आने देगी। साथ ही स्वयं कर्म सिद्धान्त भक्ति के सहयोग से अपनी अहं प्रधान वृत्ति पर विजय पा सकता है। इसी प्रकार ज्ञान में दोनों ही भय है। वह व्यक्ति को निष्क्रियता और अहंकार दोनों ओर प्रेरित कर सकता है। भक्ति और कर्म के सहयोगसे इन दोनों कठिनाइयों से मुक्त होकर वह सत्य की उपलब्धि का महान साधन बन जाता है।

अत: समन्वय साधना को जीवन में चरितार्थ करने वाले जिस पात्र की हमें अपेक्षा है, उसकी उपलब्धि भरत के रूप में हो जाती है। मानस के विविध प्रसंगों में हम उनकी इस विशेषता का दर्शन कर सकते हैं और इसका ही स्वाभाविक परिणाम है मानस के समस्त पात्रों में भरत के चरित्र की उत्कृष्टता। अनेक पात्रों में उत्कृष्टता होते हुए भी एकांगिता है। भरत का चरित्र सन्तुलित और पूर्ण है। अयोध्या काण्ड जो साहित्य और भावनात्मक दोनों ही दृष्टियों से मानस का सर्वश्रेष्ट अङ्ग है वस्तुत: भरत की गुण गरिमा का गायक है। भरत की सराहना में वन्दना प्रसगं में लिखित पंक्ति " जासु नेम व्रत जाय न बरना " भरत और अयोध्या काण्ड दोनों के प्रति समान रूपसे उद्धृत की जा सकती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भरत के व्यक्तित्व का दर्शन हमें 'राम वन गमन' के पश्चात ही होता है। उसके पहले उनका चरित्र सर्वथा मूक समर्पण का अद्भुत दृष्टान्त है। जिसे देख कर कुछ भी निर्णय करपाना साधारण दर्शक के लिये कठिन ही था। इसी सत्य को दृष्टिगत रख कर गोस्वामी जी ने 'राम वन गमन' के मुख्य कारण के रूप में भरत प्रेम प्राकट्य को स्वीकार किया। जैसे देवताओं ने समुद्र मन्थन के द्वारा अमृत प्रगट किया था ठीक उसी प्रकार रामने भी भरत समुद्र का मंथन करने लिये १४ वर्षों के विरह का मन्दराचल प्रयुक्त किया। और उससे प्रगट हुआ "राम प्रेम का दिव्य अमृत"

प्रेम अमिय मन्दर विरह भरत पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर ॥

प्रस्तुत पुस्तक में इसी "अमृत मन्थन" की गाथा है।

शैली-भावना प्रबल है और एक विशिष्ट भावस्थिति में लिखी भी गई है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राम प्रेम मूरति तनु आही

श्री देवर्षि नारदने 'प्रेमैव कार्य प्रेमैव कार्यम्' कहकर जीव का एकमात्र कर्तव्य प्रेम ही है, भक्तिसूत्रमें ऐसा निर्देश किया, किंतु प्रश्न होता है कि प्रेम है क्या ? विशेष रूपसे इस युगमें जब ज्ञान, भक्ति और धर्मके नाम पर अनाचार का बोलबाला है। आज मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उच्छृंखलता की ओर है, और यह उच्छृंखलता न केवल भौतिकवादियों में, अपितु आध्यात्मिक कहे जानेवाले लोगों में भी व्याप्त है। 'बड़ो नेम ते प्रेम' कहकर प्रेमके नाम पर नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका त्याग और—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥

—कह कर गुरुजनों का विरोध किया जाता है।

भविष्य-द्रष्टा महाकवि अपनी तत्कालीन परिस्थितियोंसे व्यथित हो गये। उन्होंने देखा-प्रेमकी आड़में किस प्रकार कुछ लोगोंके द्वारा जनता मार्गभ्रष्ट हो रही है। और तब उन्होंने हमारे समक्ष प्रेमका एक ऐसा दिव्य आदर्श उपस्थित किया, जिसमें उन्होंने यह पूर्ण रीतिसे सिद्ध कर दिया कि प्रेममें नियमका त्याग अवश्यम्भावी नहीं। नेमका त्याग प्रेममें हो जाय यह सम्भव है पर यह कोई आवश्यक नियम नहीं। और हमारे लिये यही प्रेमादर्श अनुकरणीय भी है। प्रेमके नामपर मन अनर्गल होकर यत्र-तत्र न बहने लगे, इसके लिये हमें सदा जागरूक रहना चाहिए।

उन्हींकी लेखनीसे श्रीभरतजीका दिव्य प्रेमादर्श व्यक्त हुआ और यह कहता हुआ हमारे हृदयको अपनी ओर आकृष्ट करने लगा—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

अंतिम पंक्तिमें कलिकालकी कठिनताकी ओर संकेत किया गया। पर उसमें यही मार्ग निरापद है। आइये, हम भी उस प्रेमामृतके बिन्दुओंका पान करनेकी चेष्टा करें, जिसे भक्त कविकी लेखनीने हमारे लिये सुलभ कर दिया है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लोकलोचन सुखदाता भगवान् श्रीराघवेन्द्रने भ्राताओं तथा सखापरिकरके साथ सरयूके समुज्ज्वल तटपर कन्दुक-क्रीड़ाका संकल्प किया । खेलमें दो दलों का होना स्वाभाविक ही था । एक दलका नेतृत्व कर रहे थे स्वयं राघव । दूसरे दल का नेतृत्व किसे सौंपा जाय, यह एक समस्या थी । श्रीलक्ष्मणजी से तो यह आशा की नहीं जा सकती । खेलमें भी रामके विरुद्ध होना उन्हें असह्य था । यह भी बहुत उच्च कोटिका प्रेम है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु फिर क्रीड़ा भी कैसे हो ।

श्रीलक्ष्मणजी उतावले हो रहे थे । क्रीड़ाकी चुनावपद्धतिकी अवहेलना कर वे स्वयं ही श्रीराघवेन्द्रके निकट जाकर खड़े हो गये । दर्शकोंने देखा और श्रीलक्ष्मणजी के प्रेमको देख वे आनन्दविभोर हो गये । किंतु श्रीभरतजी प्रभुके चरणकमलोंकी ओर दृष्टि किये शान्त खड़े थे । निश्चित रूपसे दर्शकों को उनके प्रेममय उच्चभावोंका पता लगाना कठिन था । श्रीलक्ष्मणजीका प्रेम स्पष्ट था । इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे दिखावा करते हों । पर वे सदा ही रामप्रेममें ऐसे उन्मत्त रहते थे कि साधारण व्यक्ति भी उनके प्रेमको देख सकता था । किंतु श्रीभरतजी स्वभावसे ही बड़े संकोची और गम्भीर थे । उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य तो रामपदप्रेम ही था । फिर भी वे अपने हृद्गतभावोंको सदा छिपाये रखते थे, जिसे समझ सकना साधारण व्यक्तियोंकी तो कथा ही क्या, बड़े-बड़ो के लिये भी कठिन था । उनकी विचारसरणी सर्वथा अलौकिक थी । वे क्रीड़ा-स्थलपर खड़े-खड़े मानो यही सोच रहे थे कि मैं तो प्रभुकी क्रीड़ाका एक उपकरणमात्र हूँ । वे चाहे जैसा उपयोग करें, मुझे इससे क्या ? मुझे तो उनकी प्रसन्नता ही अभीष्ट है । और तब हम देखते हैं उनको प्रतिद्वन्द्वी दलका नेतृत्व करते हुए ।

सारा आकाश भरा हुआ था देवताओंके विमानोंसे । वे आये हुए थे इस अद्भुत क्रीड़ाके दर्शनार्थ । भगवान् और भक्त का यह खेल बड़ा ही आनन्दवर्धक रहा । और हुआ वही जो सदासे होता आया है । भक्त विजयी और भगवान् पराजित ! भैया भरतके जयकारसे सरयूतट मुखरित हो उठा । सरयूका कल-कल निनाद भी मानों भरत की जयका ही उच्चारण कर रहा था । श्रीभरतजी तो लज्जित हो रहे थे, साथ ही प्रसन्न भी । प्रभुकी महती कृपा और स्नेहको देखकर और अन्तरमें राघवेन्द्रकी वही इच्छा जानकर ! ....

राम-लषन इक ओर,
भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल,
गनि गनि गोइयां बांटि लये ॥ १ ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कंदुक-केलि-कुँसलें हय चढ़ि चढ़ि,
मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये ।
कर-कमलनि बिचित्र चौगानें,
खेलन लगे खेल रिझये ॥ २ ॥

व्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत,
खेलक पेखक छांह छये ।
सहित समाज सराहि दसरथहि, ।
बरषत निज तरु-कुसुम-चये ॥ ३ ॥

एक ले बढ़त, एक फेरत,
सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये ।
एक कहत भइ हारि रामजू की,
एक कहत भइया भरत जये ॥ ४ ॥

प्रभु बकसत गज-बाजि, बसन-मनि,
जय-धुनि गगन निसान हये ।
पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि
जनम न दुसरे द्वार गये ॥ ५ ॥

नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ,
सुर-सिद्धानि बरदान दये ।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे,
गावत-सुनत चरित नित ये ॥ ६ ॥

हारे हरष होत हिय भरतहि,
जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती,
तेइ जे एहि रंग रए ॥ ७ ॥

धन्य है प्रभुके सौशील्य और उनकी भक्तवत्सलताको । पर एक बात और भी तो है, यह भक्त भी कैसा है जिसने प्रभुकी इच्छामें अपनेको शून्य कर डाला है। अपनेको उनकी लीलाका सहज उपकरण बना दिया है । पर उसे लोगोंने उस समय नहीं जाना—प्रेमामृत अव्यक्त था । प्रभु को चिन्ता हुई इस प्रेमामृत को सुलभ करनेकी और तब························ ।

(२)

प्रभुकी परम पुनीत पत्रिका लेकर दूत पावन रामपुरमें पधारे । श्रीदशरथजी आनन्द-विभोर अपने लाड़ले लालका कुशल-मंगल पूछनेमें व्यस्त थे । उसी समय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किसीने आकर भैया भरतसे यह मंगलमय संवाद सुनाया। उस समय वे बालकोंके साथ क्रीड़ा में निमग्न थे—

'खेलत रहे तहां सुधि पाई'

आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! प्रिय वियोगी और क्रीड़ा ! भला रामसे पृथक् होकर वे खेलमें कैसे संलग्न थे । पर सचमुच वे खेलमें ही तो संलग्न थे ।

उनका खेल साधारण प्राकृत बालकों-जैसा न होकर प्रेमियों जैसा था। प्रेमी अपने प्रियतमके वियोगमें उनकी ही लीलाओं का अनुकरण कर अपने व्यथित हृदयको सान्त्वना प्रदान करनेकी चेष्टा करते हैं। श्रीकाकभुशुण्डिजी ने भी अपनी बाल्यावस्था की इसी स्थितिकी ओर संकेत किया है—

खेलउं तहूँ बालकन मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला ॥

प्रेममूर्ति गोपियोंने भी रासमण्डलसे भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर ऐसा ही किया था ।

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यचक्रुस्तदात्मिकाः ॥

(श्रीमद्भा० १०/३०/१४)

श्रीकृष्णचन्द्रकी खोजमें व्याकुल हुई गोपियां इस प्रकार उन्मत्तोंके समान प्रलाप करती हुई तद्रूप होकर भगवान्की लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ।

'तदात्मिका' शब्द भी बड़ा ही भावपूर्ण है। वियोगकी पराकाष्ठामें चिन्तनकी अधिकतासे तद्रूप हो जाना स्वाभाविक है। और ऐसी परिस्थितिमें अपने आप ही ऐसी लीला होने लगती है। हां, तो श्री भरतजीने अपने प्राणधन प्रभु के लिये यह खेल प्रारम्भ किया था। इसी मिससे बाल्यकालमें प्रभु द्वारा की गई उनके साथ अनेक क्रीड़ाओं का स्मरण कर वे अपने को प्रभुके निकट ही देखनेकी भावनामें निमग्न थे। फिर भरतजी उन गम्भीर प्रेमियोंमें भी तो हैं जो लोककी तो कथा ही क्या, प्रियतमपर भी अपने प्रेमको व्यक्त करना उचित नहीं समझते। उनकी उच्चाकांक्षाका चित्रण इन चौपाइयोंसे होता है—

जानहुँ राम कुटिल करिमोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥

वे नहीं चाहते थे कि लोग उन्हे भक्त समझें, प्रेमी समझें। उनके हृदयमें प्रेमका विशाल समुद्र लहरा रहा था। पर वह था पूर्ण शान्त। प्रभुकी पत्रिका मानो पूर्णचन्द्र बनकर इस प्रशान्त समुद्रको उद्वेलित करने आयी थी ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि,
मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये ।
कर-कमलनि बिचित्र चौगानें,
खेलन लगे खेल रिझये ॥ २ ॥

व्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत,
खेलक पेखक छांह छये ।
सहित समाज सराहि दसरथहि, ।
बरषत निज तरु-कुसुम-चये ॥ ३ ॥

एक ले बढ़त, एक फेरत,
सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये ।
एक कहत भइ हारि रामजू की,
एक कहत भइया भरत जये ॥ ४ ॥

प्रभु बकसत गज-बाजि, बसन-मनि,
जय-धुनि गगन निसान हये ।
पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि
जनम न दुसरे द्वार गये ॥ ५ ॥

नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ,
सुर-सिद्धनि बरदान दये ।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे,
गावत-सुनत चरित नित ये ॥ ६ ॥

हारे हरष होत हिय भरतहि,
जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती,
तेइ जे एहि रंग रए ॥ ७ ॥

धन्य है प्रभुके सौशील्य और उनकी भक्तवत्सलताको। पर एक बात और भी तो है, यह भक्त भी कैसा है जिसने प्रभुकी इच्छामें अपनेको शून्य कर डाला है। अपनेको उनकी लीलाका सहज उपकरण बना दिया है। पर उसे लोगोंने उस समय नहीं जाना—प्रेमामृत अव्यक्त था। प्रभु को चिन्ता हुई इस प्रेमामृत को सुलभ करनेकी और तब························ ।

(२)

प्रभुकी परम पुनीत पत्रिका लेकर दूत पावन रामपुरमें पधारे। श्रीदशरथजी आनन्द-विभोर अपने लाड़ले लालका कुशल-मंगल पूछनेमें व्यस्त थे। उसी समय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किसीने आकर भैया भरतसे यह मंगलमय संवाद सुनाया । उस समय वे बालकोंके साथ क्रीड़ा में निमग्न थे—

'खेलत रहे तहां सुधि पाईं'

आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! प्रिय वियोगी और क्रीड़ा ! भला रामसे पृथक् होकर वे खेलमें कैसे संलग्न थे । पर सचमुच वे खेलमें ही तो संलग्न थे ।

उनका खेल साधारण प्राकृत बालकों-जैसा न होकर प्रेमियों जैसा था । प्रेमी अपने प्रियतमके वियोगमें उनकी ही लीलाओं का अनुकरण कर अपने व्यथित हृदयको सान्त्वना प्रदान करनेकी चेष्टा करते हैं । श्रीकाकभुशुण्डिजी ने भी अपनी बाल्यावस्था की इसी स्थितिकी ओर संकेत किया है—

खेलउं तहूँ वालकन मीला । करउँ सकल रघुनायक लीला ॥

प्रेममूर्ति गोपियोंने भी रासमण्डलसे भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर ऐसा ही किया था ।

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यचक्रुस्तदात्मिकाः ॥

(श्रीमद्भा० १०/३०/१४)

श्रीकृष्णचन्द्रकी खोजमें व्याकुल हुई गोपियां इस प्रकार उन्मत्तोंके समान प्रलाप करती हुई तद्रूप होकर भगवान्‌की लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ।

'तदात्मिका' शब्द भी बड़ा ही भावपूर्ण है । वियोगकी पराकाष्ठामें चिन्तनकी अधिकतासे तद्रूप हो जाना स्वाभाविक है । और ऐसी परिस्थितिमें अपने आप ही ऐसी लीला होने लगती है । हां, तो श्री भरतजीने अपने प्राणधन प्रभु के लिये यह खेल प्रारम्भ किया था । इसी मिससे बाल्यकालमें प्रभु द्वारा की गई उनके साथ अनेक क्रीड़ाओं का स्मरण कर वे अपने को प्रभुके निकट ही देखनेकी भावनामें निमग्न थे । फिर भरतजी उन गम्भीर प्रेमियोंमें भी तो हैं जो लोककी तो कथा ही क्या, प्रियतमपर भी अपने प्रेमको व्यक्त करना उचित नहीं समझते । उनकी उच्चाकांक्षाका चित्रण इन चौपाइयोंसे होता है—

जानहुँ राम कुटिल करिमोही । लोग कहउ गुरु साहिव द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरें । अनुदिन वढ़उ अनुग्रह तोरें ॥

वे नहीं चाहते थे कि लोग उन्हे भक्त समझें, प्रेमी समझें । उनके हृदयमें प्रेमका विशाल समुद्र लहरा रहा था । पर वह था पूर्ण शान्त । प्रभुकी पत्रिका मानो पूर्णचन्द्र बनकर इस प्रशान्त समुद्रको उद्वेलित करने आयी थी ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

समाचार सुनकर दौड़े हुए अनुजके साथ वे सभामण्डपमें आये। दौड़ते हुए आनेमें उत्साह था, पर वहाँ लोगोंकी भीड़ देख स्नेह, लज्जा, संकोच और गम्भीरताके बोझसे चरण धीमे पड़ गये। पितृचरणोंमें नम्रतापूर्वक प्रणाम करके रुद्ध कण्ठको किसी प्रकार स्पष्ट करते हुए बोले—

(पूछत अति सनेह सकुचाई।) तात कहाँ ते पाती आई॥

कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देश।

उनकी इस स्नेहमयी उत्कण्ठाको देख श्रीदशरथजीने पत्र पढ़कर सुनाया। प्रेम-समुद्र पत्ररूप पूर्णचन्द्रके दर्शनसे तरंगायित हो उठा। रोमांच और प्रेमाश्रुओंके मिससे वह व्यक्त होने लगा। उन प्रेमाश्रुओंके दर्शनसे लोग कृतकृत्य हो गये। लोगोंको क्या पता था कि उनके हृदयमें इतना स्नेह उमड़ रहा है। पर आज आँसुओंने उसे व्यक्त कर ही दिया।

प्रेम छिपानेकी वस्तु है सही, पर वह छिपनेकी नहीं। किसी भक्तने बड़ा ही सुन्दर कहा है—

प्रेम छिपाये ना छिपे, जा घट परगट होय।
जो मुखते कछु ना कहै, तो नैन देत हैं रोय॥

प्रेमीके इस प्रेमबिन्दुमें वह क्षमता है जो महासागरमें नहीं। प्रेमके इस एक बिन्दुमें सारा समुद्र समा जाय, फिर भी उसकी थाह नहीं। फिर श्रीभरतजीके निकले प्रेमबिन्दुमें डूब गयी वह सारी सभा जिसमें बैठे हुए थे हिमालयके समान उच्च, गम्भीर, दृढ़ समुद्रके समान महामतिवाले। शेष कोई न बचा। इस प्रेमबिन्दुमें सिन्धु और हिमालयोंको भी लीन कर लिया। इस पवित्र बिन्दुमें स्नान कर सभी कृतकृत्य हो गये।

प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुखु लहेउ बिसेखी॥

क्या सचमुच लोगोंने उनके प्रेमको देखा। नहीं नहीं, वह ऐसा नहीं जिसे कोई देख ले। वह अगम है उनके लिए भी, जिन्होंने निर्माण किया है इस विश्व-प्रपंच का, जिनकी कृपा से पालित होता है सारा संसार और उनके लिये भी, जो अपनी दृष्टि-निक्षेपमात्रसे सृष्टिमें प्रलय कर देते हैं।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरिहर को॥

सभासदोंने जिसे देखा था, वह प्रेमसिन्धुके बिन्दुका एक प्रतिबिम्बमात्र था उनके प्रेमको कोई समझे, भला ऐसी क्षमता किसमें? कहाँ?

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

बारात के वाहन सजाने का कार्य श्री भरतजी को सौंपा गया और वह कार्य था भी उनको अत्यन्त प्रिय। प्रभु के वे महाभाग्यवान अश्व, जिन्होंने बार-बार प्रभु के शरीर का सुखद स्पर्श किया है, जो प्रभु के स्नेह-सत्कार द्वारा पालित हुए हैं, उनकी सेवा करना तो श्री भरतजी की नित्य-क्रिया का सर्वप्रमुख अंग था और वे अश्व भी तो केवल इन्हीं को देखकर संतुष्ट होते थे। प्रभु के वियोगी श्री भरत ही उनके लिये प्राणप्यारे राघवेन्द्र थे। वही नीलनीरद वपु, वही कमनीय कान्ति––भेद करना भी कठिन हो जाता था।

अश्व सजाये गये और बारात जनकपुर में पहुँच भी गयी। श्री भरत और प्रभु का मिलन हुआ। दोनों आनन्दमग्न हैं। श्री भरतजी की बड़ी इच्छा है कि वे प्रभु के मुखचन्द्र का एक बार दर्शन कर लें। पर नेत्र तो मानों प्रेम, नम्रता और सौशील्य के भार से इतने झुके हुए हैं कि मुख की ओर उठ ही नहीं पाते। एकटक प्रभु के चरण-कमलों पर ही दृष्टि गड़ाये वे खड़े रह गये।

विवाह के पश्चात् ही मातुल-निमन्त्रण आता है और प्रभु की इच्छा देख वे बिना ननु-नच के दीर्घकाल के लिये ननिहाल चले जाते हैं। प्रभु से अलग होना पड़ रहा है, पर भक्त प्रसन्न है वेदना होते हुए भी। अहा! प्रभु की इच्छा पूर्ण करने में उनका त्याग कितना महान् है, इसे तो कोई हृदयवाला ही समझ सकता है। पर कितना मूक बलिदान है यह!

पर लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया उनका वह स्नहबिन्दु भी, जो पत्रिका को सुनकर व्यक्त हुआ था। कौन समझें इस महात्यागी सनेही के गुप्त स्नेह को?

प्रभु तो चाहते थे प्रेमामृत को व्यक्त करना। तब उन्होंने उस महानाट्य का आयोजन किया, जिससे वह 'प्रेम-सुधा' पूर्ण रूप से प्रकट हो।

राम भगत अब अमिअ अघाहूँ। कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥

प्रभु ने महानाट्य का आयोजन कर डाला––'वनगमन' के रूप में। इसे देवताओं न भले ही भूभार-हरणार्थ माना हो, पर वास्तविक बात तो कुछ दूसरी ही थी। 'वीक्षितमेतस्य महाप्रलयः।' भ्रकुटि बिलास सृष्टि लय होई' रावणवध के लिये ही वे वन जायँ, यह पूर्ण सत्य नहीं। तब फिर क्या कारण

२

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

है ? पूछिये हमारे पारखी भक्त शिरोमणि से। वे कुछ विलक्षण रहस्य खोलना चाहते हैं—

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

श्री भरतजी का प्रेम लोगों से अव्यक्त था। उस प्रेम-सुधा को वे छिपाये हुए थे। उसे प्रकट करना प्रभु को अभीष्ट था। यह पयोधि ऐसा नहीं, जो साधारण मंथान से मथा जा सके। तब 'विरह मंदर' की सृष्टि की गयी। निश्चित रूप से यदि वन-गमन की घटना न होती, तो श्री भरतजी के प्रेम को संसार नहीं जान पाता। और 'राम भगत अब अमिअ अघाहूँ' का आमन्त्रण भी न प्राप्त होता। तब एक के बाद एक दुर्घटनाओं का एक ताँता लग जाता है।

राज्याभिषेक का साज, कैकेयी कुबुद्धि, कुयाचना, प्रभु का वन-गमन और महाराज की मृत्यु।

घटनाएँ बड़ी ही भयानक हैं। किसी भी हृदय को व्यथित करनेवाली। पर यह समुद्र-मन्थन की भूमिका थी। इसके बिना अमृत की प्राप्ति असम्भव थी।

महाराज श्री दशरथ के स्वर्ग-गमन के पश्चात् गुरुदेव के आज्ञानुसार दूत श्री भरतजी को लेने गये। उन्हें आज्ञा थी 'केवल ले आने की', कोई और समाचार बताना निषिद्ध था। गुरु वशिष्ठ की आज्ञा सुनते ही श्रीगणेश का स्मरण कर वे अवध की ओर प्रस्थान कर देते हैं। हृदय में एक अज्ञात भय और व्यथा समायी हुई है। वायुवेग घोड़ों पर बैठ श्री अवध के निकट पहुँचते हैं।

आज नगर-प्रवेश पूर्व-जैसा न था। मार्ग में न तो क्षेमकरी ने क्षेम की सूचना दी, न श्यामा ने अपने मधुर कण्ठ से स्वागत किया। कौए का कर्कश कण्ठ ही मानो भविष्य की सूचना दे रहा था। और उसके कण्ठ में भी न केवल कठोरता थी, अपितु करुण चीत्कार था। नगर की विशाल अट्टालिकाओं से कीर्तन और संगीत की सुमधुर ध्वनि भी आज नहीं सुनायी पड़ रही थी। पर इसके विपरीत शृंगाल और गर्दभ का शब्द हृदय को प्रकम्पित कर रहा था। वे सुन्दर सरोवर, जहां नगरवासिनी ललनाओं की भीड़ लगी रहती थी, जनशून्य हो रहे थे। सूर्योदय होने पर भी कमल प्रफुल्लित नहीं थे। न थी वहाँ भ्रमरों की भीड़। आज जल भी तरंगायित होकर जनसमूह को अपनी ओर आमन्त्रित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नहीं कर रहा था। म्लान चुपचाप पड़ा मानो यह इच्छा व्यक्त कर रहा था कि मुझे न छुओ, मुझे मौन रहने दो। आज सरयू को व्यथा हो गयी है। महाभाग्यवती सरयू ऐसी म्लान, उदास-सी क्यों पड़ी है ? प्रभु के सुखद संस्पर्श का नित्य अनुभव पानेवाली की यह दशा क्यों ? पर उत्तर कौन दे। वृक्ष पुष्प-फल के बोझ से झुके हुए नदी के जल का स्पर्श नहीं कर रहे हैं। पत्र-पुष्पविहीन मानो, बस, एक ही इच्छा व्यक्त कर रहे हैं—'हमें काटकर कोई जला दो। हममें सदा के लिये पतझड़ आ गया। हम इस भूमि में नहीं रहना चाहते।' सारे सुन्दर उपवन मानो दावाग्नि से झुलस दिये गये हों। पर दावाग्नि भला यहां कैसे ? यदि किसी प्रकार आग लग भी गयी तो बुझाने का तो समुचित प्रबन्ध हो सकता था। पर उन्हें कौन बताये कि यह वह दावाग्नि लगी है, जिसने न केवल वनों के वृक्षों को, अपितु पशु-पक्षी मृगों की तो कथा क्या—सारे नगरवासियों को जीवित होते हुए भी मृतवत् बना डाला है। वह दावाग्नि, जिसे बुझाने की शक्ति प्रलयकालीन मेघों में भी नहीं है। आज पक्षी अपने सुमधुर कण्ठ से 'भजहु राम रघुपति जन पालक' का उपदेश आने-जानेवालों को नहीं दे रहे हैं। राजमार्ग जनशून्य कैसे ? यत्र-तत्र कोई दीखता भी है तो भूषणहीन, म्लान, आँसू बहाता हुआ। आज भैया भरत का स्वागत करने के लिये जनसमूह उत्साहित होकर कोलाहल करता हुआ आगे नहीं बढ़ा। अट्टालिकाओं से न तो युवतियों ने मंगलमय लाजा ही बरसाया! कुछ लोगों ने देखा, वे दूर से ही प्रणाम करते हैं, पर उनके जुड़े हुए हाथ थर-थर काँप क्यों रहे हैं ? धार्मिक पुरवासियों से ऐसी उपेक्षा और विधिहीनता! हे भगवान! क्या हो गया इनको ? पूछने का मन होता है, पर पूछें किससे ? कोई निकट आये, तब न। चर भी साथ हैं अवश्य, पर मुख दूसरी ओर हैं। पूछने के लिय हाथ उठता है, मुख चरों की ओर करते हैं, पर कण्ठ भय और शोक से रुंध जाता है। हृदय सुनना नहीं चाहता। धैर्यशाली दूत भी अपने दुःख को छिपा नहीं पा रहे हैं। दीर्घ निःश्वास बरबस ही निकल पड़ता है। मुख दूसरी ओर करने पर भी आँखों से आँसू निकल कर भेद को व्यक्त करना चाहते हैं और तब वे आकाश की ओर देखने लग जाते हैं। स्वेदबिन्दुओं को पोंछने के मिस अपने उत्तरीय से आँसुओं को पोंछ लेते हैं। श्री भरत की स्थिति दावाग्नि-भयभीत मृग-जैसी हो रही थी। वे शीघ्र-से-शीघ्र अपने भैया के सुखद शीतल अंक में छिप जाने को उत्सुक हो उठे और तब वे घोड़ों को कैकेयी अम्बा के महल की ओर तीव्र गति से ले चले।

अवश्य ही पुरवासियों में से कुछ ने इसका दूसरा ही अर्थ लिया होगा। संकेत किया होगा—'कहा न था कि भरत की सम्मति बिना यह नहीं हुआ, तभी न देखो, पिताजी या बड़ी अम्बा के भवन की ओर पहले नहीं गये, यद्यपि उचित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यही था।' उस समय उनकी मान्यता क्रान्त बुद्धि प्रत्येक क्रिया का उसी पक्ष में अर्थ लगाये, यह स्वाभाविक है। पर वस्तुतः इसमें भरतजी का कैकेयी अम्बा के महल में जाने का भाव बड़ा ही पवित्र है! उन्होंने सोचा कि छोटी अम्बा के निकट ही सबके दर्शन हो जायँगे। उन्हें ज्ञात था कि भैया रामचन्द्र अपनी छोटी अम्बा से इतना प्रेम करते हैं कि उनके भवन को छोड़ और कहीं हो नहीं सकते। फिर जहाँ राघवेन्द्र हों, वहीं पिताजी और कौशल्या अम्बा का होना स्वाभाविक है। 'साधन सिद्धि राम पग नेहू' को मानने वाले श्रीभरत की प्रेम-मयी दृष्टि उन्हें ऐसा पथ दिखाये यह स्वाभाविक था, पर उस समय वास्तविकता को समझने के लिये लोगों को अवकाश कहाँ था। पुरवासियों की बुद्धि को तो राम-वियोग कुरोग ने छीन लिया था।

द्वार पर लेने आयी कैकेयी। हृदय से लगा लिया, पर भरत को लगा मानो वात्सल्यमयी अम्बा नहीं, किसी प्रस्तर प्रतिमा से मिल रहे हों। कैकेयी उनको उदास देख अपने मातृगृह की कुशलता के लिये चिन्तित होकर पूछती है—

पूंछति नैहर कुसल हमारे ॥

शीघ्रतापूर्वक उत्तर देकर आश्चर्य और भयग्रस्त कण्ठ से श्री भरतजी ने पूछा—

कहु कहँ तात कहाँ सब माता।
कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥

यह प्रश्न ही उनके कैकेयी अम्बा के भवन में सर्वप्रथम आने का कारण व्यक्त कर रहा है। उनका यह पूछना कि 'पिताजी कहाँ हैं? और कहाँ हैं सब माताएँ? फिर भला, भाभी श्रीसीता और भैया राम-लक्ष्मण भी तो नहीं दीख पड़ते! इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें यहाँ प्रत्येक के दर्शन हो जाने की आशा थी, पर वहां तो उत्तर मिलता है—

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।
भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥

इस वाक्य ने हृदय और मस्तिष्क पर इतना भीषण आघात पहुँचाया कि वे यह पूछना ही भूल जाते हैं कि उसने वह कौन-सा 'काज सँवारा है', जिसके सामने महाराज की मृत्यु 'कछुक काज' हो गयी। 'हा पिता!' कह पृथ्वी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर गिर पड़े। 'हा पिता! मैंने चलते समय तुम्हें न देखा। तुमन राम के हाथ में मुझे न सौंप दिया! पर अचानक मृत्यु कैसे हो गयी? यदि रुग्ण होते तो मुझे सूचना अवश्य देते।' और तब वे पुनः पूछते हैं लौह-कठोर कैकेयी से—

कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥

इस समय कैकेयी का हृदय इतना विषाक्त था कि उसे विश्वास था कि सम्पूर्ण घटना सुन लेने के पश्चात् भरत का दुःख नष्ट हो जायगा, अतः उसके द्वारा श्री भरतजी के हृदय को संतप्त करनेवाला उत्तर ही प्राप्त हुआ—

आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥

सुनकर भरत स्तब्ध हो गये। सम्पूर्ण अंग जड़वत् हो गये। भूमितल में गिरने की भी क्षमता न थी। प्रत्येक इन्द्रिय ने अपना कार्य बंद कर दिया। इसके बाद हम पुनः उस कठोरहृदया को समझाते हुए देखते हैं। पिताजी की मृत्यु को सुनकर भूमि पर गिर जाने और इस बार चुप रह जाने का उसने अर्थ यही लगाया कि भरत को पिता की मृत्यु का ही दुःख हुआ। पर यह तो उसका भ्रम था। अत्यधिक आघात लगने पर मनुष्य मृततुल्य हो जाता है। वह पीड़ा इतनी असह्य होती है कि संवेदनशील तन्तु ही कार्य करना बंद कर देते हैं। अवश्य ही हम चोट लगने और अत्यधिक चोट लगने पर इस अन्तर को नित्य देख सकते हैं। जहाँ आघात में मनुष्य चीखता-चिल्लाता है, वहाँ अत्यधिक आघात में एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकलता। कैकेयी उनके पितृशोक को शान्त करने के लिये महाराज की प्रशंसा करती हुई 'सहित समाज राज पुर करहू' की सम्मति देती है। आह! कैसी बुद्धि की विडम्बना है! यह आघात पर आघात कितना निर्मम था। यह वाणी लेखनी का विषय नहीं। महाकवि ने एक उपमा के द्वारा इसे किंचित व्यक्त करने की चेष्टा की है—

मनहुं जरे पर लोनु लगावति ॥

जलने पर कितनी पीड़ा होती है, यह तो भुक्तभोगी ही जानता है। पर उस पर नमक छिड़कने की कल्पना तो कितनी भयावह है, जिसे सोचकर ही हृदय काँप उठता है। और तब असह्य पीड़ा से उनके मुख से निकल पड़ता है—

पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति बारि उलीचा ।।

हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाई ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाई ।।

जब तैं कुमति कुमत जियं ठयऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ।।

बर माँगत मन भइ नहिं पीरा । गरि ना जीह मुँह परेउ न कीरा ।।

भूँप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही ।
मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ।।
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुन खानी ।।

सरल सुसील धरम रत राऊ । सो किमि जानै तीय सुभाऊ ।।
अस को जीवजंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ।।

भे अति अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ।।
जो हँसि सो हँसि मुँह मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ।।

यह श्रीभरत नहीं, उनके हृदय की दुर्वह व्यथा और व्याकुलता बोल रही है। कुछ लोग श्रीभरत चरित्र के इस अंश को उनके निर्मल यशचन्द्र का धब्बा मानते हैं। मैं भी कहता हूँ वह श्यामता है अवश्य, पर यह श्यामता राम-प्रेम की है। इस श्यामता पर हम सौ-सौ शुभ्रचन्द्र निछावर करते हैं। इस श्यामता के बिना तो यह यशचन्द्र भक्तों के किसी काम का न होता। श्री हनुमानजी को चन्द्रमा बड़ा प्रिय लगा, पर इसलिये नहीं कि वह शुभ्र, शीतल है। उसमें तो उन्हें कुछ और ही दीखा—जिसे देखकर कुछ लोगों को जहाँ उसमें भूमि की छाया या राहु का पद प्रहार दीखा, वहाँ उन्हें अपने श्याम राम दीखे और तभी उसको भक्त शिरोमणि जानकर उन्होंने कहा—

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ।।

मैं कहता हूँ—भरत इसे सुनकर चुप रह जाते, उनकी धार्मिकता व्यक्त हो जाती। यशचन्द्र शुभ्र रहता, पर वह राम-प्रेम की श्यामता? श्री जनकजी को रोते देख किसी ने कहा, महाराज को मोह हो गया। जाननेवालों ने कहा—यह दूषण नहीं, भूषण है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मोह मगन मति नहिं बिदेह की । महिमा सिय रघुबर सनेह की ।।

इस प्रेम-पयोधि को तैरकर पार कर लेने में प्रशंसा नहीं, यहाँ तो डूबना ही पार होना है—

अनबूड़े, बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ।

तो मैं भी कहता हूँ—

क्रोध मगन मति नहि......महिमा सिय रघुबर सनेह की ।।

कोई भी प्रेमी ऐसी स्थिति में शान्त न रहेगा। इस विशेष धर्म के सामने सामान्य धर्म नगण्य है।

एक बात और हमारे महाकवि कहते हैं—

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ।।

विरह-मन्दर से भरत-पयोधि का मन्थन हुआ अमृत प्रकट करने के लिये। अमृत प्रकट होने के पूर्व 'हलाहल' का प्रकट होना स्वाभाविक है। भले ही, वह विष की ज्वाला काल-जैसी भयावनी प्रतीत हो रही हो, पर उससे कोई नष्ट नहीं हुआ। शंकरजी ने उसे पी लिया और वे नीलकण्ठ अमर हो गये। यह हलाहल प्रकट हुआ और पिया कैकेयी अम्बा ने। वे ही इसको पान करनेवाली नीलकण्ठ शंकर हैं। श्रीशंकर ने पिया—'को कृपाल संकर सरिस' कहकर उनकी लोगों ने प्रशंसा की। कैकेयी अम्बा ने पिया, लोगों ने उनके महत्व को नहीं पहचाना, पर सुजान प्रभु से तो कुछ छिपा नहीं था। उन्होंने घोषणा की—

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरसाधु सभा नहि सेई ।।

हाँ कैकेयी अम्बा ने अपने लाल राम का कार्य बनाने के लिये ही यह सब कुछ किया था। उसके बदले उन्होंने पाया चिर-अपयश, विधवापन और प्राण-प्रिय पुत्र से तिरस्कार! बलिहारी! हाँ तो, प्रभु ही भरत-पयोधि के मन्थनकर्ता थे। उन्होंने 'सुर साधु' को प्रेमामृत पिलाकर अमर किया और अपनी अम्बा को अमर कर दिया यह 'कालकूट' पिलाकर, उन्होंने 'एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा' का बड़ा ही विलक्षण निर्वाह किया। हम इसमें एक ओर भरत का राम-प्रेम

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पाते हैं, प्रेमी के लिये लौकिक सम्बन्ध नहीं, उसके एकमात्र 'सब' राम ही हैं। तो दूसरी ओर, रामप्रेमी कैकेयी का महात्याग ! सच्चे प्रेमी का आदर्श प्रेममार्ग अति कठिन है। वह फूल नहीं, शूल का मार्ग है। सम्भव है किन्हीं प्रेमियों पर फूल बरसाये जाते हों, पर शूल-प्रहार भी हो सकता है, उसे सहन कर लेने की शक्तिवाला ही इस पर चल सकता है। निश्चित ही रामायणकाल में सर्वाधिक तिरस्कृत कैकेयी अम्बा थीं, पर प्रभु ने कह ही दिया—'जननी कैकेयी को वे ही दोष देते हैं, जिन्होंने सत्संग के द्वारा इसका रहस्य नहीं जान लिया है !'

कहा जा सकता है, तब फिर कैकेयी जी को कटुवचन कहनेवाले हमारे कवि तथा श्रीभरत आदि सभी जड़ हैं। और यह सत्य भी है। अत्यधिक प्रेम में आगे-पीछे सोचने की क्षमता का अभाव होता है। अपने प्रभु को कष्ट में डालनेवाले के हृदयगत भावों पर दृष्टि डाले—इतना अवकाश प्रेमी को कहाँ। वह तो प्रत्यक्ष कारण देखता है और अधीर होकर कारण प्रतीत होनेवाले पर बरस पड़ता है। श्री लक्ष्मणजी का चरित्र इसका साक्षी है। महाकवि, श्रीभरत, पुरवासी आवेश में जो कहते हैं, वह तो प्रेमियों का हृदय है। पर 'दोषु देहिं जननिहि जड़ तेई' तो हमलोगों के लिये है। कहीं तटस्थ दृष्टि से बाद में विचार करनेवाले भी कैकेयी अम्बा को ऐसा न मान लें, यही प्रभु का अभिप्राय है।

लिखते हुए प्रसंग से कुछ दूर हट गया, पर जो कुछ वहाँ श्रीभरत ने कहा, वह उनके अनुरूप ही था—एक प्रेमी के अनुरूप। 'वैसे हम उनके चरित्र' की यह विलक्षणता पाते हैं कि वहाँ धर्म और प्रेम एकरूप हो गये हैं—एकार्थक हो गये हैं। पर यहाँ जो अलगाव है, वह मार्गनिर्देश मात्र करता है। यदि प्रेमी के सामने ऐसी विकट परिस्थिति हो, जहाँ साधारण धर्म एवं विशेष धर्म (भगवत्प्रेम) का एक साथ निर्वाह असम्भव हो जाय, वहाँ प्रेमी का मार्ग स्पष्ट है—राम-प्रेम।

पर उन कठोर वाक्यों को कहते-कहते अन्त में हम देखते हैं, वे प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। उनकी धार्मिकता और प्रेम एकमेक हो जाते हैं। वे स्वयं ही सब दोष अपने ऊपर ले लेते हैं 'सारा दोष मेरा ही है' अदोषदर्शी भरत के चरित्र का कैसा सुन्दर चित्रण इस दोहे में व्यक्त होता है—

राम बिरोधी हृदय तें प्रकट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कैसा विलक्षण दैन्य है। उनकी यह विलक्षणता ऐसी है, जो निजी है, जो अन्यत्र मिलनी कठिन है और यही वैलक्षण्य उन्हें अन्यों से ऊपर उठाकर प्रेमाचार्य का पद प्रदान करता है। वह अहंकार जो प्रभु से दूर करता है, उसकी यहाँ पैठ नहीं। वह अहंकार, जिसने देवर्षि नारद को पकड़ लिया, जो श्री भक्तराज हनुमान के हृदय को भी स्पर्श कर सका, इन्हें छू न सका। इसी से हम देखते हैं क्यों प्रभु इनका नाम जप करते रहते हैं, क्यों इनका नाम उन्हें विह्वल बना देता है। तभी कहना पड़ता है—'भरत भरत सम जानि।'

इसके पश्चात् ही आती है कुटिलमणि मन्थरा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर। श्री शत्रुघ्नजी माता के कार्यों से वैसे ही क्षुब्ध थे। सजी-धजी मन्थरा को देखते ही उनकी क्षोभाग्नि भड़क उठती है। चरण प्रहार से वे उसे भूमि पर गिरा देते हैं। मुँह से रक्त निकलने लगता है। सिर फूट जाता है। निश्चित रूप से उस कुटिला के लिये यह दण्ड कम था। फिर जब उसने इतने पर भी 'करत नीक फल अनइस पावा' कह दिया तो शत्रुघ्न पुनः उसे घसीटने लगते हैं। भला, लक्ष्मणानुज को कौन शान्त करे। पर 'दयानिधि भरत' छुड़ा देते हैं। यहाँ अन्तर स्पष्ट है। श्री शत्रुघ्न के प्रेम और धर्म में यहाँ विरोध हो जाता है और वे स्वभावतः ही प्रेम को प्राधान्य देते हैं। पर भरत का प्रेम और धर्म एकार्थक होकर मन्थरा को छुड़वा देता है। वे 'दयानिधि' तो हैं ही, पर इससे भी अधिक ध्यान उन्हें इसका है कि प्रभु को इससे कष्ट होगा। उनकी प्रत्येक क्रिया में प्रभु की इच्छा का ध्यान सर्वप्रथम रहता है। तभी हम उनके विषय में पढ़ते हैं—

जौं न होत जग जनम भरत को।
सकल धरमधुर धरनि धरत को॥

कौसल्या पहिं गे दोउ भाई से यह प्रसंग समाप्त हो जाता है और तब हमारे समक्ष कौसल्या माता और श्री भरत के मिलन का करुण दृश्य उपस्थित होता है।

कृश शरीर आभूषणहीन, मल्लान (म्लान) अम्बा भरत का नाम सुनते ही दौड़ पड़ती है वत्सला गौ की तरह। मन में मिलन की उत्कट आशंका होते हुए भी शरीर इतना शक्तिहीन हो चुका है कि वे मूच्छित होकर भूमि पर गिर जाती है। भवन चारों ओर करुण विलाप और चित्कार से भर जाता है। श्री भरत अनुज के साथ दौड़कर अम्बा को उठाते हैं। उनकी इस दशा को देख उनका हृदय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शोक में डूब जाता है। वे सोचते हैं, इन सारे अनर्थों का मूल मैं ही तो हूँ। मेरा जन्म ही क्यों हुआ। व्यथाभरी वाणी से बोल उठते हैं :—

को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी।
गति असि तोरि मातु जेहि लागी ।।

उसी करुणामयी स्थिति में वे बड़े ही मार्मिक शब्दों में शपथ लेते हुए कहते हैं कि मुझे वही गति प्राप्त हो, जो बड़े-से-बड़े पातकी को होती है—

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाई गोथ महिसुर पुर जारें।।
ते अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें ।।

जे पातक उपपातक अहहीं। करम, बचन मन भव कबि कहहीं ।।
ते पातक मोहि होहुं विधाता। जौं यहु होई मोर मत माता।

जे परि हरि हरि हर चरन, भजहिं पूत घनघोर।
तेहि कर गति मोहि देउ बिधि, जौ जननी मत मोर ।।

बेचहि वेद धरमु दुहि लेहीं ।। पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। वेद विधूषक विश्व विरोधी ।।

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहि पर धनु पर दारा ।।
पांवौं मैं तिन्ह के गति घोरा। जो जननी यहु संमत मोरा ।।

इन संदर्भों को पढ़कर कुछ लोग चौंकते हैं। प्रायः इसकी दो प्रकार से आलोचना की जाती है :—

(१) जानऊं राम कुटिल करि मोही।
लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ।। का वरदान माँगनेवाले श्री भरत अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये इतने उत्सुक क्यों हैं?

(२) क्या उन्हें कौसल्या अम्बा के ऊपर यह विश्वास न था कि वे उन्हें निर्दोष मानती हैं?

पर विचार से दोनों ही बातें निर्मूल सिद्ध होती हैं। फिर निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास क्यों? इसे समझने से ही सारी समस्याएँ हल हो जाती हैं। कौसल्या माता के हृदय पर इसके पूर्व इतने भीषण और निर्मम आघात लग चुके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हैं, जिससे उनका हृदय व्यथासागर में डूब गया है। ऐसी परिस्थिति में ही श्री भरत का आगमन होता है। यदि कहीं श्री कौसल्या माता के हृदय में यह संदेह हो जाय कि वास्तव में श्री भरत की सम्मति से ही यह हुआ है और केवल लोक-प्रदर्शन के लिये ही वह मेरे निकट आया है, तो उनकी बड़ी बुरी स्थिति हो जायेगी, उनको असह्य पीड़ा होगी और ऐसी स्थिति में उनके हृदय पर एक बहुत बड़ा आघात पहुँचेगा, जिससे सम्भव है वे न सहन कर सकें। ऐसी परिस्थिति में श्री भरतजी ने बड़ी ही मनोवैज्ञानिक बुद्धिमत्ता का कार्य किया। उनका लक्ष्य कौसल्या माता के हृदय को शान्त करना था। उनके लिये अपने को निर्दोष सिद्ध करने के सिवा दूसरा उपाय था ही नहीं। इसलिये इस चेष्टा से उनके माँगे हुए पूर्वोक्त वरदान से कोई विरोध नहीं होता है। यहाँ निर्दोष सिद्ध का यह प्रयास निर्दोष सिद्ध करने के लिये न होकर कौसल्या के दुखः भार को लघु बनाने के लिये है।

यहाँ कहा जा सकता है कि, तो क्या कौसल्या माता के चित पर उन्हें अविश्वास है ? नहीं। श्री भरतजी का कभी किसी पर अविश्वास नहीं था, पर वे तो अपने दैन्य, सौशील्य के कारण अपने को इतना प्रेमहीन मानते थे कि वे सोच ही नहीं पाते थे कि लोग मुझ पर विश्वास करते होंगे। उनकी विचारधारा का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि वे यही मानते थे कि कोई भी योग्य व्यक्ति मुझे बुरा ही समझेगा, क्योंकि मुझमें कोई श्रेष्ठ सद्गुण है ही नहीं। सत्य तो यह है कि इतनी महानता के साथ इतना दैन्य अन्यत्र दुर्लभ है। निम्नलिखित चौपाइयाँ भी इसी सत्य की साक्ष्य दे रही हैं :--

राम लखनु सिय सुनि मम नाऊं। उठि जनि अनत नाहि तजि ठाऊं।।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु दीन्हा ।। ताते नाथ संग नहिं चीन्हा ।।

कैसा विलक्षण दैन्य है। धन्य है भक्तराज बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हो इसे छोड़ क्या कहा जा सकता है। जिनके नाम की माला का प्रभु स्वयं नित्य जप करते हों, जिनका नाम उन्हें अधीर बना देता हो, जिनकी प्रशंसा में प्रभु रात्रि-दिवस बिता देते हों, उनका यह सोचना कि प्रभु मेरा नाम सुनकर उठकर कहीं चले न जायँ, यह प्रभु के करुणामय स्वभाव पर अविश्वास नहीं, अपनी लघुता पर विश्वास का सूचक है। भक्त चूरामणि गोस्वामीजी भी श्री विनयपत्रिका में कुछ ऐसा ही कहते हैं :--

स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निजसाई दुहाई।
निजमति-तुला तौलि देखी, भई मेरेहि दिसि गरुआई ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपर्युक्त पंक्तियों का लक्ष्य प्रभु की हीनता की लघुता बताना नहीं है, अपने स्वामी-द्रोह की गुरुता बताना है। इसलिये किसी भी प्रसंग पर विचार करते समय हमें वक्ता के लक्ष्य और उसके स्वभाव को विस्मृत नहीं करना चाहिए। श्री भरतजी की इन सपथों को पढ़कर हृदय भर आता है। इतना बड़ा भक्त कितना सरल, कितना भोला होता है। उसे अपनी विशेषता का कभी ज्ञान ही नहीं होता। और सच भी तो है—जो भक्त प्रभु की विशेषता ढूँढ़ते हैं, उन्हें दीखनेवाली बुराइयों के लिये भी तो कोई स्थान होना चाहिए। और तब वे उसका पात्र "स्व" को ही बनाते हैं।

गुन तुम्हार समुझइ निजदोसा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।।

इसके पश्चात् तो श्री भरतजी का विलक्षण चरित्र लोगों की दृष्टि में आने लगता है। उनके सामने एक महान प्रलोभन था, अयोध्या का विशाल राज्य। वह भी अन्याय पूर्वक नहीं, सर्वसम्मति से। मरणाशौच से निवृत्त होन के बाद महर्षि वशिष्ठ की प्रेरणा से समग्र पुरवासी राजसभा में एकत्र होते हैं और सबकी ओर से प्रतिनिधित्व करते हुए कुशल वचन श्री वशिष्ठ जी उन्हें राज्य स्वीकार करने की प्रेरणा करते हैं। उनके सहमत होने के पश्चात् किसी अधर्म का सन्देह वहाँ शेष नहीं रह जाता है। वह राज्य-मद, जिसने अनेक महान पुरुषों को पथभ्रष्ट बनाया, नहुष, इन्द्र आदि जिसके एक थपेड़े को न संभाल सके, वह राज्यश्री आज अपने सम्पूर्ण शृंगार के साथ मनोमोहक रूप में उन्हें लुभाने को प्रस्तुत है, पर प्रेमव्रती भरत को वह विचलित न कर सकी। उनके समक्ष जो कठिन परिस्थिति है, उसकी कल्पना करना भी आज कठिन है।

सारी प्रजा अनाथ हो गयी है। करुणा और विषाद का समुद्र उमड़ा वह रहा है। उसमें पुरवासी डूबे से हैं। माताओं की स्थिति तो और भी अवर्णनीय है। वहाँ की स्थिति तो 'धीरज हुं कर धीरज भागा' की सूचना देती है। सबकी दृष्टि भरत की ओर है——सब एक ही आशा में जीवित रहना चाहते हैं। वह राम दरस की लालसा वही जहाज बनकर उन्हें बचाये हुए है, पर वह भी कर्णधार से हीन। कर्णधार कौन है और तब सब एक स्वर से पुकार उठते हैं "भरत"। उनके शब्दों में हृदय को कम्पित कर देनेवाली करुणा है। पर श्री भरत के सामने भी तो एक द्वन्द है। वे अपने को मल्लाह एक सेवक के रूप में अर्पित करने को सहर्ष प्रस्तुत हैं। वे तो "संपति सब रघुपति कै आहीं" को मानने वाले हैं। पर प्रस्ताव तो ठीक ऐसा ही नहीं है। वहाँ तो मानो

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कर्णधार को पहले से पुरस्कार का प्रलोभन दिया जा रहा है। न केवल प्रलोभन अपितु पुरस्कृत किया जा रहा है "अवध राज सुराज सिहाहीं" से। भले ही वह पुरस्कार लोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो, पर एक राम-प्रेमी के लिये वह किस काम का। प्रेमी ने कहा--मैं रोगी हूँ, हृदय जला जा रहा है पीड़ा से। वैद्य जी बोल पड़े--पर रोग साधारण हो तब न। प्रेममयी ने बड़े करुणाकंठ से एक दिन गाया :--

हेरी, म्हे तो प्रेम, दिवानी म्हारो दरद न जाणौ कोय।

सचमुच "भगवत रसिक, रसिक की बात रसिक बिना कोउ समझ सकै ना"।

हाँ तो प्रेम-रोग-ग्रस्त उस महापुरुष की चिकित्सा करने आये माने हुए वैद्य--महर्षि वशिष्ठ। पर यह तो ऐसा रोग है जिसकी चिकित्सा वैद्य नहीं, रोगी स्वयं ही कर सकता है। हृदय प्रियतम की वियोगाग्नि में जल रहा है, उससे कहा जाता है तुम राज्य मद का पान करो। पर वैद्य का भला क्या दोष। नाड़ी पकड़ी पर रोग का निदान ही न मिला। लेकिन लोगों की तो श्रद्धा थी। माने हुए वैद्य थे। कौसल्या माता ने भी उसी के सहारे कह दिया :--

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥

पर प्रेम राज्य की तो रीति ही निराली है। माना कि वह रोगी है, किन्तु वह सब समझता है, उसे ज्ञान है इस रोग के वास्तविक स्वरूप का और उसकी दवा का। लेकिन वैद्य भी तो हितचिन्तक है, उसका तिरस्कार कैसे हो, फिर यह श्री भरत जी जैसे प्रेमी के लिये कैसे सम्भव था। वैद्य की स्तुति कर दी उन्होंने--

गुरु बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥

हाँ, यह स्तुति है, पर वैद्य जी पर एक मीठा व्यंग भी। "बिस्व कर वदर समाना" एक विशिष्ट अभिप्राय रखता है। प्रशंसा ही तो है छोटा-सा वेर जैसे निष्प्रयास मुट्ठी में, इसी तरह समग्र विश्व गुरुजी के कर कमलों में। पर उसके लिये वेर की उपमा क्यों, आँवला भी तो छोटा होता है, फिर मानस में ही बालकाण्ड में महर्षियों की प्रशंसा में यही आँवले की उपमा दी भी गयी है।

जानहि तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना॥

अन्तर तो अवश्य है बुद्धिमानों के लिये। आयुर्वेदकों से पूछिये--"धात्रीफलं सदापथ्यं कुपथ्यं वदरीफलं" वेर कुपथ्य है, आँवला पथ्य है। वैद्यों को सुन्दर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

संकेत है। पूत पथ्य गुर आयसु अहई का इससे अधिक यथार्थ मधुर उत्तर सम्भव भी तो नहीं है। वैद्य अपनी त्रुटि समझ जाते हैं, कहाँ आ फँसे प्रेम-राज्य में। लोग उलझन में थे, पर किया क्या जाय। पीड़ा से कराह रहे थे, पर प्रेमी ने बता ही तो दिया। उसका उत्तर तो निश्चित ही है। "मीरा की तब पीर मिटै जब वैद सांवलिया होय।"

आपनि दारुन दीनता, कहऊं सबहि सिरुनाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिअकै जरनि न जाई।।

और 'प्रातःकाल चलि हऊं प्रभु पाहीं, के निर्णय ने तो चमत्कार ही कर दिया। विषम वियोग—संतप्त पुरवासी जाग्रत हो गये इस महान् मन्त्र के उच्चारण मात्र से। भैया भरत के जयनाद से सभामंडल गूँज उठा। एकबार फिर लोगों का म्लान मुख तेज से चमक उठा। औषधि का नाममात्र सुन उनका अंग-अंग उल्लसित हो उठा। बलिहारी है रोगी की। लोग प्रेममयी अश्रु-संयुक्त आँखों से देख रहे थे अपने भरत को। जिन लोगों ने भरत पर संदेह किया था, वे भी आँसू बहाते हुए अपने पाप-तापों को बहाने की चेष्टा कर रहे थे। उस प्रेममय दिव्य स्थिति का वर्णन महाकवि की भाषा में पढ़िये :—

भरत बचन सब कहं प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे।।
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।।

मातु सचिव गुर पुरनर नारी। सकल सनेह बिकल भये नारी।।
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्राण समान राम प्रिय अहहू।।
जो पाँवरु अपनी जड़ ताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई।।

सो सठ कोटिक पुरुष समेता। पिसहि कलप सत नरक निकेता।।
अहिअघ अवगुन नहिं मनिगहई। हरई गरल दुख दारिद दहई।।

अबसि चलिये बनराम जहं, भरत मंत्रभल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहिं, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह।।

सभी घर जाकर चलने के लिये सन्नद्ध हो रहे हैं। रामदर्शन की लालसा में समग्र सुध-बुध भूले हुए श्री भरत लौटे, पर उनके हृदय में एक बड़ी चिन्ता है। सभी तो उत्सुक हैं राघवेन्द्र के दर्शनार्थ, पर "स्व" सुख तो प्रेमी का लक्षण नहीं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उन्हें ज्ञात है नगर की एक-एक वस्तु पर प्रभु का कितना स्नेह है। उनका प्रभु वियोग से क्षीणकाय घोड़ों का बार-बार ध्यान हो आता है। उनके द्वारा पालित पशु-पक्षी सब उन्हें प्रिय तो हैं, यदि हम दर्शन की लालसा में उन्हें विस्मृत कर दें तो कितना बड़ा अपराध होगा यह। धन्य है श्री भरत के प्रेम की रीति। सम्भव है किसी को संदेह हो कि राज्य पर ममत्व न होता, तो इतने प्रबन्ध की क्या आवश्यकता थी। तो किया करे लोग संदेह। प्रेमी अपने मार्ग पर जा रहा है उसे स्वसुख का नहीं, प्रियतम का, उनकी वस्तुओं का ध्यान है। यद्यपि साधारण रीति से विचार करने पर दर्शन विह्वल लोगों की स्थिति श्रेष्ठ प्रतीत होती है, पर गहराई में उतरते ही जान पड़ता है दोनों में अन्तर है—महान अन्तर है। विह्वलता में प्रेम है सही, पर वहाँ आनंद का उपभोग और स्व-सुख की स्मृति ही अधिक है, किन्तु "तत्सुखे सुखित्वम्" का सच्चा स्वरूप तो श्री भरत में ही दृष्टिगत होता है। वास्तव में उनकी यह प्रेममयी विचार धारा प्रेम-सिद्धान्त का एक अमूल्य अंग है।

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। मगरु बाजि गज भवन भंडारू।।
संपति सब रघुपति के आही। जो बिनु जतन चलौ तजि ताही।।

तो परिनाम न मोरि चलाई। पाप सिरोमनि साई दोहाई।।
करई स्वामी हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देई किन कोई।।

और तब इस महान आदर्श को दृष्टिगत रखकर रक्षकों को नियुक्त करते हैं। वास्तव में प्रेमतत्व का समझना ही अत्यन्त कठिन है। उसका निगूढ़ रहस्य तो श्री प्रेमाचार्य भरत जी ही जानते हैं, पर जो कुछ समझ में आता है उतना ही हमारे लिये वहुत अधिक है। वस्तुतः उस प्रेमोमृत का एक विन्दु भी अमरत्व प्रदान करने में समर्थ है।

संपत्ति सब रघुपति के आही वस्तु को अपना स्वीकार करने के पश्चात् ही उसके त्याग का प्रश्न आता है। जहाँ त्याग उत्तम धर्म है, वहाँ उसके साथ एक अवश्यम्भावी भय भी है। मनुष्य त्याग के साथ त्यागी का "अहं" भी ले लेता है। त्याग जैसा धर्म भी अहं का इस युक्त होने पर पतन का कारण बन जाता है। जिन लोगों ने सब कुछ छोड़कर प्रभु के पास जाने का निर्णय किया था वे भावुक थे अवश्य, किन्तु संपत्ति को अपनी मानते थे। इसलिये उनको अधिकार था यह निर्णय करने का कि हम यह सब छोड़ कर प्रभु के निकट जायँ। इसे हम समर्पण कर सकते हैं। पर सच्चे भक्त की दृष्टि में इस समर्पण

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का कोई अर्थ ही नहीं। समर्पण अपनी वस्तु का किया जाता है, पर जब सब प्रभु का ही है तब समर्पण कैसा? अवश्य ही समर्पण और त्याग तस्करता से श्रेष्ठ है। प्रभु के स्वामित्व को भूलकर अपने लिये विषयों का प्रयोग तस्करता है। उसकी अपेक्षा प्रभु के लिये समर्पण—त्याग श्रेयस्कर है। पर यह भी एक भोलापन ही है, जब हम अपने को या अपनी वस्तु को समर्पित करते हैं। समर्पित का समर्पण कैसा? भक्त यह सोचकर चकित हो जाता है और तब वह प्रभु से ही पूछ बैठता है:—

किं नु समर्पयामि ते,

यही कारण है कि लोगों के मुख से अपने त्याग-वैराग्य की प्रशंसा सुनकर महाभाग भरत जी लज्जित हो जाते हैं। वे बहुत सोचकर भी निर्णय नहीं कर पाते कि उन्होंने त्याग कब किया? लोग भले ही अवधराज को श्री दशरथ का अथवा भरत का राज्य कहें, किन्तु भरत के लिये वह:—

संपत्ति सब रघुपति कै आही।

इसलिये अपनी दृष्टि में वे त्यागी है ही नहीं और इसलिये उनका दैन्य नाटकीय न होकर पूर्ण सत्य है। अपनी झूठी प्रशंसा सुनकर लज्जित होना स्वाभाविक है। उनके संकोच का रहस्य समझने के लिये उनके दृष्टिकोण को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है।

समग्र पुरवासियों सहित श्री भरत जी चित्रकूट की ओर चले। सभी सुसज्जित वाहनों पर आसीन होकर जा रहे हैं किन्तु:—

बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥

यही नहीं, अन्य लोगों के लिये स्वयं श्री भरत ने ही वाहनों की व्यवस्था की है। यही है मानस का सच्चा आदर्श। आज तो हम स्वयं उच्छृंखल जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों से पूर्ण संयम की आशा रखते हैं, पर सच्चा भक्त संयम का पालन स्वयं करता है, दूसरों पर हठात् उसे लादना नहीं चाहता। श्री भरत चरित्र इसका साक्षी है। उपदेश या शासन से नहीं, अपने जीवन में चरितार्थ करके ही हम दूसरों को संयमित बना सकते हैं।

श्री भरत जी को पापतापविहीन पैदल चलते देख सभी लोग वाहनों को छोड़ देते हैं:—

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कोमल हृदया कौसल्या मैया ने इस दृश्य को देखकर श्री भरत को अपने निकट बुलाया, क्योंकि वे जानती थीं कि सभी लोग इस कष्ट को सहन करने योग्य नहीं हैं, श्री भरत को देखकर ही वे ऐसा करने को प्रस्तुत हो गये। बड़ी ही स्नेहमयी वाणी में उन्होंने भरत से कहा :—

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ।।
तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल शोक कृस नहि मग जोगू ।।

बिना कोई ननुनच किये श्री भरत रथ पर बैठ जाते हैं। यह भी श्री भरत चरित्र की अपनी अद्वितीय विशेषता है। प्रेमी का हृदय अपने प्रियतम के सदृश ही होता है। प्रभु का भी यही स्वभाव है :—

करुनामय मृदु राम गोसाईं। वेगि वाइ हैं पीर पराई ।।

प्रेमी दृढ़ निश्चई होता है, पर उसका निश्चय दूसरों को कष्टकारक हो, यह उसे अभीष्ट नहीं। अन्य साधनों से प्रेम-साधन में एक वैलक्षण यह भी है कि जहाँ अन्य साधन सर्वांश में सबके लिये सुखद हो, यह सम्भव नहीं, वहाँ प्रेम-साधन सर्वजनहिताय हो जाता है।

यहां यह ध्यान रहे कि श्री भरत जी का यह कार्य प्रदर्शन मात्र न था, वे तो मन से यही चाहते थे कि सभी लोग वाहनों से चलें। न उन्हें यही ज्ञात था कि मुझे इस प्रकार चलते देख अन्य लोग भी अनुकरण की चेष्टा करेंगे। नहीं तो वे अवश्य ही गुप्त रीति से ऐसा करते। अवसर प्राप्त होते ही उन्होंने ऐसा ही किया भी। गंगा पार करने के पश्चात् वे पैदल ही चले, किन्तु इतनी गुप्त रीति से कि कोई दिन भर जान न सका। सायंकाल में लोगों ने सुना कि श्री भरत आज पयादे ही आये हैं :—

भरत पयादेहिं आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ।।

इन घटनाओं से श्री भरत जी की आज्ञाकारिता, सर्वजनहितता तथा दृढ़ नेम सभी का परिचय मिल जाता है।

———

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रेम अमिय मन्दर विरह.........

कहते हैं प्रभु मूरति कृपामयी है। पर उसकी कृपामयी मूर्ति भी कभी ऐसी भयावह वेश बनाकर आती है कि हृदय धीरज खो बैठता है। अन्तिम परिणाम को देखकर ही हम उसकी कठोरता के आवरण में छिपी हुई करुणा को पहचान सकते हैं।

कहाँ तो अयोध्या का श्रृंगार किया जा रहा था। तोरण बन्दनवार और कदली स्तम्भ से अवध का हर भवन सजाया जा रहा था। लोगों के उल्लास का क्या कहना। कल उनके हृदय सर्वस्व राम युवराज पद पर अभिषिक्त होंगे। आनन्द के अतिरेक में समय जैसे बीत ही न पा रहा हो, कब होगा वह कल! सबके हृदय प्रतीक्षा रत हैं। स्वर्ण सिंहासनासीन युवराज राम की कल्पित मूर्ति ही तब तक उनके हृदय में सुशोभित हो रही है। इस मांगलिक समाचार को सुनाने वाले दास-दासियों की आज बन आई है। बहुमूल्य पुरस्कार देने में आज जैसे माताओं में होड़ लग गई हो। आज उनकी मनोरथ-लता फलित होने जा रही है।

पर जिन तक यह समाचार पहुँच न पाया, वे हैं कैकेयी अम्बा। क्यों? यह दीर्घ प्रश्न है। क्या सचमुच ही इसके पीछे कोई षड्यन्त्र था? भरत को भी इस अवसर पर वापस न बुलाना भी इसी तर्क की पुष्टि करता है। कहा जाता है कैकेयी को अर्पित करते हुए महाराज कैकय ने यह वचन लिया था कि मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसे स्वीकार कर लेने पर तो महाराज श्री दशरथ का चरित्र ऐसे धरातल पर आ जाता है जब उनका समग्र कार्य कठोर आलोचना का विषय बन जाता है। पर यदि ऐसा वचन दिया गया था, तो मन्थरा या, कैकेयी के वार्त्तालाप में एक बार भी इसका स्मरण न किया जाना आश्चर्यजनक ही है। मन्थरा की यह सूचना क्या यथार्थ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सत्य है कि चौदह दिन से राज्याभिषेक का समारम्भ चल रहा था। पक्ष-विपक्ष में बहुत से तर्क-वितर्क किए जा चुके हैं। फिर भी जिस रूप में घटना क्रम घटित हुआ, उसकी कड़ियों को जोड़ कर इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रमाणों को दृष्टिगत रखकर यह मानना पड़ता है कि कोई ऐसा वचन दिया गया था। पर स्वयं महाराज श्री दशरथ के इस वचन से मुकरने का प्रश्न न था। वस्तुतः उस वचनबद्धता से कैकयी अम्बा को जो अधिकार प्राप्त हुआ था, उसका परित्याग भी माँ ने स्वयं कर दिया था। राम के प्रति कैकेयी अम्बा का उत्कृष्ट स्नेह निर्विवाद वस्तु है। "राज्य राम को दिया जाय भरत को नहीं" यह स्वयं कैकेयी अम्बा का आग्रह था। पचीस वर्षीय राम के विषय में कैकेयी अम्बा और महाराज श्री दशरथ के बीच इस प्रश्न पर वार्त्तालाप न हुआ हो यह असंभव था। अतः राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने का समाचार सुनकर उन्हें कोई अनोखापन नहीं लगता। अपितु वे आह्लाद से भर उठती हैं। मन्थरा को पुरस्कार देने के लिए प्रस्तुत होती हैं, पर फिर यह लगता है कि इस मांगलिक समाचार की तुलना में कौन-सी वस्तु दी जाय—वे सोच ही नहीं पातीं। अतः समाचार की तुलना में पुरस्कार के चुनाव का भार वे मन्थरा पर ही छोड़ देती हैं।

साचेहुँ राम राज जौ काली, देउँ तोहि मन भावत आली।

"मन्थरे! यह समाचार अतुलनीय है। कोई वस्तु देकर इसकी मर्यादा को मैं नष्ट नहीं करना चाहती। अतः एक ही अंश में तुलना हो सकती है। तुमने मेरा अभीष्ट समाचार मुझे सुनाया है अतः बदले में मैं भी तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करूँ।" यह था अम्बा का भावना भरा दृष्टिकोण।

आगे चलकर महाराज श्री भी कैकेयी से यही कहते हैं: "भामिनि भयउ तोर मन भावा, घर घर उत्सव बाज बधावा"। अतः राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का प्रस्ताव कैकेयी अम्बा का था। स्वेच्छा से उन्होंने अपने अधिकार का परित्याग किया था। जहाँ तक श्री भरत का प्रश्न था उनका व्यक्तित्व विवाद से परे था। वे स्वयं के लिए स्वप्न में भी उस स्थान पर बैठने की कल्पना नहीं कर सकते, जो उनकी दृष्टि में उनके आराध्य राम का है। अतः भरत को न बुलाने में आशंका का कारण केवल "भरत के ननिहाल के लोगों का क्या दृष्टिकोण होगा"—यह द्विविधा जान पड़ती है। आगे चलकर कैकेयी अम्बा ने उस प्राचीन वचन का स्मरण भी इसीलिए नहीं कराया, क्योंकि वे स्वयं

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ही उस अधिकार को छोड़ चुकी थीं। और इसीलिए उन्हें भरत के राज्याभिषेक के लिए दो वरदान की थाती का प्रयोग करना पड़ा।

महाराज श्री दशरथ द्वारा समाचार शीघ्र महारानी कैकेयी तक न पहुँचने देने में षड्यन्त्र नहीं भावुकता कार्य कर रही थी। बात यह थी कि दास-दासियों के स्थान पर स्वयं यह समाचार पहुँचा कर महाराज श्री कैकेयी के प्रति अपने प्रगाढ़ अनुराग को प्रगट करने के साथ उन्हें आश्चर्यचकित कर देने की भावना से प्रेरित थे। कोई प्रिय अभीष्ट समाचार अप्रत्याशित रूप में सुनकर जो प्रसन्नता होती है, उसका जीवन में हम सभी कभी-न-कभी अनुभव करते हैं। वस्तुतः इस भावना का सबसे सबल प्रमाण है गोस्वामी जी की वह शब्दावली, जो वे कैकयी अम्वा के महल में जाते हुए महाराज श्री के लिए प्रयुक्त करते हैं :—

साँझ समय सानन्द नृप गयउ कैकई गेह।

यह 'सानन्द' क्या सूचित करता है? षड्यन्त्र की भावना वाला व्यक्ति ऐसे अवसर पर सानन्द नहीं आशंका युक्त हृदय से ही प्रवेश करेगा। आगे चलकर यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। महाराज श्री को महारानी के कोपभवन में होने का समाचार ज्ञात हुआ। व्याकुल हुए। यह मनोवैज्ञानिक बात है कि यदि महाराज के मन में कोई छल होता, तो वे तत्काल आशंकित हो उठते। सोचते—कैकेयी के समक्ष यह भेद खुल तो नहीं गया? पर नहीं यहाँ तो ठीक उल्टी बात है—रोष के रूप में इस घटना की तो क्षणिक कल्पना भी उनके लिए असंभव थी। उन्होंने तो यह समझा था कि रोष जिस भी कारण से क्यों न हो इस समाचार से वह क्षण भर में विलीन हो जायेगा। इसीलिए वे कोपभवन में प्रविष्ट होते ही इस निश्चय की सूचना बड़े आवेग और भावना भरे शब्दों में देते हैं।

भामिनि भयउ तोर मन भावा, घर घर नगर अनन्द बधावा।
रामहिं देउँ कालि जुवराजू, सजहि सुलोचनि मँगल साजू ॥

अतः महाराज श्री के अन्तःकरण में छल की कल्पना सर्वथा निर्मूल है। मन्थरा ने युवराज पद पर अभिषेक की सूचना देते हुए दो सप्ताह से साज-समारम्भ जैसी कोई बात नहीं कही थी, क्योंकि उसे विश्वास था कि राज्याभिषेक का समाचार कैकेयी पर अपेक्षित प्रभाव डालेगा। पर कैकेयी ने जिस उत्साह से इस सूचना का स्वागत किया, उससे मन्थरा का निराश होना स्वाभाविक था। अतः षड्यन्त्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की भावना की पुष्टि के लिए ही उसने बाद में दो सप्ताह से राज्याभिषेक की सजावट का समाचार गढ़ कर सुना दिया।

भयउ पाख दिन सजत समाज, तुम पाई सुधि मोहि सन आज ।

और तब घटना चक्र ऐसे रूप में प्रत्यावर्तित होता है कि सारी अयोध्या शोक में डूब जाती है। वात्सल्यमयी कैकेयी अम्बा जैसे निष्ठुरता की मूर्ति बन जाती हैं। कोई न डिगा सका उन्हें अपने निर्णय से। "राम को बन जाना होगा और अयोध्या का राजा होगा मेरा पुत्र भरत"—यह था उनका अकाट्य निर्णय। व्यथा के अथाह सागर में निरुपाय-सी सारी प्रजा डूब गई। स्तब्धता, आक्रोश, पीड़ा, से सारा वातावरण बोझिल हो उठा।

राम वन चले तो साथ में प्रिया और अनुज का जाना अवश्यम्भावी ही था। और तब उनके वियोग में पीड़ा और पश्चाताप से जर्जर महाराज श्री ने प्राण त्याग कर दिया। और यह सब हुआ सर्वसमर्थ राम के नगर में। क्या, यह सब केवल देवताओं की इच्छा का परिणाम था? नहीं, नहीं स्वयं सूत्रधार राम की प्रेरणा के अभाव में यह सब हो पाना असंभव था। उसने चाहा क्योंकि उस नटनागर को मन्थन करना था भरत-समुद्र का। उससे जो भी पीड़ा हो, विनाश हो, सब कुछ थोड़ा है उस अमूल्य अमृत की तुलना में, जिसे पीकर युगों तक मनुष्य की चिर तृष्णा शान्त होनेवाली थी। मानवता को अमर करने के लिए प्रभु की यह वह कृपा थी, जिसे हम कुलिश कठोर कह सकते हैं।

इसीलिए तो महर्षि भरद्वाज को अपराधी की खोज करते हुए किसी और ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा। भावमूर्ति भरत को संकुचित देख उन्होंने आश्वस्त करना चाहा भरत को, और बताने लगे।

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई, बिधि करतब पर किछु न बसाई।
दो० तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहु दोष नहिं गई गिरा मति धूति ।।

वस्तुतः भरत की निर्दोषिता की खोज में दोषी कौन? यह भी शोध उन्होंने अपेक्षित ही समझा। तब उसमें सबसे पहले बेचारे ब्रह्म का ही स्मरण किया गया, किन्तु ब्रह्मा पर दोष मढ़ना तथ्य की अपेक्षा परम्परा और प्रथा का ही परिणाम है। यह समझ कर उन्होंने ठोस धरातल पर आकर कहा—"भरत! यदि कोई इसका दोषी है तो तुम्हारी माँ—उसमें तुम्हें क्यों संकुचित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

होना चाहिए ? और सच पूछा जाय, तो तुम्हारी माँ का भी क्या दोष ? वह तो प्रेरक सरस्वती थी, जिन्होंने माँ की बुद्धि का अपहरण कर लिया। यहाँ तक पहुँचकर महर्षि बड़ी उलझन में पड़ गये। अन्ततोगत्वा सरस्वती का कार्य तो बुद्धि-दान है। उसने किसकी प्रेरणा से ऐसा कार्य कर डाला। तब सरस्वती के प्रेरक रूप में ऐसे महापुरुष का दर्शन हुआ कि जिससे सारी धारणा ही पलट गई।

सारद दारु नारि सम स्वामी, राम सूत्रधर अन्तरयामी।

सरस्वती बेचारी कठपुतली ही तो है—सूत्रधार के संकेत पर नाचना उसका कार्य। और सूत्रधार कौन......जैसे बुद्धि स्तब्ध हो जाती है। अरे, यह तो लीलानायक राम ही हैं। तब तो जो कुछ हुआ राम की इच्छा से। तब क्या उद्देश्य है इस लीला का ? और इसके उत्तर के रूप में उन्हें दिखाई पड़ा "भरत-चरित्र"। तो इसे अमंगल मानना, दोषी की खोज करना ही व्यर्थ है। जहाँ राम के कर कमल हैं, वहाँ अमंगल कहाँ ? वहाँ तो सब शिव है, भले ही वह रुद्र क्यों न दिखाई दे। अतः अन्त में उन्होंने स्पष्ट कर दिया। "भरत ! दोषी और दोष का तो अन्वेषण ही व्यर्थ है। यदि राम का वन-गमन न होता, तो विश्व के समक्ष तुम्हारा यह पुनीत चरित्र कैसे आता, जिससे वह लोक वेद की समन्वयी मर्यादा का दर्शन कर धन्य हो।

यहउ कहत भल कहिहि न कोई, लोक बेद बुध सम्मत दोई।
तात तुम्हार बिमल जस गाई, पाइहि लोकहुँ बेद बड़ाई॥

कैकेयी अम्बा को निमित्त बनाकर नटनागर ने ऐसी स्थिति प्रस्तुत कर दी कि भरत का हृदय व्यथा से मथ उठा और तब एक के पश्चात् एक रत्न प्रगट होने लगे भरत-समुद्र से। बिना मन्थन के यह सब लोक-दृष्टि से अछूता ही तो रह जानेवाला था। कहते हैं समुद्र-मन्थन में सर्वप्रथम हलाहल प्रगट हुआ, जिसकी ज्वाला से त्रैलोक्य भस्म होने जा रहा था और तब भूत भावन भगवान शिव ने उसका पान कर लोगों को सुरक्षा का दान दिया। इस समुद्र से भी प्रारम्भ में हलाहल ही व्यक्त हुआ प्रतीत होता है। अगले अध्याय में हम सर्वप्रथम हलाहल की ही चर्चा करेंगे।

× × × ×

महाराज श्री दशरथ की मृत्यु के पश्चात् गुरुदेव की आज्ञा से दूत भेजे जाते हैं श्री भरत को ननिहाल से लाने के लिए। यहाँ श्री भरत का हृदय कुछ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दिन पूर्व से ही भावी अमंगल की कल्पना से संत्रस्त था। लोकदृष्टि से राघवेन्द्र से बहुत दूर पर मन से निरन्तर समीप श्री भरत को जैसे पूर्वाभास हो उठा था कि कुछ अप्रिय घटना होनेवाली है। उसकी शान्ति के लिए वे नित्य भगवान शिव का अभिषेक करते थे और उनसे याचना थी "राघवेन्द्र कुशली हों।"

शिव अभिषेक करहिं बिधि नाना, बिप्र जेवाँइ देहि बहु दाना।
माँगहि कुसल महेस मनाई, कुसल मातु पितु परिजन भाई।

और तभी आ पहुँचे दूत। गुरुदेव की आज्ञा सुनते ही आशंकायुक्त हृदय से भरत और शत्रुघ्न अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। वायु वेग से चलते हुए अश्वों की गति भी जैसे मन्थर प्रतीत हो रही हो। लगता है काश कि आज पंख होते। नगर प्रवेश करते ही उन्होंने अयोध्या की दशा देखी—वह भयावनी थी। चारों ओर मलीनता और करुणा का साम्राज्य छाया हुआ था। मार्ग-गलियाँ सब अस्त-व्यस्त, लता-वृक्ष पत्र विहीन शुष्क। नागरिकों ने भरत को देखा, न स्वागत, न उल्लास पूर्ण जयध्वनि, केवल शिष्टाचारात्मक नमन। भय के कारण श्री भरत भी पूछने में संकुचित होते हैं। मानवीय स्वभाव है कि वह किसी निश्चित भयावनी घटना को जानते हुए भी कुछ क्षणों के लिए अनजान बनना चाहता है। उससे दूर रहना चाहता है।

भरत सर्वप्रथम जाते हैं कैकेयी अम्बा के भवन में। क्या इसीलिए कि वे उनकी स्वमाता हैं? क्या शिष्टाचार के रूप में उन्हें कौसल्या अम्बा के महल में न जाना चाहिए था? भरत जैसे मर्यादा परायण से मर्यादा की यह कैसी अवहेलना। विचार करने पर इसका दूसरा ही कारण दिखाई देता है। वस्तुतः कैकेयी अम्बा का महल परम्परा के रूप में केवल उनका होते हुए भी कई वर्षों से सभी रानियों सहित महाराज श्री दशरथ के आवास का केन्द्र बना हुआ था। राघवेन्द्र को सबसे प्रिय थी कैकेयी अम्बा। न तो माँ उन्हें आँखों से ओट करना चाहती हैं और न तो वेही माँ से दूर होना चाहते थे। और जहाँ राम वहीं समस्त रानियाँ और महाराज श्री का होना अवश्यम्भावी था। अतः भरत तो इस भावना से माँ के महल में जाते हैं कि वहीं सबका दर्शन एक साथ प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस भाव की पुष्टि आगे उनके प्रश्नों से भी हो जाती है। अकेले कैकेयी अम्बा को स्वागत के लिए आया देख चकित हो पहला प्रश्न यही करते हैं:

कहु कहँ तात कहाँ सब माता, कहँ प्रिय राम लखन दोउ भ्राता।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

और तब महारानी कैकयी अपने कार्यों का आत्मश्लाघापूर्वक वर्णन करने लग जाती हैं। महाराज श्री की मृत्यु का समाचार सुनकर वे पीड़ा से भर क्रान्त हो रुदन करने लग जाते हैं, पर राम वन-गमन का समाचार सुनते ही एक तीव्र जड़ता से स्तब्ध हो जाते हैं। "क्या यह जो सुन रहा हूँ यथार्थ है। मुझे राजा बनाने के लिए आराध्य राम को वन भेज दिया गया। पर यह सत्य है, इस पर विश्वास तो करना ही होगा।" और तब भरत जिन रोष और आवेग भरे शब्दों में माँ को फटकारते हैं, वह साधारणतया भरत के शील और स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। सत्य तो यह है कि वह भरत का पहला और अन्तिम रोष है। गोस्वामीजी के ही शब्दों में वह प्रहारात्मक पर आत्मग्लानि से भरी वाणी यह है :

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा, पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।
जो पै कुरुचि रही अति तोही, जनमत काहे न मारसि मोहीं।
पेड़ काटि तैं पालउँ सीचा, मीन जियन निति बारि उलीचा।

दो०– हँस बँस दशरथ जनक राम लखन से भाइ।
जननी तु जननी भई बिधि सन किछु न बसाइ ॥

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ, खण्ड-खण्ड होइ हृदय न गयऊ।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा, गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥
जो हँसि सो हँसि मुँहमसि लाई, आँखि ओट उठि बैठहि जाई।

शायद ही किसी माँ को अपने सुयोग्य और धर्मपरायण पुत्र से इससे अधिक कठोर शब्द सुनने को मिला हो। यह एक ऐसा प्रसंग है, जो अनेक लोगों की दृष्टि में भरत की महानता के अनुरूप नहीं है। क्या एक पुत्र को माँ के लिए ऐसे कठोर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ?

वस्तुतः इस प्रसंग पर विचार करने के लिए हमें उस संस्कारगत मान्यता से ऊपर उठने की चेष्टा करनी होगी, जिससे हम प्रत्येक घटना का बँधी-बँधाई धारणा से, एकांगी दृष्टि से देखने लग जाते हैं। माँ के समादरणीय पद की गरिमा को कौन अस्वीकार कर सकता है। "पर माँ को छोड़कर धर्म कुछ और भी है या माँ के प्रति हमारा कर्त्तव्यमात्र ही समग्र धर्म है ?" वस्तुतः धर्म विराट के प्रति हमारे कर्त्तव्यों का निर्देशक है। वह समस्त कर्त्तव्यों का निर्देश विविध अंगों के परस्पर सम्बन्ध के रूप में ही करता है। कोई भी व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो, वह विराट का स्थान नहीं ले सकता।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अतः जहाँ विराट का प्रश्न हो, व्यक्ति का त्याग करना ही पड़ता है। समग्र शरीर की रक्षा के लिए एक अंग को काट कर फेंका जा सकता है, भले ही वह अंग कितना भी प्रिय क्यों न हो। श्री भरत का माँ के प्रति रोष किसी व्यक्तिगत स्वार्थ या अहं को लेकर नहीं है। वह तो उनकी दृष्टि में विराट का (राम विराट पुरुष हैं) ही अनादर है। और ऐसी परिस्थिति में उसे सह लेना धर्म के शव की ही रक्षा है, धर्म-प्राण की नहीं। भरत के इस कार्य की आलोचना का कारण ही है कि हम हर क्षण भरत की पुत्र के रूप में ही कल्पना करते हैं, जैसे वे भाई, सेवक, भक्त आदि कुछ हों ही नहीं। इसीलिए गोस्वामीजी श्री भरत के द्वारा इन शब्दों के प्रयुक्त किए जाने से पूर्व भरत के लिए पुत्र नहीं राजकुमार शब्द का प्रयोग करते हैं।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू, पाके छत जनु लाग अँगारू।

वस्तुतः यह तो अयोध्या के राज प्रतिनिधि द्वारा प्रदत्त दण्ड है। मृत्यु-दण्ड से भी कठोर। अयोध्या में जो कुछ अनर्थ हुआ है, उसके मूल में दिखाई देती हैं कैकेयी और तब उन्हें दण्ड प्राप्त होता है। शास्त्रों ने अलग-अलग लोगों के लिए एक ही दण्ड के पृथक्-पृथक् रूप बनाए हैं। अपने गुरुजनों के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग ही मृत्यु-दण्ड है।

रही इसके मूल में आन्तरिक सूत्रधार की बात, सो उसने भी यह सब जान कर ही तो होने दिया। श्री भरत का अन्तःकरण राम का आवास है। वहाँ राम की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता। अपितु "भरतहिं जानु राम परिछाहीं" की दृष्टि से तो भरत कुछ करते ही नहीं, सब राम करते हैं। समुद्र-मन्थन में अमृत से पूर्व हलाहल निकला, तो उसे अपने परम सुहृद शिव को पिला दिया। स्वयं ले लिया लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि को। अश्रद्धा से देखें तो सारा कार्य निन्दास्पद ही तो लगेगा। रोष में नारद ने कहा भी तो यही था :

असुर सुरा बिष शंकरहिं आपु रमा मणि चारु,
स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहारु।

यद्यपि तथ्य यह नहीं था। वस्तुतः उन्हें तो यह ज्ञात था कि महाकाल को यह विष मार न सकेगा। पर संहार के देवता के विषय में यह भ्रान्ति थी कि वह कठोर हैं। पालक कोमल, संहारक कठोर सीधा तर्क था। विष्णु ने कहा, उसे पहचानो। वह तो हमारी अपेक्षा भी कोमल और निःस्वार्थ हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जरत सकल सुरवृन्द, विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मन मन्द, को कृपालु शंकर सरिस ।।

भरत समुद्र का मन्थन हुआ था प्रेमामृत के लिए और उसे पीकर सभी सुर साधु कृत्य-कृत्य हो गए। पर वे तो साधारण पात्र थे। जिसके लिए हलाहल ही अमृत बन जाय, ऐसे शिव की भी तो अपेक्षा थी। जिनके लिए हम "कालकूट फल दीन्ह अमीको" ऐसा कह सकें। भरत समुद्र से प्रथम भाषण के रूप में जो हलाहल प्रगट हुआ, उसे पीकर अमर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ कैकेयी अम्बा को। वस्तुतः राघवेन्द्र के पूर्ण प्रेम की उपलब्धि माँ को इस हलाहल के बिना हो भी नहीं सकती थी। इसे अधिक स्पष्ट रूप में समझें। अन्य लोगों के समक्ष भरत का सद्व्यवहार, उनकी साधुता, कोमलता ही राम-प्रेम की ओर प्रेरक है। दूसरी ओर भरत की कोमलता ही कैकेयी अम्बा के राम-प्रेम में बाधक बनी। पुत्र का ममत्व कहीं अवशिष्ट है। और भरत के द्वारा परित्यक्त होकर समाज के द्वारा वहिष्कृत होकर माँ सर्वतोभावेन केवल राम की बन गई। अतः मन्थन के प्रथम स्फोट के रूप में जो प्रगट हुआ वह भी प्रत्यक्ष रूप से कठोर गरल होते हुए भी वस्तुतः माँ को नीलकण्ठ बना कर प्रभु से अभिन्न बना देता है। भरत के द्वारा फटकारे जाने पर माँ के हृदय में जिस पश्चाताप का उदय होता है, वही संसार की ओर से समग्र विरति उत्पन्न करता है।

पर अभी तो मन्थन का श्री गणेश था।

महाराज श्री के समस्त और्ध्वदैहिक कृत्यों से निवृत्त होने के पश्चात् एक दिन सारा अयोध्या का समाज एकत्र होता है। गुरु वशिष्ठ थे उसके प्रस्तोता। सारा भार उन्हीं पर था। समाज का प्रत्येक सभ्य उनके ही संकेत पर चलने को प्रस्तुत हो कर वहाँ आया था। उनका प्रस्ताव स्पष्ट था। महाराज श्री ने स्वयं सत्य के लिए राम का भी परित्याग कर दिया था, और राम-वियोग में प्राण परित्याग कर अद्भुत मर्यादा स्थापित की थी। ऐसे महान पिता के वचन की रक्षा करना भरत का कर्त्तव्य है। राम को भी भरत की राज्य स्वीकृति अभीष्ट है। अतः भरत के द्वारा सिंहासन स्वीकार करना ही धर्मसंगत होगा। उनके भाषण में पौराणिक उदाहरण थे। शास्त्रीय समर्थन था। और भरत की मनोवृत्ति को दृष्टिगत रखकर उसमें एक संशोधन भी था—"राम के आने पर उन्हें राज्य सौंपकर तुम सेवा में संलग्न हो जाना।"

राय राज पद तुम कहँ दीन्हा, पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहिं लागी, तनु परिहरेउ राम बिरहागी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नृपहिं बचन दिय नहिं प्रिय प्राना, करहु तात पितु बचन प्रमाना ।
करहु सीस धरि भूप रजाई, हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ।
परसुराम पितु आग्या राखी, मारी मातु लोक सब साखी ।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ, पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ।

दो० अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ।।

अवसि नरेश बचन फुर करहू, पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ।
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू, तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ।
बेद बिदित सँमत सबही का, जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।
करहु राजु परिहरहु गलानी, मानहु मोर बचन हित जानी ।
सुनि सुख लहब राम बैदेही, अनुचित कहब न पंडित केही ।
कौसल्यादि सकल महतारी, तेऊ प्रजा सुख होहिं सुखारी ।
परम तुम्हार राम कर जानिहि, सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ।
सौंपेहु राजु राम के आएँ, सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ।

मंत्रियों तथा कौसल्या अम्बा द्वारा भी प्रस्ताव का समर्थन-अनुमोदन हुआ। पर यह सब सुनकर छलक आए भरत की आँखों में आँसू। यह सब क्या हो रहा है मेरे साथ ? जैसे वे समझ ही न पा रहे हों कि ऐसा प्रस्ताव किया भी कैसे जा सकता है। व्याकुलता से हृदय मथ उठा और तब कण्ठ से जो वाक्य निकले, वही मानो धर्म की नई व्याख्या बन गये हों। "आँखों में आँसू और दोनों हाथ जुड़े हुए"—यह था भरत का चित्र जब वे बोलने को प्रस्तुत हुए :

भनत कमल कर जोरि धीर धुरन्धर धीर धरि,
वचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ।

ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की वाणी का क्या कहना ! उसमें विवेक था, धर्म था, शास्त्र और पुराणों का समन्वय था। उसका उत्तर देना क्या सरल कार्य था ? पर भरत भी तो भरत ही थे। वाणी के आने की राहें भी अलग-अलग हैं। कहीं तो वह केवल कण्ठ से जीभ में आ जाती है और लोग ऊब उठते हैं कि यह क्या भोंड़ा रूप है और कहीं वह मस्तिष्क से सज-सवँर कर, सब कुछ साँचे में ढला, सुनियोजित शृंगार किए आकर चकित कर देती है कि

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लोग देखते रह जायें। पर उसके आने का एक मार्ग और है, जो अनाहूत अतिथि की भाँति जाने कब हृदय से आकर कण्ठ से व्यक्त हो जाती है। न वहाँ सज्जा है और न ही शृंगार आकर्षक होता है, पर हम जानते हैं। जैसे वह कमी को ढकने के लिए ही बनाया गया हो। पर हृदय की वह मोहक रूपसी जिसका सौन्दर्य पूर्ण है, वह इन बाह्य उपकरणों की अपेक्षा नहीं रखती। वह आती है तो जैसे व्यक्ति को देह की सीमा से ऊपर उठा कर विदेह बना देती है। प्रेमाश्रुओं से भींगी वह वाणी आकर हमारे मन-प्राणों को प्रेम-रस से भिंगो जाती है। जिसे सुनकर जैसे हम धुल पुँछ कर 'स्व' को पालते हैं। गुरुदेव का मस्तिष्क पूर्ण समष्टि बुद्धि के देवता से जुड़ा हुआ है। उनकी वाणी का शृंगार अनोखा है। पर भरत तो बुद्धि से नहीं, हृदय से बोलते हैं। वह हृदय जहाँ राम रहते हैं। उसे न शास्त्र का प्रमाण चाहिए न पौराणिक संगति, वह तो मन की बात है--पर प्रामाणिक ऐसी कि जिसे सुनकर एक बार धर्म कह उठे कि आज ही मैंने अपने को सही अर्थों में जाना है। गुरुदेव ने भी प्रभावित किया था लोगों को--सब उनकी वाणी का समर्थन करने की भावना लेकर ही वहाँ आए हुए थे। पर यह क्या हुआ कि जैसे नदी में पूर आकर वहा ले जाय अपनी वेगवती धारा में मिट्टी के घरों को कि जिनकी सुदृढ़ता पर गर्व रहा हो कि ये तो टूटने से रहे। भरत की वाणी व्यक्त हुई तो रह गई सारी योजना एक ओर। सिखाया गया सारा पाठ ही जैसे भूल गया और लोग वह कहने लगे जो भरत की वाणी थी। या यों कहें कि भरत की वाणी से लक्ष-लक्ष नागरिकों का मूक हृदय बोल पड़ा। उस वाणी में क्या था ? डूबें तो उसमें।

बहिरंग दृष्टि से तो भरत का भाषण कर्त्तव्य और धर्म की अपेक्षा भावना का प्रतीक ही अधिक प्रतीत होता है। लगता है गुरु वशिष्ठ की वाणी में धर्म और कर्त्तव्य की प्रेरणा थी, जिसे भावुकता के कारण भरत ने अस्वीकार कर दिया हो। पर यह निष्कर्ष भरत-चरित्र का वास्तविक स्वरूप न समझ पाने का ही परिणाम है। भूमिका में ही यह कहा जा चुका है कि भरत चरित्र समन्वय का प्रतीक है। वहाँ भावना और कर्त्तव्य एक-दूसरे के विरोधी नहीं अपितु पूरक हैं। वस्तुतः भावना और कर्त्तव्य का विरोध भी उपरले स्तर पर ही है।

भावना ओर कर्त्तव्य के विरोध का तात्पर्य क्या हुआ —मन ओर बुद्धि का विरोध। मान लीजिए एक व्यक्ति भावना को वलात् दबा कर वलात् कर्त्तव्य में स्थिर होता है। अब हम चाहे उसकी जितनी भी सराहना करें, तथ्यहीय है कि ऐसे व्यक्ति के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व तो स्वीकार करना ही होगा। अब यह तो रस्साकसी जैसी बात हुई, जिसमें कभी एक पक्ष जीतता है, तो कभी दूसरा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सच तो यह है कि कर्त्तव्य की मुख्य प्रेरक शक्ति तो भावना ही है। अकेला कर्त्तव्य भावना को उदित नहीं कर सकता, पर भावना कर्त्तव्य को अपनी शक्ति का दान देकर उसे रसमयी और पूर्ण बना सक्ती है। श्री भरत का जीवन इस प्रणाली का ज्वलन्त दृष्टान्त है।

गुरु वशिष्ठ ने जो कुछ कहा श्री भरत ने उसका कोई खण्डन किया हो, ऐसी बात नहीं। यह तो उनके चरित्र की अपनी विशेषता है। प्रारम्भ में उन्होंने यही कहा :

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका, प्रजा सचिव सम्मत सबहीं का।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा, अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा।

फिर भी एक सवाल था——जिसका उत्तर कोई न दे सका। रोग के लक्षण की ही चिकित्सा होनी चाहिए अथवा उसको भुलाए रखने का प्रयास होना चाहिए, या उसके मूल कारण का भी निवारण किया जाना चाहिए।

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय वारुणी, कहहु कवन उपचार ॥

अयोध्या में एक घटना हुई और राम को वन जाना पड़ा। महाराज श्री ने प्राण का परित्याग कर दिया। इन सब बातों को जैसे सहज रूप से स्वीकार कर लिया गया हो और अब एक ही प्रश्न था उनके समक्ष कि अयोध्या को राजा की आवश्यकता है और भरत को वह पद स्वीकार कर लेना चाहिए। इसमें जो औचित्य है जैसे उस पर ध्यान नहीं है। अपितु आवश्यकता के अनुकूल औचित्य की व्याख्या की जा रही थी। भरत ने जो प्रश्न उठाया, वह नया नहीं था। यह तो सार्वकालिक समस्या है। समाज सत्य की खोज नहीं करता: जब जैसी आवश्यकता उसके सामने आती है बस उसी की चिन्ता करता हुआ अतीत और भविष्य दोनों को ही भुला देता है। और फिर परिणाम क्या होता है—इस प्रकार की कल्पित दवा बाद में स्वयं रोग बन जाती है। बेन को राजा बना दिया कि अराजकता के कारण समाज में अशान्ति न हो, पर बाद में क्या हुआ ? बेन स्वयं ही अशान्ति और अराजकता का केन्द्र बन गया। बल्कि अराजकता से भी अधिक भयावह। क्योंकि वह राजा बनकर शासक का प्रमाण-पत्र पा लेता है। यह तो ऐसा हुआ कि किसी को हम डाके के लिए प्रमाण-पत्र दे दें।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री भरत का प्रश्न था "क्या यह सब इतना ही सीधा-सरल और प्रामाणिक है जितना गुरुदेव द्वारा सुनाया गया है। तब अयोध्या की यह उथल-पुथल, नागरिकों का पीड़ा भरा मुख, महाराज श्री का प्राण-त्याग—यह क्यों? और जिस राजा का अधिकार ऐसी अशान्ति के बीच पनपे, जो इतनी पीड़ा से पाए हुए राज्य को अपना माने, क्या उससे यह आशा रखी जा सकती है कि वह लोगों को सुख-शान्ति देगा। किसी को सुरा पिलाकर हम फिर उससे बुद्धि संगत कार्य की आशा रख सकते हैं क्या?"

मोहिं नृप करि भल आपन चहहू, सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ।

दो० कैकई सुअ कुटिल मति, राम बिमुख गत लाज ।
तुम चाहहु सुख मोह बस, मोहि से अधम के राज ।।

करुउँ साँच सब सुनि पतियाहू, चाहिय धरम सील नर नाहू।

जिस तर्क को शास्त्र के प्रमाणों से सज्जित किया है, क्या उसमें कहीं प्राण है। कहा गया था कि "राजा ने राम को वन दिया और तुम्हें राज्य। राम ने आज्ञा का पालन किया और अब तुम्हें भी करना चाहिए।" धर्म का यह कैसा उपहास है? हाँ, मानता हूँ राजा ने राघवेन्द्र को वन जाने दिया। पर उसके बाद पीड़ा और पश्चाताप में जिसने प्राण देकर अपनी भूल का प्रायश्चित किया हो, क्या सचमुच ही उस पुण्यश्लोक की सच्ची आकांक्षा यही थी। पर ठीक ही तो है, यह सब देख-सुनकर, सारी आपत्तियों के मूल में स्वयं को कारण समझ कर भी यदि मैं जीवित रहा, तो मुझ जैसे निष्ठुर व्यक्ति के लिए धर्म का रूप भी यही होना चाहिए। लोग समझते हैं पिता श्री ने केवल प्रभु के वियोग में प्राण-त्याग किया है। पर नहीं-नहीं, उन्होंने तो इससे दो भावों की रक्षा की। प्रेमपन की रक्षा के साथ उन्होंने सोचा होगा ऐसे व्यक्ति का मुख क्या देखना, जो रामचन्द्र के वन-गमन का कारण बना:

मोहि समान को पाप निवासू, जेहि लगि सीय राम बनवासू ।
राय राम कहँ कानन दीन्हा, बिछुरत गमन अमर पुर कीन्हा ।
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू, बैठ बात सब सुनउँ सचेत ।
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू, रहे प्रान सहि जग उपहासू ।

गुरुदेव ने प्रस्ताव में जो परिवर्तन किया था, उसकी सूक्ष्म त्रुटि को तो केवल भरत ही समझ पाए। महर्षि ने कहा था—"राम के आने पर राज्य समर्पित

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कर देना"। इस तरह उन्होंने लौकिक धर्म के साथ समर्पण धर्म को भी जोड़ देना चाहा था। और समर्पण है भी उत्कृष्ट धर्म। पर प्रेममूर्ति उससे कहीं आगे हैं। आलवन्दारस्तोत्र में यामुनाचार्य ने उसी मधुर भाव का संकेत किया है। "प्रभु मैंने सोचा कि समर्पण करूँ, पर समर्पण तो स्वयं की ही वस्तु का किया जाता है। जब खोजता हूँ, तब मुझे अपना कुछ दिखाई ही नहीं देता—अतः समर्पण का स्थान एक प्रश्न ने ले लिया है। "किन्नु समर्पयामिते" तुम्हें क्या अर्पित करूँ।"

१४ वर्ष राज्य का स्वामित्व स्वीकार करने के पश्चात् प्रभु को राज्य अर्पित करने का तात्पर्य अयोध्या पर अपने स्वामित्व की स्वीकृति और दानी बनने की धृष्टता। पर अहं विहीनता की जिस स्थिति में भरत पहुँचे हुए हैं. वहाँ इतनी संभावना कहाँ ? उन्होंने राज्यकार्य का संचालन किया। पर राज्य वे वस्तुतः जिसका मानते थे उसके कहने पर हृदयाराध्य की पादुका को सिंहासनासीन करके वे एक सेवक की भाँति समग्र राज-काज करते रहे। अतः भरत की वाणी में बाह्य दृष्टि से भले ही कर्त्तव्य से अधिक भावना का बाहुल्य लग रहा हो, पर वस्तुतः श्री भरत ही वे प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने कर्त्तव्य की जड़-मूर्ति में भावना की प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता को समझा। अतः उन्होंने करुणा भरे शब्दों में प्रार्थना की :

आपन दारुण दीनता, सबहिं कहेउँ समुझाइ।
देखे बिनु रघुबीर पद, जिय को जरनि न जाई।।

प्रत्यक्ष रूप से देखने में स्वार्थ, पर इस स्वार्थ के अभाव में व्यक्ति दम्भी बन कर रह जाता है। आज के जीवन में हम हैं जो परोपकार का दम भरते हैं, पर जो हमारे पास होगा वही तो दूसरों को दान में देंगे। अतः हम स्वयं के जीवन की अशान्ति, राग-द्वेष का वितरण करते हुए परमार्थ का दावा करते हैं। पर प्रेममूर्ति ने कहा, मुझे तो अपने हृदय की जलन शान्त करने की अनुमति दीजिए। और तभी वे कोटि-कोटि हृदयों की ज्वाला शान्त करने वाले सुधांशु बन गए। पुरवासियों ने सुना तो लगा जैसे भरत की वाणी में उनकी हृदयतन्त्री बज उठी हो। जैसे आतप सन्तप्त भूमि में रस-वर्षण के लिए घन घिर आए हों। वे गुरु वशिष्ठ के पूर्व नियोजित समर्थक थे। पर यहाँ तो जन-जन के कण्ठ से एक ही ध्वनि गूंज उठी। "प्यारे भरत युग-युग जियो। राम-प्रेम वारिधर सदा, इसी प्रकार रस-वर्षण करते हुए हमारे हृदयों को शीतल करते रहो। विरह पयोधि के नाविक तुमने आज कोटि-कोटि यात्रियों की जीवन रक्षा की"। गुरुदेव

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के विवेक कर्णधार के स्थान पर चुना गया भरत-प्रेम का कर्णधार। केवल एक ध्वनि :

दो० अवसि चलिय बन राम पहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।
सोक सिन्धु बूड़त सबहिँ, तुम अवलम्बन दीन्ह ।।

राम भगत अब अमिय अघाहू ।

प्रियतम राघवेन्द्र को वन जाते देखकर कोटि-कोटि नागरिक उनके साथ चल पड़े थे। उनका संकल्प था—"क्या होगा राघव रहित अवध में रह कर। हम रहेंगे वन में अपने आराध्य के सन्निकट"। पर राह से लौटना पड़ा। क्योंकि रात आई तो श्रमित हो निद्रा निमग्न हो गए। और राघवेन्द्र ने सुमंत्र से "खोज मारि रथ हाँकहुं ताता" का अनुरोध किया। सुषुप्त नागरिकों से दूर, बहुत दूर चले गए प्रभु। वे न खोज पाए प्रभु का मार्ग। पर आज अवसर मिला है कि वे भरत के साथ जाकर उन्हें पकड़ सकें। उलाहना दे सकें कि "रामभद्र हम सब को छोड़कर तुमने जो कष्ट से हमें बचाने की चेष्टा की वह तुम्हारी कृपा थी या निष्ठुरता ।"

मुझे इस कथा में जैसे सारे जीवों की गाथा दिखाई देती है। हम कितनी बार सब कुछ छोड़कर उनके रथ के पीछे दौड़ पड़ते हैं। पर बार-बार राह से लौटना पड़ता है। क्योंकि वह जो उदार है, हमारी क्षणिक भावुकता को पहचानता है। वह द्रवित हो उठता है। क्योंकि हम चलते हुए थक जाते हैं और भाव से नीचे उतर शरीर में आकर सो जाते हैं और तब उस अँधेरी रात में वह किधर चला गया, पता नहीं लग पाता। पर इसके साथ एक सन्देश है। हम भरत प्रेम का आश्रय लेकर उसकी राह ढूंढ सकते हैं। इन्हें भुलावा देने की शक्ति नहीं है उस छलिया में। भरत-आँखों में नींद कहाँ ? और श्रम भी कैसा ? वह शरीर में रहता कहाँ है ! वह राह दिखावे तो हम नटनागर को भी चुनौती दे दें कि मिलने से रोक लो तो जानें। यह भरत-प्रेम है कि राह दिखाता है—उनसे मिलाता है। अतः आज भरत के आह्वान पर पुनः पुरवासियों में राम मिलन की आकांक्षाएँ उमड़ पड़ीं। सभी लोग घर-बार की रक्षा के साथ वाहनों की व्यवस्था में संलग्न हैं। पर जिन्हें गृह-रक्षा के लिए नियुक्त किया गया, उनकी पीड़ा असह्य थी। मानो उन्हें मृत्यु-दण्ड दे दिया गया हो। उनकी व्याकुलता देखकर तो अनेकों की यही सम्मति होने लगी कि सभी को चलने की छूट दो। नष्ट हो जाने दो गृह-सम्पत्ति को, जो राम-मिलन में बाधक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जेहि राखहिं कहु रह रखवारी, सो जानइ जनु गरदनि मारी ।
कोउ कह चलन कहहु जनि काहू, को न चहिहि जग जीवन लाहू ।।

दो० जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातुपितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद, होइ न सहज सहाइ ।।

पहली प्रकार के नागरिक वे थे जिनका राम में स्नेह होते हुए भी घर के प्रति राग था और दूसरे हैं भावुक जिन्हें राम-प्रेम में सब कुछ त्यागने का जलाने का भावोन्माद है। पर भरत क्या हैं ? रागी अथवा त्यागी ? उन्होंने भी भवन में लौटकर सेवा-धर्म में सजग सेवकों को रक्षा के लिए नियुक्त किया। क्या भरत में भी घर के प्रति मोह था ? वे सब कुछ छोड़कर राम की ओर चल पड़ने की अनुमति क्यों नहीं देते। भरत भाव वस्तुतः राग और त्याग दोनों से ऊपर है। प्रथम प्रकार के लोग घर को अपना मानते थे अतः रक्षा की चिन्ता थी। दूसरे प्रकार के लोग त्याग को प्रस्तुत थे पर घर को अपना ही मानते थे तभी उसके जला देने का अधिकार स्वीकार करते थे। राग से त्याग में ऊँचाई हो सकती है, पर उसमें "मैं" की स्वीकृति है। अतः "मैं" रहते हुए राग में भी भय है और त्याग में भी। धर्म धुरन्धर ने सोचा : मुझे न वस्तुओं को लेने का अधिकार है न नष्ट करने का। यह हमारे राम की पुनीत थाती हैं, जिसकी हमें रक्षा करनी है। इसीलिए रक्षक रखकर भी वस्तु में राग नहीं। और इतने बड़े राज्य के त्याग के पश्चात् भी वे 'स्व' दृष्टि में त्यागी नहीं। क्योंकि वस्तु राम की थी, उसमें त्याग का और ग्रहण का प्रश्न ही कहाँ उठता है। इसी लिए उनका चरित्र पतन की आशंकाओं की सीमा से परे है।

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू, नगर बाजि गज भवन भँडारू ।
सम्पति सब रघुपति कै आही, जौ बिनु जतन चलउँ तजि ताही।
तौ परिणाम न मोर भलाई, पाय सिरोमणि साई दोहाई ।
करइ स्वामि हित सेवक सोई, दूषन कोटि देइ किन कोई ।
अस बिचारि सुचि सेवक बोले, जे सपनेहु निज धरम न डोले ।

माताओं के लिए सुखासन और पालकियों की व्यवस्था की गई। और समस्त पुरवासियों का समूह भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर चल पड़ा चित्रकूट की ओर। पर भरत और शत्रुघ्न की ओर देखते ही सब लोग वाहनों से उतर कर पैदल चलना प्रारम्भ कर देते हैं। क्योंकि वे दोनों प्रभु के पयादे वन-भ्रमण की भावना से प्रेरित होकर पैदल जो चल रहे हैं। कौसल्या अम्बा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ने देखा और परिस्थिति की गुरुता का उन्होंने अनुभव किया। भरत का यह अनुकरण लोगों के लिए कष्टदायक सिद्ध होगा। बाह्य अनुकरण में यही कठिनाई है। किसी को श्रेष्ठ क्रिया में संलग्न देखकर साधारण व्यक्ति भी उत्साहित हो उठता है और वही करने चल पड़ता है। पर आन्तरिकता के अभाव में वही क्रिया भार बनकर प्रतिक्रिया का कारण बन जाती है। पर अनुकरण व्यक्ति का स्वभाव है, उसे कुछ कहकर रोकना भी तो कठिन है। क्योंकि निषेध से व्यक्ति के स्वाभिमान पर चोट पहुँचती है और उसे यह प्रतीत होता है कि जैसे उसे हीन समझा जा रहा हो। ऐसी परिस्थिति में माँ अन्यों से तो क्या कहतीं। उन्हें भरत पर भरोसा था। अतः भरत के समीप पहुँच कर माँ ने कहा : "लाल ! लोगों की शारीरिक स्थिति को देखो। और तुम्हारे पैदल चलने पर अन्य लोग भी यही चेष्टा करेंगे। अतः मैं चाहती हूँ कि तुम रथ पर आरूढ़ हो जाओ"। स्नेहमयी कौसल्या अम्बा का यह कहना उनके स्वभाव और चरित्र के अनुरूप ही था।

भरत समीप राखि निज डोली, राम मातु मृदु बानी बोली।
तात चढ़हु रथ बलि महतारी, होइहि प्रिय परिवार दुखारी।
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू, सकल सोक कृशनहिं मग जोगू।

यहाँ भरत की धर्मधुरीणता और समन्वय-साधना देखने योग्य है।

माँ की आज्ञा को चित्रकूट तक के लिए मान लेने का क्या मनोवैज्ञानिक अर्थ होता ? ऐसा व्यक्ति तभी करता है, जब उसके तप के मूल में केवल क्षणिक प्रदर्शन के द्वारा झूठी प्रशंसा पाने की भावना हो। ऐसा व्यक्ति तपस्वी और आज्ञाकारिता दोनों की सराहना प्राप्त करना चाहता है। जब कि उसके तप में दम्भ और आज्ञाकारिता में चरित्र गत दृढ़ता का अभाव ही मूल प्रेरक रहता है। तब क्या माँ की आज्ञा अस्वीकार कर के भी उन्हें अपने निश्चय पर दृढ़ रहना चाहिए था। साधारण धर्म की दृष्टि से यही उपयुक्त कहा जा सकता है, पर भरत का जीवन-दर्शन इन सबसे ऊपर है। उन्होंने लोगों के कष्ट का निराकरण करना अपना कर्तव्य समझा। पर साथ ही उसमें व्रत-निर्वाह का अविचल संकल्प भी था। इसीलिए उन्होंने अपने पैदल चलने में एक त्रुटि खोज निकाली। "आह ! मैंने इस क्रिया को लोगों के समक्ष प्रकट क्यों हो जाने दिया"। अतः लोगों को वाहनों पर आरूढ़ करने के लिए वे स्वयं भी बैठ गए। पर दूसरे दिन उन्होंने पैदल यात्रा की तो ऐसे छिपे ढंग से कि गिने-चुने सेवकों को छोड़कर दिन भर कोई न जान सका। सायंकाल को पुरवासियों ने सुना कि भरत आज पैदल आए।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भरत पयादेहिं आए आजू, भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ।

सुनि शब्द से गोस्वामीजी ने इसी तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इस तरह उनके चरित्र में एक साथ आज्ञाकारिता, पर-दुखकातरता के साथ अविचल व्रत का पालन है। और तब उनका धर्म व्यक्तिपरक और केवल आत्मकल्याण परक न होकर विराट की महद् भावना का सन्देश वाहक बन जाता है।

× × × ×

राम-दर्शन की उत्कण्ठा से आकुल यह विशाल समाज श्रृङ्गबेर पुर के निकट पहुँचता है। राम-सखा निषाद ने सुना और आशंका से उनका हृदय भर उठा। क्योंकि उन्हें समाचार मिला था कि भरत के साथ चतुरंगिणी सेना है। उनको लगा कि यह अभियान मेरे हृदयेश्वर के विरुद्ध है। निषाद का इस प्रकार सोचना उनके हृदय के उत्कृष्ट प्रेम की ही सूचना देता है। कहा जाता है कि प्रेमी के हृदय में अनिष्ट की आशंका का उदय ही पहले होता है। "प्रेमानिष्ट शंकी" फिर श्री भरत-चरित्र की गहनता भी तो यही है। क्योंकि बुद्धि संगत कार्य तो यही लगता है कि राम से मिलने और लौटाने के लिए सेना ले कर जाने की क्या आवश्यकता है। श्री भरत के उस दैन्य की कल्पना करना भी असंभव है, जिससे प्रेरित हो कर वे सब उपकरणों के साथ जा रहे थे। वे तो यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि मैं राघवेन्द्र से लौटने के लिए कह सकता हूँ। उन्हें तो भय लगता था कि प्रभु मुझ जैसे पापी का मुख भी देखेंगे या नहीं :

राम लषण सिय सुनि मम नाऊँ, उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ।

पर उन्हें तो एक ही भरोसा था—संभव है अपनी प्रजा और सेना की पीड़ा प्रभु को पुनः अयोध्या ला सके। किसी ने निषाद से कहा—महाराज भरत आ रहे हैं अतः उनका स्वागत होना चाहिए। राम-सखा की आँखें आवेश में लाल हो उठीं, भुजाएँ फड़कने लगीं। "हाँ हम स्वागत करेंगे। हमारे आराध्य के विरोधी का जैसा स्वागत होना चाहिए, हम वैसा ही करेंगे।" अपनी छोटी-सी ग्रामीण भीड़ के सामने निषाद गरज उठा। "मित्रो ! आज हमारी परीक्षा का अवसर है। गंगा पार करने से पहले भरत को अनेक सरिताएँ पार करनी पड़ेंगी। युद्ध-सरिता और हमारे रुधिर की सरिता में स्नान किए बिना क्या वे राम की ओर एक पग भी रख सकते हैं ? हम जानते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड के देवता और असुर भी हमारे प्रभु के समक्ष खड़े नहीं हो सकते। पर तुम्हारे

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इस निषाद को उन्होंने मित्र कहकर पुकारा। आज उनके इस शब्द की सार्थकता सत्य सिद्ध करनी है। हमारे लिए इससे अधिक पुनीत क्षण कौन हो सकता है। गंगा के इस पवित्र तट पर जहाँ हमारे राघवेन्द्र के चरण कमल पड़े हैं आज हमारा रुधिर उसके कण-कण में समा जाएगा।

समर मरण पुनि सुरसरि तीरा, राम काज क्षण भंगु सरीरा।
भरत भाइ नृप मै जन नीचू, बड़े भाग अस पाइय मीचू।
तजउँ देह रघुनाथ निहोरे, दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।

यह निषाद के हृदय की पुकार थी, जो शत-शत कण्ठों से जयध्वनि बनकर फूट पड़ी। उत्साह से भरे हुए निषादों का समूह आज अपने भोथरे अस्त्रों को लेकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। उनकी ढाल थी प्रभु चरणों की पनही। धन्य हैं सखा निषाद तुम्हारे स्नेह को! तुम्हें सखा पुकार कर प्रभु ने उचित ही किया था। तुम सचमुच ही लोकरक्षक राम की रक्षा कर सकते हो। क्या तुम्हारे इस वेश के समक्ष काल भी अपना यमदण्ड ले कर आ सकता है? क्या तुम्हारी इस ढाल से टकरा कर उसका दण्ड चूर न हो जायगा? तुम अपराजित हो।

पर सखा! जो सामने आ रहा है उससे युद्ध कर सकोगे क्या? जानते हो उसके नाम श्रवण मात्र से प्रभु के हाथ से अस्त्र गिर जाते हैं। धीर-अधीर हो उठते हैं। आज यह अनोखा ही युद्ध होगा। क्योंकि दोनों ओर की अस्त्र और ढाल सब एक ही है। तुम्हें भरोसा है प्रभु पनहीं का और उधर भी यही पुकार है। "मोरे शरण रामहिं की पनहीं"। तब कौन जीतेगा, कौन हारेगा, इसे बताना क्या संभव होता?

पर अन्त में बँधना पड़ेगा तुम्हें भरत की भुजा के बन्धनों में। कैसी मधुर होगी वह पराजय। प्रेम का रस तो विजय में नहीं, पराजय में ही है।

पर अभी तो निषाद ने युद्ध-वाद्य बजाने की आज्ञा दे ही दी। और तभी छींक हुई और चौंक पड़े सभी निषाद। वृद्ध ग्रामीण ने बताया: इसका फल है युद्ध नहीं होगा। भक्त सावधान हुआ। कुछ पश्चाताप भी हुआ। ठीक ही तो है भरत के भाव का पता लिए बिना यह कार्य अविवेक मूलक ही होने जा रहा था। भेंट सजाने की आज्ञा दी गई, क्योंकि अभी भी वे सजग थे। भरत को समझना शेष था।

× × × ×

'बुझि मित्र अरि मध्य गति तब तस करब बहोरि।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भेंट के लिए नाना प्रकार की वस्तुएँ उन्होंने मँगाई—इसे भेंट कह लें अथवा परीक्षा—

कन्द मूल फल खग मृग माँगे ।
मीन पीन पाठीन पुराने, भरि भरि भार कहारन आने ।

(१) कन्द, मूल, फल, (२) खग-मृग, (३) मीन। सात्विक, राजस, तामस। तीन प्रकार की वस्तुओं का अभिप्राय है कि व्यक्ति अपनी भावनानुरूप ही भेंट पहले ग्रहण करता है। यदि मत्स्य की ओर पहले दृष्टि गई, तो निश्चित रूप से वे राम-विरोधी हैं। यदि राजस "खग-मृग" दृष्टिगत हों, तो केवल दिखावे के लिए जा रहे हैं। हाँ कन्द, मूल, फल उनके सद्भाव का सूचक समझा जाएगा। इस प्रकार भेंट और परीक्षा के आयोजन के साथ निषाद राज श्री भरत से मिलने के लिए चले, पर त्रिगुणातीत भरत की दृष्टि इन वस्तुओं पर कैसे जाती ? जिसे अयोध्या का विशाल राज्य न लुभा सका, उसे ये तुच्छ वस्तुएँ आकृष्ट कर लें, भला यह कैसे सम्भव था। उनकी पवित्र प्रेममयी दृष्टि तो पड़ी राम-सखा पर और गुरुदेव से प्रश्न हुआ—कौन हैं यह महाभाग ? उत्तर—मिला "राम सखा गुह" और दूसरे ही क्षण श्री भरत रथ छोड़कर दौड़ पड़ते हैं उनसे मिलने के लिए। आज प्रेम ने मर्यादा का बाँध तोड़ दिया—

राम सखा सुनि स्यन्दन त्यागा, चलेउ भरत उमगत अनुरागा ।
दो० करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहु लषण सन भेंट भइ, प्रीति न हृदय समाइ।

राम-प्रेमी की भला क्या जाति। "साहिब को गोत गोत होत है गुलाम को" फिर यह तो राम-सखा हैं, जिन्हें हृदय से लगा कर प्रभु ने अपने को धन्य माना। श्री भरत और निषाद का यह मिलन अभूतपूर्व था। और गुरु वशिष्ट एक बार इस प्रेम-मूर्ति के सामने पराजित हुए। शिष्य बाजी मार ले गया। ब्रह्मर्षि में ब्राह्मणत्व के संस्कार जागृत थे, इसलिए वे राम-सखा के पावनालिंगन से वंचित ही रहे। तब सर्वथा एक नया दृष्टान्त सामने आया और गुरु को शिष्य का अनुगामी बनना पड़ा। धन्य है वह गुरु जिसे ऐसा शिष्य प्राप्त हो (चित्रकूट में यह बात स्पष्ट हो जाती है)।

लोगों के विश्रामादि की व्यवस्था करके श्री भरत 'राम-सखा' से वह स्थान दिखाने की प्रार्थना करते हैं, जहाँ सिंसुपा की पुनीत छाया में राघवेन्द्र ने विश्राम किया था। राम-सखा के हाथों में हाथ दिए चलते देख महाकवि मुग्ध हो गए

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

और उपमा देना चाहते हैं किन्तु "निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि" और तब निरुपम के लिए मूर्तिमान 'प्रेम' की उपमा देकर सन्तुष्ट होते हैं।

× × × ×

जनु तनु धरे बिनय अनुरागू।

× × × ×

उस मंगलमय तरु की छाया में अब भी कुस साथरी पूर्ववत् बिछी हुई है। 'राम-सखा' ने उसे सुरक्षित रख छोड़ा है—अपने प्रीतम, अपने सखा और आराध्य की विश्राम-स्थली समझ कर, किंवा प्रभु ने ही भैया भरत की "नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ" के लिए इसे यहाँ सुरक्षित रखने की प्रेरणा निषाद के मन में की है। अहा! वह कुस साथरी नहीं प्रेमी के लिए साक्षात् प्रभु का ही रूप है। जहाँ प्रभु के चरण कमल पड़े हैं, वह स्थान समस्त तीर्थों से बढ़कर पावन है।

× × × ×

जहाँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय विश्राम।
अति सप्रेम साने भरत, कीन्हेउ दण्ड प्रणाम॥

× × × ×

और यह क्या चमक रहा है स्वर्ण बिन्दुओं जैसा। हाँ! कनक बिन्दु ही तो हैं। अच्छा तो ये श्री किशोरीजी के आभूषणों के ही अंग जान पड़ते हैं। पर यहाँ क्यों रह गए भला ए? अवध से चलते समय तो सभी आभूषणों ने, नूपुरों को अपना प्रतिनिधि बनाकर श्री किशोरीजी से प्रार्थना की थी।

मनहु प्रेम बस बिनती करहीं, हमहिं सीय पग जनि परिहरहीं।

उनकी प्रार्थना स्वीकृत भी हुई। पर इतने दूर आकर "कनक बिन्दुओ! बताओ तो भला तुम ने उन्हें कैसे छोड़ दिया? जिनकी चरण-धूलि का स्पर्श पाने के लिए अमलात्मा महामुनीन्द्र भी तरसा करते हैं। तुम बोलते क्यों नहीं? क्या अम्बा ने ही तुम्हारा त्याग कर दिया है? तो भला किस अपराध पर? अम्बा में क्रोध? अवश्य ही कोई गुरुतर अपराध हो गया होगा तुम से। अब समझा, 'विधि हरि हर पद' को भी तुच्छ समझने वाला निष्काम प्रेमी भी तुम्हारी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ओर लोभ भरी दृष्टि से देख रहा है। न रह सका स्थिर और धारण कर लिया उठा कर मस्तक पर—

कनक बिन्दु दुई चारिक देखे, राखे सीस सीय सम लेखे।

जान पड़ता है तुम सब भी भरद्वाज जी का ही मत मानते हो—प्रभु की प्राप्ति जो परम फल है, उसका भी फल है "भरत दरश"—

× × × ×

तेहि फलकर पुनि दरस तुम्हारा, सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

× × × ×

कनक बिन्दुओ! कौन कहे तुम्हारे भाग्य को। तुम्हें फल का भी फल प्राप्त हुआ है। अवश्य ही करुणामयी पराम्बा तुम पर रीझ गई होगी। तभी तो इस सिसुपा तरु के नीचे तुम्हें भरत दरश के लिए छोड़ गई हैं। अथवा सम्भव है तुम लोगों को अपने सौभाग्य पर गर्व हो गया हो इसीलिए माँ ने प्रेम पथ पर चलना सीखने के लिए तपःपूत प्रेम-मूर्ति भरत के आने तक प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ दिया हो। कुछ भी हो दोनों ही, प्रकार से तुम धन्य हो गए। बताओ तो भला विश्व के इतिहास में कौन स्वर्ण कण तुम से अधिक आदर का भागी हुआ होगा। त्याग-मूर्ति के मन में इतना आकर्षण पैदा कर के तुम अमर हो गए। सिसुपा वृक्ष के नीचे श्री भरत ने दो प्रसाद प्राप्त किए। कनक बिन्दुओं से भी पहले श्री भरत ने प्रभु की चरण रेखा रज को आँखों में लगा लिया था।

चरण रेख रज नयननि लाई, कहत न बनइ प्रीति अधिकाई।

धूल और सोना। हम लोगों की दृष्टि में दोनों के मूल्य में कितना पार्थक्य? पर भरत के लिए वह दोनों ही प्रसाद था। मूल्य प्रभु के संस्पर्श और सम्बन्ध का है, वस्तु का नहीं। धूल को केवल नेत्रों में लगाया। यद्यपि आगे चल कर अन्यत्र धूल हृदय और नेत्र दोनों स्थलों पर लगाई गई। "रज सिर धरि हिय नयन्हनि लावहिं।" पर यहाँ तो हृदय को इस सौभाग्य से वंचित ही रखा गया। कारण भी है। कुस साथरी को देख कर आँखें द्रवित हो उठीं। पर इस क्षण भरत हृदय पर अत्यन्त रुष्ट है:

पति देवता सुतीय मनि, सीय साथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबिते कठिन बिशेष॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इस दृश्य को देखकर भी यदि हृदय विदीर्ण नहीं हो गया, तो उस निष्ठुर को क्या रज देना ? अनोखी भाव तरंगे उठतीं हैं भरत के मन में। आगे चल कर लगा कि कठोर को कोमल भी तो रज स्पर्श से ही होना है। अहिल्योद्धारक धूल संभव है मेरे हृदय की जड़ता को दूर कर सके। और तब हृदय को भी रज-स्पर्श का सौभाग्य देने लग जाते हैं।

निषाद ने इस अनोखे प्रेमी के दैन्य को देखा तो चकित हो उठे। याद आ गई उनको वह पुनीत रात्रि जब प्रभु भरत का स्मरण कर विह्वल हो गए थे। कितनी सराहना उस दिन भरत की श्री मुख से सुनने को मिली थी ? आज उसकी सार्थकता प्रत्यक्ष हो गई। और तब उन्होंने भाव भरे शब्दों में प्रेम-मूर्ति से कहा :

बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहना रावरी ।।
तुलसी न तुम सौं राम प्रीतम कहत हौं सौहें किए ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरज हिए ।।

प्रभु की वार्ता में संलग्न दोनों प्रेमी आवास स्थान पर लौट कर आते हैं। अयोध्या के नागरिक भी सिंसुपा वृक्ष का दर्शन करते हैं। प्रदक्षिणा करते हैं। प्रभु के आवास ने तो उस स्थल को धन्य बनाया ही था। पर आज भरत के आँसुओं से सिंचित होकर वहाँ का कण-कण मानो भावमय हो रहा था। प्रत्येक व्यक्ति वहाँ जाकर अनोखी भाव-समाधि में डूब जाता है।

रात को नीद कहाँ ? प्रातः काल हुआ। निषाद जी के सुप्रबन्ध से पार उतरने में शीघ्रता हुई। और पुनः यात्रा प्रारम्भ हो गई।

× × × ×

पादत्राण विहीन सुकुमार चरण। और दूसरी ओर अभागे देव भी कठिनाइयों द्वारा मार्ग से विरत करना चाहते हैं। पर वह अनोखा प्रेमी चौगुने उत्साह से बढ़ता जा रहा है अपने राघव की दिशा में। अपने प्रभु में डूबे हुए व्यक्ति को सूर्य की प्रखर किरणों और भूमि की कर्कशता का ध्यान कहाँ ? सेवक बार-बार प्रार्थना करते हैं "नाथ ! अश्व पर सवार हो जाएँ" उत्तर मिला—

× × × ×

राम पयादेहि पाँय सिधाए, हम कह रथ गज बाजि बनाए ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

× × × ×

"मित्रो ! मैं तो धर्म का भी पूर्ण रीति से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। उचित तो यही था कि मैं सिर के बल चित्रकूट तक जाता। जिस भूमि में प्रभु के चरण कमल अंकित थे, वहाँ मेरा मस्तक पड़ता, किन्तु मैं शक्तिहीन हूँ ऐसा न कर सका। तो क्या आप लोग अश्व पर सवार करा कर मुझे सेवक-धर्म से सर्वथा विरत कर देना चाहते हैं ? नहीं, नहीं सेवक धर्म इतना सुगम नहीं"—

× × × ×

सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा, सब ते सेवक धर्म कठोरा।

× × × ×

इस एक वाक्य में भरत ने सेवा-धर्म का सर्वस्व ही बता दिया। "सेवा धर्मो परम गहनः योगिनामाप्य गम्यम्" का इससे उचित अर्थ करना ही कठिन है।

(१) सेवा केवल समीप होने पर ही नहीं की जाती। पूर्ण जागरूकता तभी सम्भव है, जब स्वामी की सत्ता का सर्वदेश और सर्वकाल में अनुभव किया जाए। कौशलेन्द्र को इस मार्ग से गए बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं, पर श्री भरत के लिए अब भी उसके कण-कण में प्रभु का स्पर्श है। और प्रतिक्षण उनके नेत्रों के सम्मुख राघव के चरण कमल और उनकी सुघर रेखाएँ नाच रही हैं।

(२) सेवक को अभिमान से सर्वथा दूर ही रहना चाहिए। अपने भाव और क्रिया में अपूर्णता देखना ही पूर्णता की ओर ले जाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है, क्योंकि भाव की कोई सीमा नहीं। अपनी भावना में पूर्णता का आभास होते ही अहंकार रूप कुम्भकर्ण का हृदय में निवास हो जाता है।

मोह दश मौलि तदभ्रात अहँकार।
पाकारि-जित काम विश्राम हारी ।।

(विनय पत्रिका)

फिर सेवक में जागृति कहाँ, जो उसका मुख्य धर्म है। तब तो वह "माँगेसि नीद मास षट केरी" का उपासक हो जाता है। श्री भरत का पैदल चलते हुए भी अपनी त्रुटि को देखना सेवा-धर्म का महान आदर्श है। साथ के सेवक तो आचरण द्वारा शिक्षा देनेवाले इस महान शिक्षक की बात को सुनकर ग्लानि से गड़े जा रहे हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देखि भरत गति सुनि मृदु बानी, सब सेवक गन गरहिं गलानी ।

× × × ×

त्रिवेणी के पावन पुलिन पर पहुँच कर समग्र पुरवासियों सहित श्री भरत ने स्नान कर ब्राह्मणों का उचित सम्मान किया। अन्य लोगों ने तीर्थराज की महिमा को दृष्टिगत रखकर ही यह सब किया था, पर राम-प्रेमी तो प्रेम का ही भिखारी है। वह धर्मपालन भी केवल अपने प्यारे की चाह के लिए करता है। स्नान करने के पश्चात् महा-भागवत की दृष्टि वह खोज पाई, जो दूसरों को न दीख सका।

देखत स्यामल धवल हिलोरे, पुलक सरीर भरत कर जोरे ।

अहा! श्याम रंग में रंगी हुई यमुना और गौरांगी गंगा-युगल सरकार राम-सीता का स्मरण कराने लगी। यह भरत के मुख से तो प्रकट होगा नहीं, पर देखिए न उनके शरीर की पुलकावली––विना बताए हुए ही सब कुछ कहे दे रही है।

युगल कर कमल जुड़ गए और भरत भिखारी बन कर याचना करने लगे। माँगते तो सभी हैं। त्रिवेणी ने दिया भी बहुतों को होगा––धन, धाम, काम, सन्तान, धर्म, मोक्ष सब। पर त्रिवेणी के सामने आज एक अनोखा भिखारी खड़ा है, जिसे यह सब कुछ न चाहिए। सच कहना तीर्थराज क्या तुम्हें कभी ऐसा भिक्षुक मिला है? रघुवंश कुलोत्पन्न दाता होता है, भिक्षुक नहीं। पर यह तो स्वयं ही "माँगउ भीख त्यागि निज धरमू" का पाठ पढ़ते हुए तुम्हारी स्तुति कर रहा है, माँग रहा है, क्या?

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहँउ निर्माण ।
जन्म जन्म रति राम पद, यह बरदान न आन ।।

'रति राम पद' का अर्थ भी सुन लीजिए। वह प्रेम सर्वथा वैयक्तिक और विलक्षण है। संसार से तो सभी प्रेम-पथ पथिक अपने प्रेम को छिपाना चाहते हैं, पर यह तो उनसे भी आगे है।

जानउ राम कुटिल करि मोही, लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ।
सीता राम चरण रति मोरे, अनु दिन बढ़ई अनुग्रह तोरे ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कैसा अद्भुत भाव है।—"राम मुझे कुटिल समझें।" खोज डालिए विश्व के इतिहास को इस अद्भुत भाववाला ढूँढे न मिलेगा। लोगों ने प्रेम किया और खूब किया पर प्रियतम न मिला, तो मुँह से निकल ही पड़ा—"निठुर ? हम तो तेरे लिए सब कुछ छोड़कर प्राण देते हैं, पर एक तू है जो हमें तड़पते देखकर मुस्कराता है।" पर पूछे कोई भरत से तो उत्तर मिलेगा—"आपने त्याग, प्रेम दोनों ही किया है। पर यहाँ न तो त्याग ही दीखता है और न प्रेम। त्याग करने चला तो अपना कुछ दीखा ही नहीं जिसका त्याग करता—सब उसका ही तो था। प्रेम का तो स्पर्श भी नहीं है इस कुलिस कठोर हृदय में। तब शिकवा शिकायत का स्थान कहाँ ?"

× × × ×

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि को ताते नाप न जोख ।।

× × × ×

हाँ तो त्रिवेणी से माँग रहा है—ऐसा प्रेमी जो स्वयं प्रेम का मूर्तिमान स्वरूप है। 'प्रेम' 'प्रेम' माँग रहा है। त्रिवेणी क्या तुममें इतना प्रेम है, जो इसे दे सको ? नहीं असम्भव। तब फिर तरँगायित होकर क्या कह रही हो ? तुम अपनी तरंगमयी भुजाओं से चरणस्पर्श करना चाहती हो ? इस भिखारी के चरण कमलों को पखारना चाहती हो ? धन्य करना चाहती हो अपने को ? क्या इस स्तुति से लज्जित होकर तुम पानी-पानी हुई जा रही हो ? पर बोलो अवश्य—देखो हाथ पसारे बड़ी उत्सुकता से वह महाव्रती तुमसे माँग रहा है, तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है। देने का साहस नहीं तो स्तुति ही सही :—

तात भरत तुम सब बिधि साधू। राम चरण अनुराग अगाधू ।।
बादि गलानि करहु मन माही। तुम सम रामहिं कोउ प्रिय नाही ।।

अच्छा ही किया जो तुमने स्पष्ट कर दिया "तुम सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं।" तुम्हें अच्छी तरह ज्ञात है, जब प्रभु तुम्हारे तट पर यमुना का श्याम जल देखकर भरत की स्मृति से व्यथित हो रो पड़े थे। उन आँसुओं को अपने वक्षस्थल में समेटे उस भाव का अध्ययन कर के भी उन दो बूंद आँसुओं की थाह का पता तुम्हें न लग सका था। अवश्य ही तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा उस दिन मतिधीर की इस अधीरता पर। आज तो तुम्हें ज्ञात हो गया न, प्रभु क्यों इतने व्याकुल रहते हैं, अपने भरत के लिए। त्रिवेणी ! युग-युगों तक लोगों के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पाप-ताप धोने रूप तपस्या का फल तुम्हें आज प्राप्त हुआ—'भरत दरश-स्पर्श के रूप में।

स्वार्थी देवताओ ! अन्त में तुम भी इस प्रेमी के समक्ष झुके ही। उचित तो था कि जब उस महत्प्रेमी ने प्रभु के पास जाने का निर्णय किया था, तभी से तुम उसके स्वागत-सत्कार में संलग्न हो जाते, पर तुम्हारा स्वार्थ इसमें बाधक था।

× × × ×

तीर्थराज प्रयाग की पावन भूमि भी भरत रूप नव प्रयाग के संस्पर्श से धन्य हो गई। साधना की इस पुनीत स्थली में रहनेवाले चतुर आश्रमी भी मूर्ति के दर्शन से कृतकृत्य हो गए। सभी को लगा कि जैसे भरत के रूप में उनका चरम आदर्श ही घनीभूत हो रहा हो।

प्रमुदित तीरथ राज निवासी, बैखानस बटु गृही उदासी।
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा, भरत सनेह शील सुचि सांचा।।

यह साधारण बात न थी। क्योंकि भिन्न-भिन्न आश्रमों की मर्यादाएँ पृथक् हैं, अतः कोई ऐसा पात्र प्राप्त होना असंभव ही है, जो सभी के आदर्शों का समन्वय प्रस्तुत कर सके। किन्तु इस असाध्य साधन की क्षमता भरत-चरित्र में है। ब्रह्मचारी का अविचल व्रत, गृहस्थ की कर्त्तव्य परायणता, वाणप्रस्थी का तप और सँन्यासी का सर्वत्याग सबको उनके चरित्र में एक साथ देखा जा सकता है। साधना और सिद्धि का ऐसा एकत्रीकरण किसी भी अन्य पात्र में असंभव है। लक्ष्मण के द्वारा भक्ति के स्वरूप के विषय में प्रश्न किए जाने पर प्रभु ने जिस साधन पद्धति का उपदेश दिया, वह वस्तुतः भरत में ही चरितार्थ होता है।

× × × ×

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती, निज निज धरम निरत श्रुति रीती।
तेहि कर फल पुनि बिषय बिरागा, तब मम धर्म उपज अनुरागा।।

× × × ×

राघवेन्द्र कथित साधन प्रणाली को श्री भरत के जीवन में देखिए।

× × × ×

शिव अभिषेक करहिं बिधि नाना, बिप्र जेवाँय देहिं बहुदाना।
माँगहि कुसल महेस मनाई, कुशल मातु पितु परिजन भाई।।

× × × ×

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कर्मकाण्ड का छोटा-से-छोटा कार्य भी उनके द्वारा उपेक्षित नहीं हुआ है। उनमें धार्मिकता के साथ प्रेम का अद्‌भुत समन्वय है। साधक के लिए क्रिया-कलाप कितने आवश्यक हैं, यह विज्ञों से छिपा नहीं। क्रिया-कलाप उसका लक्ष्य न होते हुए भी आलस्य प्रमाद को दूर रखने का अमोघ अस्त्र है। भरत-चरित्र को आदर्श मानने वाला साधक कभी च्युत नहीं हो सकता। 'प्रेम' के नाम पर उच्छृंखलता और श्रुति विरोध का वहाँ अवकाश नहीं। इसीलिए कविकुल चूड़ा मणि ने "कठिन कलिकाल" में भरत-चरित्र को ही अपना आराध्य और अवलम्ब स्वीकार किया।

× × × ×

भरत पयोधि के मन्थन से केवल प्रेमामृत ही व्यक्त हुआ हो ऐसी बात नहीं। समुद्र-मन्थन से तो १४ रत्न मात्र ही उत्पन्न हुए थे, अतः उनका नाम वता देना सरल है। किन्तु इस गम्भीर पयोधि से श्री भरत के गुण गण रूप अनन्त रत्नों का प्रार्दुभाव हुआ। इसीलिए उनकी गणना असम्भव मान कर महाकवि मौन हो गए। यत्र-तत्र उन्होंने अन्य रत्नों की भी चर्चा की है। प्रस्तुत प्रसंग में श्री भरद्वाज के मुख से एक रत्न के गुणों का गान हुआ—वह है श्री भरत का "यशचन्द्र"। कवि के ही शब्दों में उसकी विशेषता पढ़िए—

नव विधु बिमल तात यस तोरा, रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।
उदित सदा अँथइहि कबहूँना, घटिहि न जग नभ दिन दिन दुना।
कोक तिलोक प्रीति अति करही, प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरही।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू, ग्रसिहि न कैकई करतब राहू।
पूरन राम सुप्रेम पियूषा, गुरु अवमान दोष नहि दूषा।
राम भगत अब अभिय अघाहू, कीन्हेहु सुलभ सूधा बसुधाहूँ।

यह दिव्य सुधांशु तो भक्तों का जीवन-धन है। वे भक्त जिनके लिए महाकवि ने कुमुद और चकोर की उपमा प्रदान की है। दोनों उपमाएँ सम्भवतः भक्तों की दो श्रेणी को लक्ष्य में रख कर दी गई हैं।

(१) मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी।
(२) बालक शिशु सम दास अमानी।

ज्ञानी भक्त और प्रेमी भक्त। कुमुद ज्ञानी का प्रतीक है। जल में निर्लेप, मौन, शान्त रहता है। पर चकोर पक्षी है वह (विशेष पक्षवाला)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नेही है। मिलने की आकुल आकांक्षा उसके हृदय को सदा उद्वेलित किए रहती है और इसलिए वह अग्नि तक भक्षण कर लेता है। किसी ने पूछा यह क्या? सहृदय कवि ने उत्तर दिया—"चन्द्रमा का यह स्नेही उससे मिलना चाहता है, किन्तु विवश है। अन्त में उसने एक उपाय सोचा। भगवान भूत भावन शिव अपने भाल पर चन्द्र को धारण करते हैं, यदि किसी प्रकार उनके भाल तक पहुँच जाऊँ! सोचा रुद्र अपने भाल पर चिता भस्म का तिलक करते हैं, तो भस्म बनकर ही प्यारे से मिलूँ।" ऐसा है वह सर्वत्यागी चकोर।

पिय ते मिलौं भभूत बनि, शशि शेखर के गात।
इहइ बिचारि अँगार को, चाहि चकोर चबात।।

भरत यशचन्द्र ज्ञानी के कुमुद हृदय को विकसित कर, उसके हृदय में ही अव्यक्त सौरभ रूप प्रभु को व्यक्त कर देता है। प्रेम केवल सामीप्य में ही नहीं, दूरी में भी होता है। दूरी तो लोगों की दृष्टि में है। पर वह जो समाया हुआ है हमारे मन-प्राण में, हमसे दूर कहाँ? ननिहाल में श्री भरत थे लोक-दृष्टि में अवध से बहुत दूर, किन्तु वे तो अपने से कभी विलग न होनेवाले प्रभु के समीप ही थे—अति समीप। उनका यह चरित्र ज्ञानी भक्तों का आदर्श है। 'यशचन्द्र' से संकुचित हृदय कलिका खिल उठी। और वियोग में संयोग, शान्ति, तृप्ति और आनन्द की अनुभूति होने लगी।

चकोर ने देखा और एकटक देखता ही रह गया। उसने भी इस यश-चन्द्र को अपना आदर्श माना। समझ गया कि वहाँ तक पहुँचने पर ही सच्चा मिलन हो सकेगा। क्योंकि "पूरण राम सप्रेम पियूषा" पर क्या करना होगा इसके लिए? अचानक दीख पड़ा कि सर्व त्याग किये विना प्रिय से मिलन नहीं हो सकता। भरत-चरित्र सर्वत्याग की शिक्षा देता है। राज्य सुख, भोग, शरीर, प्राण, सबकी बाजी लगा देना होगा। और वह एकटक देखता हुआ सीख रहा है अपना पाठ। वह 'यशचन्द्र' दोनों को ही सुखद है—कुमुद हो अथवा चकोर। एक के हृदय में अमृत सिंचन से प्रभु पराग प्रस्फुटन कर रहा है, तो दूसरे को दृढ़ता और निष्ठा का दान।

विशाल वसुन्धरा के निरवधि काल में सहस्रों महापुरुष उत्पन्न हुए। अपनी यशचन्द्रिका से विश्व को उन्होंने आलोकित भी किया। किन्तु उनसे भी बढ़ कर दूसरा सूर्यवत् उत्पन्न हुआ और लोग भूल गए यशचन्द्र को। नव सूर्य के प्रखरोदय में वह अस्त हो गया। पर यह "यशचन्द्र" सर्वथा अलौकिक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अनन्त काल तक होने वाले प्रकाश पुंजग्रह आतेजाते विलीन होते रहे, पर इसकी यश-प्रभा अक्षुण्ण रहेगी। स्वयं अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक महिमान्वित प्रभु अवतरित होकर सूर्य के समान अज्ञान तिमिर नाश करते हुए भी इस चन्द्र की छवि का हरण नहीं कर सकते, फिर अन्य मानवों की तो कथा ही क्या? भगवान राम का चरित्र पूर्ण मानवता का प्रतीक है। उनके चरित्र को पढ़ लेने पर अन्य श्रेष्ठतम चरित्र वाले महापुरुषों का चरित्र फीका जान पड़ता है। पर 'भरत-चरित्र'—वह तो चौगुना चमक उठता है। इतना ही नहीं, राम-चरित्र के वाद भरत-चरित्र का अध्ययन करने पर उनके प्रति अगाध श्रद्धा बढ़ती ही जाती है।

महानुभावों ने विकास-ह्रास को एक अपरिवर्तनीय नियम माना है। लौकिक सूर्य-चन्द्र भी इस नियम के अपवाद नहीं। किन्तु यहाँ तो बात ही दूसरी है। खोजने पर भी इस चरित्र में ह्रास या पतन दृष्टिगोचर नहीं होता।

चन्द्रमा अपनी सुशीतल किरणों से श्रम हरण करता है। कुमुद चकोर को आनन्द और रस का दान देता है। फिर भी वह सबके लिए सुखद नहीं। चक्रवाक तो सूख ही जाता है, क्योंकि इसके आगमन से प्रिय का वियोग होता है। चन्द्रमा का उदय उसके हृदय को उत्तप्त कर देता है। पर यहाँ—

कोक तिलोक प्रीति अति करही।

× × × ×

मानस में अनेक पात्र महान हैं। उन्होंने अवतरित होकर विश्व में सुख-शान्ति का सृजन किया। पर उसके लिए उन्हें शान्त-उग्र दोनों ही वेश धारण करने पड़े। कृपा करने के लिए कठोर भी बनना पड़ा। राग-द्वेष-हीन होते हुए भी शत्रु बनकर संहार करना पड़ा। इसलिए भले ही उन्होंने प्रत्येक जीव से प्रेम किया हो, किन्तु बदले में अन्यों ने भी ऐसा किया हो, यह नहीं कहा जा सकता। श्री भरत इन सब से न्यारे हैं। वे प्रेम-मूर्ति हैं। उनमें अनुग्रह ही अनुग्रह है। उनके अनुग्रह का रूप भी सभी के दृष्टिगत होने योग्य है। अतः न तो वे किसी के विरोधी हैं, न कोई उनका। अपराधी को भी उन्होंने दण्ड देना नहीं सीखा। मन्थरा भी उनकी दृष्टि में क्षम्य है। उनका यह औदार्य अद्वितीय है। इसलिए लोग उनसे अति प्रीति करें यह स्वाभाविक ही है। पर इस औदार्य से हानि होती हो ऐसा नहीं, उनके दर्शन से ही हृदय में सद्भाव उमड़ पड़ता है। मनुष्य पवित्र और कृत-कृत्य हो जाता। उनकी प्रेम-सरिता लोगों के हृदय को निस्प्रयास धो डालती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ते सब भए परम पद जोगू, भरत दरश मेटा भव रोगू ।

इसलिए श्री भरत त्रैलोक्य हितैषी होने के साथ ही अजातशत्रु भी हैं। इन्द्र श्रेष्ठ पद प्राप्त कर भले ही गुरुदेव की अवहेलना करें, पर जो भरत साधारण-से-साधारण जीव की अवहेलना नहीं करते, जिनकी दृष्टि में 'निज प्रभु मय देखहिं जगत' है, वे गुरु वशिष्ठ की अवमानता करें, यह सम्भव ही नहीं। यहाँ तो राग-द्वेष-हीन महर्षि वशिष्ठ भी श्री भरत की श्रद्धा-भक्ति से उनके पक्षपाती बन जाते हैं। और खुले शब्दों में स्वीकार कर लेते हैं।

ताते कहउँ बहोरि बहोरी, भरत भगति बस भई मति मोरी ।

भगवान श्री राघवेन्द्र भी गुरु जी की इस वश्यता से चकित रह गए और उन्होंने श्रद्धा से नत होकर कहा—

जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी, ते लोकहुँ बेदहुँ बढ़ भागी ।
राउर जा पर अस अनुरागू, को कहि सकै भरत कर भागू ।।

पर प्रश्न यह होता है कि यश की इतनी प्रशंसा क्यों? लौकिक दृष्टि से यश-अर्जन श्रेयस्कर होते हुए भी भगवद्-मिलन के मार्ग में बाधक ही माना गया है। यशोलिप्सा व्यक्ति को मलिन बना देती है। सत्य से दूर कर देती है। अहंकार बिना यश अर्जन सम्भव नहीं। अतः महर्षि के द्वारा उनकी इतनी प्रशंसा का क्या अभिप्राय है? उत्तर भी वही है। यह सब गुण होते हुए भी वह प्रशंसित न होता यदि उसमें एक विलक्षण श्याम मृग का निवास न होता।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा । जहँ अस राम प्रेम मृग रूपा ।।

लोकैषणा से श्री भरत बहुत दूर हैं, उनकी भावना तो "लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही" में स्पष्ट है। उन्होंने यश का अर्जन नहीं किया है, अपितु यश ने ही अपने कलंक का प्रक्षालन करने के लिए (कलंक यह कि यश प्रभु से दूर कर देता है) श्री भरत का वरण किया है। मानों उसने यह स्पष्ट कर दिया कि राम-प्रेमी के द्वारा यश भी धन्य हो जाता है। वास्तव में श्री भरत में "पूर्ण राम प्रेम पियूष" का ही निवास है। उनका यश भी प्रभु के निकटतम पहुँचा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देने का सर्वोत्कृष्ट साधन है। महर्षि ने "यशचन्द्र" के प्रारम्भ और अन्त दोनों में राम-प्रेम की ही ओर संकेत किया—

"जहँ बस राम प्रेम मृग रूपा।" "पूरण राम सुप्रेम पियूषा।।"

इसीलिए जहाँ यश-अर्जन करनेवाले अपने को अमर करना चाहते हैं, वहाँ इस 'यशचन्द्र' का लक्ष्य दूसरों को प्रेमामृत का दान देकर अमर बनाना है। इसीलिए मुनिवर ने आमन्त्रित किया—

राम भगत अब अमिय सघाहू, कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहू।

'प्रेम' जैसे अलभ्य पदार्थ को वसुधा में प्रत्येक प्राणी के लिए सुलभ बना देनेवाले महापुरुष की तुलना दूसरों से को भी कैसे जाय। स्वयं परम कारुणिक उदार शिरोमणि भी प्रसन्न होकर मोक्ष का ही दान करते हैं। पर वह मोक्ष 'प्रेम' की तुलना नहीं कर सकता। प्रभु के दर्शन का फल है स्वरूप की प्राप्ति।

मम दर्शनफल परम अनूपा, जोव पाव निज सहज सरूपा।

पर जैसे दृढ़ जहाज भी कर्णधार के बिना समुद्र में डूब सकता है या बिना लक्ष्य के इधर-उधर भटकता रहेगा। उसी प्रकार ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भी मुक्ति के साथ उच्छृंखलता, अभिमान आदि आ सकते हैं और पुनः पतन।

जे ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरणि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदारपि परत हम देखत हरी।।

इसीलिए भक्त चूड़ामणि ने कहा—

सोह न राम प्रेम बिनु जानू, करणधार बिनु जिमि जलयानू।

स्थूल रीति से तो चार ही फलों को पुरुषार्थ माना गया है, पर भावुक भक्तों ने प्रेम को चरम फल स्वीकार किया है। इसीलिए मुनि भरद्वाज ने "प्रभु-दर्शन" का भी फल "भरत-दर्शन" स्वीकार किया।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं, उदासीन तापस बन रहहीं।
सब साधन कर सुफल सुहावा, लषण राम सिय दरसन पावा।।
तेहिकर फल पुनि दरस तुम्हारा, सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

मोक्ष की उपलब्धि साधनों द्वारा सम्भव है (भले ही वह अज्ञान निवृत्ति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के रूप में हो)। पर यह संत दरश तो प्रभु की कृपा का ही परिणाम है--साधन लभ्य नहीं।

जब द्रवहिं दीन दयालु राघव साधु संगति पाइए।

सच तो यह है कि जैसे कथा श्रवणादि साधनों से प्रभु-दर्शन की योग्यता उपलब्ध होती है, उसी प्रकार भरत-दर्शन की योग्यता उपलब्ध हुई, प्रभु-दर्शन से। मानो प्रभु तो इसी लक्ष्य से वन में आए थे। इसीलिए जहाँ कहीं विश्राम करते हैं, वहीं भरत की गुण गाथा गाकर लोगों के चित्त में अद्‌भुत उत्कण्ठा का उदय करा देते हैं। और सुननेवाला यही सोचता है--कौन है महाभाग जिसका स्मरण कर प्रभु भी भावमग्न हो जाते हैं। प्रभु का वह प्रचार आज सफल हुआ। जैसा कि महर्षि ने स्वयं कहा--

लषण राम सीतहिं अति प्रीती, निशि सब तुमहिं सराहत बीती।

और आज उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर मुनि कृतकृत्य हो गए। प्रशंसा से भी अधिक भावमय महापुरुष का दर्शन हुआ और उनके मुख से निकल पड़े यह शब्द--

भरत धन्य तुम जसु जग जयऊ।

और भक्त स्तुति का फल भी तत्काल हुआ। प्रेम मग्नता--

कहि असि प्रेम मगन मुनि भयऊ।

सारा प्रयाग धन्य-धन्य की ध्वनि से गूँज उठा। चारों ओर प्रेम-सरिता उमड़ कर लोगों को आप्लावित करने लगी। श्री भरत का अनुराग के कारण कण्ठ रुद्ध हो गया। विशाल नेत्र सजल हो उठे। पर हृदय विहारी तो प्रेमघन के द्वारा स्नेह रस की वर्षा करना चाहते थे। 'प्रेमतत्व' का निरूपण कराना चाहते थे। वे मौन कैसे रहने देते? वीणा-विनिन्दक कण्ठ से करुणा और व्यथा से पूरित एक रागिनी फूट पड़ी। वह कविता नहीं भरत के हृदय में चिर संचित व्यथा थी, जो मुखर होकर प्रेमतत्व की सच्ची व्याख्याता बनी।

एहि थल जौ कछु कहउँ बनाई, एहि सम अधिक न अध अधकाई।
तुम्हँ सर्वग्य कहउँ सति भाऊ, उर अन्तरजामी रघुराऊ।
मोहिं न मातु करतब कर सोचू, नहि दुखु जिय जगु जानिहि पोचू।
नाहिन डर बिगरिहि परलोकू, पितहु मरन कर मोहि न सोकू।
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए, लछिमन राम सरिस सुत पाए।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राम बिरह तन तजि छन भंगू, भूप सोच कर कवन प्रसँगू ।
राम लषण सिय बिनु पग पनही, करि मुनि वेष फिरत बन बनहो ।।

दो० अजिन बसन फल असन महि, सयन डानि कुसपात ।
यसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बर्षा बात ।।

श्री भरत नम्रता की मूर्ति थे, अत: वे अपने को उपदेश देने का अधिकारी नहीं मानते। वे तो अपने दुःख का कारण वता रहे हैं। पर यह केवल उनके दुःख का स्वरूप नहीं, पूर्णानुरागी का हृदय ऐसा ही होता है। प्रत्येक प्रेमी की भावना ही श्री भरत के मुख से व्यक्त हुई।

यह 'प्रेम' ढाई अक्षर का शब्द, किन्तु समझना श्रुतियों से भी अधिक कठिन। देवर्षि नारद ने तो "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपं" कहकर ही इसकी व्याख्या की है। प्रेम का वास्तविक स्वरूप वाणी का विषय नहीं। देवर्षि ने उसे "सूक्ष्मतरं अनुभव रूपं" कहा--वह अनुभूति का विषय है। पर हम तो उसकी प्रशंसा सुनते हैं, तो हृदय मचल उठता है--सन्तोष नहीं होता--कुछ तो वताओ। वाह्याकार ही सही। तब फिर हम जिन्हें प्रेमी समझते हैं, उन्हीं के चरित्र और वाणी में ढूँढने की चेष्टा करें यह स्वाभाविक है। प्रेम अनिर्वचनीय ही सही, पर प्रेमी की मनोभावना ही जान लें। उसकी चेष्टा देखी तो कभी रुदन, कभी हास्य, कभी व्याकुलता, कभी शान्ति। तो क्या यही प्रेम है? पर यह तो कामियों में भी पाई जाती है। संसारी जीव भी कभी सुख मग्न और कभी दुःखी। अन्तर क्या रहा काम और प्रेम में? यह जो वाणी निकल पड़ी हृदय से उससे ही अन्तर का पता चला--महदन्तर। कामी प्रसन्न हुआ तो लगा कि मिल गई होगी उसकी अभीप्सित वस्तु। रुदन देखा तो समझने में देर न लगी कि वासन-पूर्ति में, 'स्वसुख' में वाधा पड़ी होगी, क्योंकि उसका वस्तु में राग है। स्वसुख के लिए वह हँसता है--अपने लिए रोता है। सीमित अहं ही उसका आराध्य है। विषय पूजा उसकी सामग्री है। अपनी अर्चना में लगा हुआ वह शोक का आशीर्वाद प्राप्त करता है।

पर प्रेमी? वह तो मार्ग ही कठिन है। प्रेम देवता की अर्चना, उसका संभार जुटाना बिरले ही कर सकते हैं। 'प्रेम देव' पधारें तो हृदयासन पूर्ण रीति से रिक्त रहे। वे कोने में बैठनेवाले नहीं--लौट जाएँगे यदि हृदयासन उनको न मिला। उन अश्रुओं से ही, जो स्वच्छ हृदय की भावनास्रोत से प्रवाहित हो रहे हैं, उनके चरण कमल वोए जा सकते हैं। हृदय की शीतलता उनके माथे

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का तिलक बने। मन ही सुमनों का हार बनकर कण्ठाभरण का रूप धारण कर ले। वैराग्य की अग्नि में वासना की धूप डालकर उनके लिए सौरभ अर्पित करे। सज्जनाचरण रूप रूई की बत्ती का निर्माण कर ज्ञान घृत से पूरित दीपक से उनकी आरती उतारे। पुन्य-कर्म-नैवेद्य और अनुराग का तम्बूल ही उन्हें रुचिकर है और अन्त में दक्षिणा के रूप में 'अहं' का दान।

प्रेम तो सिर का सौदा है।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, शीश देई लैजाय।

"मेरे निकट न रहने में ही उनका सुख है"—तो सहर्ष वह एक जीवन नहीं, अनन्त जन्मों तक उनसे पृथक् रहने को प्रस्तुत हो जायगा।

संयोग और वियोग दोनों ही परिस्थितियों में "तत्सुख-सुखित्व" की भावना ही प्रेमी का ध्येय है। फिर भी प्रेमियों ने तो संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक महत्व दिया है।

संगम बिरह बिकल्पे वरमपि विरहोन संगमस्तस्य।

वियोग को प्राधान्य देना भी सकारण ही है। संयोग में स्व-सुख की आकांक्षा न होते हुए भी हठात् सुख का उपभोग तो होता ही है। पर वियोग में तिल-तिल कर जलना, और प्रतिक्षण उनकी स्मृति स्व-सुख का लेश भी प्रविष्ट नहीं होने देती। वियोग के मनोभावों से ही प्रेम की यथार्थता की परीक्षा होती है। संयोग में यह पता लगाना कठिन है कि वह प्रियतम का प्रेमी है किंवा आनन्द का। दोनों इतने घुल-मिल जाते हैं कि बहुधा भ्रम वश मनुष्य (यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य श्रेष्ठ स्थिति का ही आरोप स्व में करता है) स्वयं को प्रेमी मानता हुआ भी केवल इच्छा और वासना का दास होता है। वियोग में वह प्रकट हुए विना रह नहीं सकता। यदि वियोग में उनके साथ उठाए गए सुखों की ही स्मृति आती है, तो स्पष्ट है कि वह सुख का उपासक है। और यदि वहाँ "प्रियतम कैसे होंगे" इसकी स्मृति है, तो वह है 'प्रेम'।

यशोदा मैया के दुःख का स्वरूप केवल यह नहीं कि उनका कन्हैया बिछुड़ गया। वे तो बार-बार व्यथित होकर कहती हैं—

को उठि प्रात कलेऊ दैहे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

क्योंकि उनका कन्हैया संकोची है। दूसरे से तो कलेऊ माँगेगा नहीं। अपनी अभिरुचि भी दूसरों को बताने से रहा। तब जो कुछ मिलेगा, उसे ही खा लेगा। 'हाय! वह भूखा रहेगा', इस कल्पना से वे अधीर हो जाती हैं।

मेरो अलक लैंडतो मोहन ह्वैहै करत संकोच।

यह है सच्चे स्नेही की भावना।

श्री भरत जीवन भर कानन में रहने को प्रस्तुत हैं—प्रभु से बहुत दूर। नरक से भी उन्हें हिचकिचाहट नहीं। बस केवल एक आकांक्षा है—

मिटहिं कुयोग राम फिरि आए।

"वे लौटकर श्री अवध में सुखपूर्वक निवास करें।" उनकी सारी साधना बस केवल इतने के लिए है। न तो उन्हें माता के कर्त्तव्यों का प्रायश्चित करना है, और न वियोग-व्यथा को दूर करने की इच्छा, बस केवल "तत्सुख-सुखित्व" ही उनके जीवन का आदर्श है।

"तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेश" कहकर भरद्वाज जी उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर चुके हैं। उन भरत की परीक्षा? कदापि नहीं। परीक्षा लेने की भावना का भ्रम इसीलिये उत्पन्न होता है कि महर्षि ने सिद्धियों के द्वारा सत्कार करने की चेष्टा की है। पर मैं इसके लिए उस प्रसंग को ध्यान से पढ़ने की प्रार्थना करूँगा। बात बहुत स्पष्ट और सरल है। आमन्त्रण मुनिराज ने दिया—और केवल कन्द, मूल, फल ही लाने की आज्ञा भी दी गई, पर इतने बड़े समाज के सत्कार योग्य फल आदि इतनी शीघ्रता से कैसे प्राप्त हों? और फिर अतिथि भी राज पुरुष, अतः उनके हृदय में चिंता होना स्वाभाविक है। उनकी इस चिंता को गोस्वामीजी ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है—

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता, तस पूजा चाहिए जस देवता।

शब्द अपनी कहानी स्वयं कह रहे हैं। श्री भरत जैसे अतिथि की पूजा की ही चिन्ता है—परीक्षा की नहीं। सिद्धियाँ तो उनको चिन्तित देख स्वयं उपस्थित हो गईं।

सुनि ऋधि सिधि अनिमादिक आई, आयसु होइ सो करिय गोसाईं।

इसके प्रत्युत्तर में महर्षि ने जो आज्ञा दी, उससे परीक्षा की धारणा का खण्डन होता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राम बिरह ब्याकुल भरत, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहा मुदित मुनिराज ।।

सिद्धियाँ भी वास्तव में अपने को धन्य करने के लिए आई थीं। ऐसी हास्यास्पद कल्पना उनके मन में न थी कि आज वे हममें रम जाएँगे। वे तो सोचती हैं, "अहा ! आज हमारा जीवन सफल हो जाएगा। आज विषयापभोग में नहीं, और न ही दूसरे का मार्ग च्युत करने में हमारा उपयोग होगा। आज राम लघु भाई का आतिथ्य कर हम भी सन्त समाज में छाई अपनी अपकीर्ति का प्रक्षालन कर लेंगी।" कविकुल चूड़ामणि उनके इसी भाव का वर्णन भी करते हैं--

रिधि सिधि सब सुनि मुनिवर बानी, बड़ भागिन अपुहि अनुमानी ।
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई, अतुलित अतिथि राम लघु भाई ।
मुनि पद बन्दि करिय सोइ आजू, होई सुखी सब राज समाजू ।

इस प्रकार सिद्धियों का प्रयोग उचित आतिथ्य और सिद्धियों की धन्यता व समय की कमी को दृष्टि में रखकर ही किया गया है। यह स्पष्ट है।

आतिथ्य सत्कार में एक चन्दन बनितादिक भोग की संगति से लोगों को कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। परीक्षा मान लेने पर इससे सहज ही छुटकारा मिल जाता है। पर यहाँ यह समझ लेने पर कि सत्कार लौकिक वस्तुओं के प्रयोग द्वारा नहीं, सिद्धियों द्वारा किया गया है, परिस्थिति बदल जाती है। सत्कार स्वर्गीय पद्धति से है। सुर, सुरभी, सुर, तरु से भी इसी की पुष्टि होती है। स्वर्गीय मर्यादाएँ दूसरी ही हैं। अप्सराओं द्वारा सत्कार पुराणों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। महाभारत के अर्जुन उर्वशी संवाद में पृथ्वी और स्वर्ग की मर्यादाओं में भिन्नता प्रकट होती है। अतः सिद्धियों ने अपनी स्वर्गीय पद्धति से वस्तुएँ भेंट की हैं। पृथ्वी की मर्यादा के अनुसार पुरवासियों ने उसे स्वीकार नहीं किया, यह भी समझ लेना चाहिए।

श्री भरत ने समस्त वस्तुओं को 'मुनि-प्रभाऊ' के रूप में देखा। वैराग्य-निधि के चित्त में न उन वस्तुओं के प्रति राग हुआ और न द्वेष। राग-द्वेष-हीन होकर भी उन्होंने उनका उपभोग नहीं किया। हाँ ! इन वस्तुओं को देखकर उनकी दृष्टि मुनिराज की तपस्या पर ही गई। सच्चे सन्त की दृष्टि बुरी वस्तुओं में भी अच्छाई ढूंढ़ लेती है। व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार ही शिक्षा ग्रहण करता है। इन वस्तुओं के द्वारा भोग और तप दोनों में श्रद्धा सम्भव है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्पष्ट है विषयी इसको दूसरे रूप में लेगा---वह सोचेगा "अहो इतनी सुन्दर वस्तुएँ? यह तो उपभोग करने योग्य हैं।" पर वैराग्यवान सोचता है "अहो तपस्या का ही तो यह प्रभाव है, तब तो तप द्वारा ही श्रेयश की ही प्राप्ति करनी चाहिए।" श्री भरत तो इन दोनों ही से निराले हैं। उनकी दृष्टि न तो भोग पर है, और न तप न यश पर। वे तो अपने प्रियतम में ही रमे रहते हैं। उनका मन प्रभु के पाद पद्मों में निरन्तर मधुकर बनकर गुंजन किया करता है। रात्रि व्यतीत हुई और मुनि की आज्ञा का पालन भी हो गया। श्री भरत कैसे रहे, इसे कवि अपने रूपक में व्यक्त करने की चेष्टा करता है।

संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि आश्रम निशि पींजरा, राखे भाभिनुसार ।।

कहा जाता है कि चकवा-चकई रात्रि को एक साथ नहीं रहते। रात्रि होते ही वे दोनों नदी के दो किनारों पर जा बैठते हैं। किन्तु किसी बालक को खेल सूझा और उसने दोनों को एक पिंजड़े में बन्द कर दिया, पर शरीर से निकट रहते हुए भी मानस रूप में दोनों का अलग रहना स्वभाविक ही था। इसी प्रकार यहाँ श्री भरद्वाज की आज्ञानुसार उस दिव्य वैभव में भरत रात्रि भर अवश्य रहे, किन्तु मन से उन सब से दूर थे। चेष्टा शब्द का प्रयोग भी मैंने जानबूझ कर किया है।

सच तो यह है कि श्री भरत के भाव और वैराग्य का व्यक्तीकरण करने के लिए कोई भी रूपक या उपमा सम्भव नहीं है। वे निरुपम पुरुष जो ठहरे। इस रूपक और श्री भरत की भावना में अन्तर है। चकवा-चकई से पृथक् रहता है, किन्तु विवश होकर और उसमें वियोग की व्याकुलता बनी रहती है। अलग रहकर भी मिलने की प्रबल उत्कण्ठा उनके हृदय में होती है। किन्तु यहाँ न तो श्री भरत सम्पत्ति के प्रेमी हैं और न ही उनका बिलगाव बाध्यता से है, और न मिलने की उत्कण्ठा। फिर भी कवि उपमा द्वारा कुछ समझाने का प्रयास करता है।

उनके भावों को सफलतापूर्वक व्यक्त न करके भी उसे प्रयास से किंचित सन्तोष मिलता है। यहाँ असफलता ही सफलता है। सफलता स्वीकार करना श्री भरत-चरित्र की अनभिज्ञता सूचित करता है। इसलिये कवि कुल चूड़ामणि ने अपनी असफलता द्वारा ही भरत भाव समझाने का प्रयास किया है।

× × × ×

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रेम-पथ का वह अविचल पथिक चला जा रहा है अपने प्रियतम की निवास भूमि की ओर। क्षीणकाय पर मुख पर अद्‌भुत कान्ति जिसका वर्ण श्याम सरोज-सा है, जिसके रतनारे नयन प्रेम-जल से भरे हुए हैं, वह प्रेम-मूर्ति चला जा रहा है 'राम-सखा' के कर में कर दिये।

किसी मार्ग-दर्शक ने कहा, यही वह बट-वृक्ष है जहाँ ग्रामवासी स्त्री-पुरुषों ने प्रभु से एक क्षण के लिए विश्राम की प्रार्थना की थी। धन्य था उनका प्रेम। कुस-पत्र और पुष्पों से उन लोगों ने आसन बनाया था। और घट में शीतल जल लिए जब वे प्रभु के समक्ष खड़े हो गए, तो भक्तवत्सल भला उनकी बात कैसे टालते। फिर प्रिया जी श्रमित भी हो गई थीं। बैठ गए इस वृक्ष की सुरम्य छाया में तीनों। और तब उन नागर ग्रामीणों ने बड़े ही नम्र और प्रेम भरे शब्दों में कहा, "प्रभु ! क्या आप अभी चले जायेंगे ? ना ना अब रात्रि यहीं व्यतीत करिये।"

एक देखि बट छाँह भल, डासि मृदुल कुस पात।
कहहिं गवाइंय छिनक श्रम, गबनब अबहिं कि प्रात।।

सुना इस मधुर कहानी को और बरस पड़ी आँखें, लिपट गए जाकर उस बट-वृक्ष से। "सखे ! तुम धन्य हो। प्रभु तुम्हारे निकट आए। तुम्हारी सुरम्य छाया में विराजे। तुमने पत्तों का आसन दिया और पत्तों से विजन कर उनके श्रम का हरण किया। प्रभु तुम्हारे तन से टिक गए। उनके सुकोमल श्री अंग का सान्निध्य तुम्हें मिला, मुझ अभागे के स्पर्श से तुम रूठ तो नहीं गए। हाँ ! सचमुच में कितना अभागा हूँ। हमारे ही कारण तो उन्हें वन आना पड़ा। कौन कहता है कि तुम जड़ हो ? नहीं, नहीं तुम्हीं चेतन हो, प्रभु के सच्चे अनुरागी हो—मुझे भी अनुराग का दान दे दो न !" इस प्रकार अनुराग भरे शब्दों में उनसे बात करने लगते हैं। गोस्वामीजी ने उसे थोड़े से शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा की है—

लषन राम सिय पन्थ कहानी, पूँछत सबहिं कहत मृदु बानी।
राम बास थल विटप विलोके, उर अनुराग रहत नहि रोके।।

× × × ×

दुखी व्यक्ति विचारहीन हो जाता है। रावण के अत्याचार से आकुल देवतागण स्वार्थान्ध हो रहे थे। सभी चाहते थे "रामहिं भरतहिं भेंट न होई" इसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी किए। पृथ्वी कठोर बनकर उनके पथ को कठिन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

बना देना चाहती थी। सूर्य किरणों से सन्तप्त कर उन्हें यात्रा से बिरत करना चाहता था। पर सच्चे प्रेमी इन कठिनाइयों से कहाँ घबराते हैं। पैरों में फफोले पड़ गए पर उस प्रेमव्रती के मुख से आह तक नहीं निकली। लज्जा से पृथ्वी पानी-पानी हो गई। सूर्य ने बादलों की ओट में अपने को छिपा लिया। वे सोचने लगे—"हाय! हम लोगों ने यह क्या किया? प्रेम-मूर्ति के प्रति हमारा यह व्यवहार जानकर प्रभु को कितना क्षोभ होगा?" और तब वे अतीव कोमल बनकर अपनी भूलों का प्रायश्चित करने लगे। श्री भरत का सत्कार करने के लिए जड़-चेतन में होड़-सी लग गई। स्वार्थी देवता भी श्री भरत की प्रेममयी दिव्य स्थिति, देख भावविभोर हो उठे। वे कोमल पृथ्वी को पुष्पों द्वारा आच्छादित कर उसे और भी मृदु बना देना चाहते हैं। परिणामस्वरूप राघवेन्द्र के स्वागत से भी बढ़कर स्वागत हुआ 'राम-अनुज' का—

देखि दसा सुर बरसहिं फूला, भई मृदु महि मगु मंगल मूला।

दो० किए जाहिं छाया जलद, सुखद बहई बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात॥

मुक्ति तो श्री भरतागमन से सभी के लिए सुलभ हो गई। न उसके लिए श्रवण, मनन और चिन्तन की अपेक्षा थी और न ध्यान, धारण, प्रत्याहार समाधि की। अधिकारी अनाधिकारी का तो प्रश्न ही शेष न रहा।

जड़ चेतन जग जीव घनेरे, जिन चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।
ते सब भए परम पद जोगू, भरत दरस मेटा भव रोगू॥

"भरत दरस मेटा भवरोगू" द्वारा एक बड़ी ही सैद्धान्तिक वस्तु की ओर संकेत किया गया है। वास्तव में तो जीव मुक्त ही है, किन्तु अविद्या माया के द्वारा वह अपने आप को बद्ध मान लेता है कि उसे 'स्व-स्वरूप' की विस्मृति हो जाती है।

माया बस स्वरूप बिसरायो, तेहि कारण नाना दुख पायो।
तैं निज करम डोरि दृढ़ कीन्ही, अपने करहिं गाँठ दइ लीन्हो॥

समाधि द्वारा इसी भ्रम-निवारण का प्रयत्न किया जाता है। स्थिर जल में ही जैसे अपना प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, चंचल जल में नहीं। उसी प्रकार समाहित मन में ही 'स्व-स्वरूप' के साक्षात्कार (साक्षात्कार का अभिप्राय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यहाँ अन्य के निषेध रूप से ही है) की क्षमता आती है। पर वह समाधि हो कैसे ? जीव अनेक रोगों से ग्रस्त हो रहा है। वे रोग हैं 'मानस' और मन ही समाहित करना है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, कुटिलता आदि रोगों ने उसे चंचल बना दिया है।

एक ब्याधि बस नर मरई, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं सन्तत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि ।।

रोग नष्ट करने के शास्त्रों में अनेक उपाय बताए गए हैं, किन्तु अधिकांश कठिन प्रयत्न साध्य है। अतः श्री काग भुसुण्डि जी एक सुगम उपाय बताते हैं——

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मतिपूरी ।।

से इन मानस रोगों का ध्वंस हो सकता है। श्री भरत-दर्शन से सारी औषधि योजना सुगम हो गई। उनके प्रेमोन्माद ने लोगों को समाधिस्थ कर दिया। श्री भरत का दर्शन होते ही वे उनमें तन्मय हो गए। श्री भरत में मन की क्षणिक तन्मयता का अभिप्राय ही है समस्त वासना और रोगों का नाश। इस प्रकार निष्प्रयत्न 'मानस रोगों' का समूलोच्छेद कर श्री भरत ने जड़-चेतन सभी को मुक्ति का अधिकारी बना दिया।

पर इधर बेचारा स्वार्थान्ध इन्द्र तो व्यग्र हो उठा श्री भरत की प्रेममयी स्थिति को देखकर। उससे न रहा गया, तो गुरु वृहस्पति से कह ही बैठा——

बनी बात बेगरन चहति, करिये जतन छल सोधि ।।

"रहत न आरत के चित चेतू" का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है ? एक ओर तो वह उन्हें "सुप्रेम पयोधि" कहता है और दूसरी ओर समुद्र के प्रवाह को देव माया रूप मिट्टी के घरौंदों से रोकना चाहता है। पर इसी विचारहीनता में उसका कल्याण भी तो निहित है। यदि वृहस्पति से वह अपनी भावनाओं को व्यक्त न कर देता, तो "श्री भरत-महिमा" का ज्ञान भी उसे कैसे होता ? देवगुरु को हँसी आ गई देवराज की इस मूर्खता पर। सहस्र नेत्रवाला इन्द्र सत्य को नहीं देख पाता। उन्हें तो इसी पर आश्चर्य हो रहा है। बड़े ही गम्भीर शब्दों में उन्होंने शिष्य को उपदेश देना प्रारम्भ किया।

"वत्स ! प्रभु बड़े ही क्षमाशील हैं पर भक्तापराध वे भी नहीं सह सकते। अम्बरीष और दुर्बसा का इतिहास तुमसे छिपा नहीं। फिर संभवतः तुम्हें

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह ज्ञात नहीं कि श्री भरत और प्रभु कौशलेन्द्र का क्या सम्बन्ध है ? लोकदृष्टि से तो श्री भरत उनके भक्त हैं, पर उन्हें प्रभु अपना भक्त ही नहीं, आराध्य भी मानते हैं। जानते हो प्रभु जिस नाम का जप करते हैं, वह है भरत।

भरत सरिस को राम सनेही, जगु जप राम राम जप जेही ।

अपने इष्ट का अपमान तो साधारण व्यक्ति भी नहीं सह पाता। तब फिर भला अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक कैसे क्षमा करेंगे। अच्छा जाने दो आराध्य न सही भक्त ही मानो। पर यह भी तुम्हें ज्ञात है कि उन्हें सेवक कितना प्रिय है ? विश्व के लिए सम होते हुए भी वे सेवक के लिए विषम बन जाते हैं। इस भ्रम में न पड़ना कि देवताओं के लिए प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं। वास्तव में तो भक्तों का प्रेम ही उन्हें अवतार ग्रहण करने के लिए वाध्य करता है। जिनके लिए वे अपना स्वरूप भी परिवर्तित कर देते हैं, उन भक्तों से विरोध करनेवाले की क्या स्थिति होगी ? कल्पना तो करो। मैं जानता हूँ तुम्हें यह भय क्यों हो रहा है ? तुम सोचते हो श्री भरत प्रभु को वन से लौटा ले आवेंगे। रावण वध न होगा। और देवता बन्दी बने रहेंगे। पर यह भ्रम श्री भरत का स्वभाव न जानने के कारण ही है। वे तो--

राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरयहु सुरपाल ।

तुम क्या सोचते हो कि भक्त स्वार्थी होता है ? श्री भरत अपनी वियोग-व्यथा को दूर करने के लिए राम को लौटाना चाहते हैं ? यह सर्वथा भ्रामक धारणा है। भक्त अपने लिए कुछ नहीं सोचता, वह तो सदा 'परहित निरत' रहता है। श्री भरत ने समस्त पुरवासियों को शोक-सागर में निमग्न देखा—सभी विषम वियोग व्यथा से संत्रस्त थे। उनकी रक्षा करना उनका कर्तव्य था, क्योंकि वे सन्त हैं। उन्होंने राम के पास जाने का निर्णय कर लोगों की मानस-पीड़ा का नाश कर दिया। प्रभु को वे लौटाना चाहते हैं केवल इसलिए कि "मिटइ कुयोग राम फिरि आए"--पर वे दुराग्रही नहीं हैं। राघवेन्द्र रामभद्र के निकट पहुँच कर उन्हें यदि यह ज्ञात हो गया कि विश्वहित प्रभु के वन-निवास में ही है, तो सच्चे सन्त की भाँति वे लौट जायेंगे। अपनी बात पर अड़े रहना उनका स्वभाव नहीं। वे सच्चे आज्ञाकारी हैं। प्रभु ने भू-भार-हरण की प्रतिज्ञा की है और वे सत्य-सन्ध हैं। राघवेन्द्र की सत्य-संधता की रक्षा के लिए वे अपनी इच्छा का सहर्ष बलिदान कर देंगे। क्या सच्चा स्नेही अपनी बात

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रखने के लिए प्रभु को झूठा सिद्ध करेगा ? कदापि नहीं। स्वार्थ के कारण ही तुम भरत के वास्तविक स्वरूप का दर्शन नहीं कर पा रहे हो। तुम्हें तो स्वार्थ-परमार्थ दोनों ही दृष्टियों से श्री भरत के चरणों में ही प्रेम करना चाहिए।"

गुरुदेव की मंगलमयी वाणी सुनकर इन्द्र का मोह जाता रहा। आनन्दित होकर उसने सुरतरु के पुष्प श्रद्धांजलि के रूप में भागवत-रत्न के चरणों में अर्पित किए।

उपरोक्त विवेचन में श्री भरत के हृद्गत भावों का वास्तविक चित्र अंकित करने का प्रयास देवगुरु वृहस्पति ने किया है। बहुधा हम अधिकांश व्यक्ति इन्द्र की ही भाँति इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि भरत राम को लौटाने जा रहे हैं। पर उस लौटाने में उनकी कितनी उच्च भावना है, उससे दृष्टि फेर लेते हैं। वहाँ तो स्वार्थ का लेश भी नहीं है। सच्चे प्रेमी और महान सन्त की भाँति उसमें दो भावनाएँ कार्य कर रही है :

(१) "प्रभु को वन-वन भटकना पड़ रहा है। हाय ! उन्हें यह कष्ट मेरे लिए ! उन्हें लौटाऊँगा।" यह प्रेममय दृष्टिकोण है।

(२) "समग्र विश्व उनके राज्यासनासीन होने से सन्तुष्ट और सुखी होगा।" यह दूसरी भावना है, जो सन्तत्व का प्रतीक है।

इन भावनाओं में 'स्व-सुख' का कोई स्थान नहीं।

उपरोक्त दोनों भावनाएँ भी एक दूसरे की पूरक ही हैं। समग्र विश्व में अपने प्रभु को देखनेवाला प्रेमी 'परहित-निरत' ही होगा। इसी तरह समग्र विश्व का हित चाहनेवाला प्रभु को ही समस्त विश्व का विश्राम-दाता मानकर उनसे प्रेम करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री भरत प्रेमी हैं। सन्तत्व सहज ही उनका अनुगमन करता है। उनकी दृष्टि में प्रभु सुख और विश्व सुख अन्योन्याश्रित हैं। अपने बालकों को पीड़ित देख कौन पिता प्रसन्न रह सकता हैं ! इसी प्रकार भक्त पुत्र भी पिता को कष्ट उठाते देख कैसे सुखी हो सकता है। प्रभु और विश्व का सम्बन्ध पिता और पुत्र की ही भाँति है। प्रभु स्वयं कष्ट उठाकर विश्व को सुखी देखना चाहते हैं। भक्त कष्ट में रहकर भी राघव को विहार करते देखने का इच्छुक है। श्री भरत जैसा महान प्रेमी दोनों को ही प्रसन्न देखना चाहता है। भला ऐसे कोमल कारुणिक प्रेममय सन्त की तुलना किससे की जा सकती है ?

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

× × × ×

श्री भरत जी की स्नेह-रस-सिक्त-वाणी का श्रवण कर पाषाण भी पिघल गए। उनके मुख से निकले हुए 'राम नाम' ने सारे वातावरण को ही प्रेम से भरपूर बना दिया। हृदय से किया हुआ नामोच्चारण ऐसा ही होता है। वह स्वयं को पावन करने के साथ सुननेवालों को भी कृतकृत्य कर देता है। इस विषय में एक छोटी-सी कथा सन्त मुख से सुनने को मिली। श्री गोस्वामीजी वृन्दावनधाम में पधारे। वहाँ एक दिन वे कृष्ण रस रसिकवर सूरदास से मिलने के लिए गए। वहाँ पहुँच कर उन्होंने कहा—"जय जय सीताराम, सूरदास जी!" उत्तर मिला—"आइये गोस्वामीजी" लोगों ने आश्चर्य चकित हो सूरदास जी से प्रश्न किया कि "आपने नेत्रहीन होकर भी कैसे जान लिया कि ये गोस्वामीजी हैं।" सूरदासजी ने उत्तर दिया कि "इनके प्रेममय नामोच्चारण से। इतने रस से 'सीताराम' नाम इन्हें छोड़ कौन ले सकता है?"

श्री भरत तो प्रेमियों के आचार्य हैं। उनके मुख से हा राम! के साथ निकला हुआ दीर्घ निःश्वास वायुमंडल में एक ऐसा भाव विद्युत भर देता है, जिससे पाषाण भी द्रवीभूत होकर रसमय हो जाते हैं।

जबहिं राम कहि लेहिं उसाँसा, उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा।
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना, पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥

मार्ग में पुनः कालिन्दनी के दर्शन हुए और नेत्रों में प्रेम के आँसू झलकने लगें। क्यों? प्रीतम राम का-सा ही तो वर्णन है इस यमुना का!

बीच बास करि जमुनहिं आए, निरखि नीर लोचन जल छाए।

हम नित्य ही देखते हैं—कभी मेघ को, कभी मयूर को, और कभी यमुना को, पर अपने श्याम की स्मृति हृदय में नहीं आती। क्योंकि वह हमारे नयनों में नहीं समाया है या यों कहना चाहिए कि उनके लिए इन वासना मलिन नेत्रों में स्थान ही नहीं है। पर श्री भरत जैसे प्रेमी के लिये तो विश्व की प्रत्येक वस्तु प्रियतम की स्मृति का कारण बन जाती है। उनके मन-तन-नयन में वही तो समाया है। पीत रंग की कोई वस्तु दीख गई तो पीताम्बर का ध्यान हो आया। और अरुणता में उनके अरुण-पद तल का। कुन्द का श्वेत रंग उसके हृदय में कुन्द-कली जैसी प्रभु की स्वच्छ-दन्त-पंक्तियों का स्मरण करा देती है। कृष्ण रंग उसके मन को कमनीय-केश-कलिका में उलझा देता है। एक क्षण

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के लिए भी उसकी स्मृति ओझल नहीं हो पाती उनके हृदय से। भगवान शंकर को राम नाम इतना प्रिय है कि 'र' से प्रारम्भ होने वाला कोई भी शब्द उन्हें हर्षमग्न कर देने के लिए यथेष्ठ है।

रकारा दीनी नामानि शृण्वतां मम पार्वती,
मनः प्रसन्नतां याति राम नामाभिशंकया।

श्री भरत ने रविनन्दनी का दर्शन किया और विरह-व्यथा उमड़ पड़ी। विरह-वारिधि में यमुना ने मिलकर मानो उसे और भी अथाह बना दिया। पर विरह-समुद्र में डूब जाने का अर्थ है प्रियतम के दर्शन से हाथ धो बैठना। श्री भरत से मिलने के लिए उत्सुक प्रेम-निधि-प्रभु इसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं? उन्होंने 'विवेक' का जहाज़ रक्षा के लिए भेज दिया और श्री भरत को बचा लिया। इसका भावार्थ यह है कि श्याम वर्ण देखकर पहले मिलने की उत्कण्ठा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। दूरी की कल्पना होते ही असह्य दुःख की पीड़ा हुई। ऐसी परिस्थिति मृत्यु का कारण भी बन सकती है। प्रभु ने एक नवीन बौद्धिक भाव हृदय में प्रकट कर दिया—"अहो! इस मंगलमयी यमुना के रूप में हमारे प्रभु ही तो हैं।" इतना विचार आते ही हृदय की पीड़ा शान्त हो गई।

रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज,
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज।

उपरोक्त अर्थ में ही 'विबेक-जहाज' का प्रयोग यहाँ जान पड़ता है। अधिकांश रूप में 'प्रेम' और 'बिबेक' को एक दूसरे का विरोधी माना जाता है। किन्तु श्री भरत जी के जीवन को एक विराट समन्वय कहें, तो इसमें कोई आश्चर्य न होगा। वे एक महान कर्मयोगी, धार्मिक, विवेकी और प्रेममूर्ति हैं। इसीलिए उन्हें गोस्वामीजी ने विभिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूपों में स्मरण किया है।

(१) जो न होत जग जनम भरत को, सकल धरम धुरि धरणि धरत को।
(२) भरत सरिस को राम सनेही, जगु जपु राम राम जपु जेही।
(३) भरत बिबेक बराह बिसाला, अनायास उघरी तेहि काला।

उपरोक्त तीनों चौपाइयाँ उन्हें तीन रूप में चित्रित करती हैं। तब स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि हम उन्हें क्या माने? ज्ञानी, भक्त, किंवा धार्मिक। इसका उत्तर उनके चरित्र का सावधानी से मनन करने पर अपने आप मिल जाता है। धर्म, प्रेम, ज्ञान में कोई विरोध नहीं। तीनों का अन्तिम

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्वरूप वास्तव में एक ही है। धर्म और विवेक, पक्षी के दो पंख की भाँति प्रेमी को प्रियतम के निकट पहुँचाने में सहायक होते हैं, बाधक नहीं। विवेक और धर्म का उपयोग करने में मनुष्य स्वतंत्र है। यह तो सत्य है कि यदि धर्म को स्वतंत्र छोड़ दिया जाए, तो वह स्वर्ग की ओर ले जाएगा और विवेक मुक्ति की ओर। पर चतुर प्रेमी तो विवेक और धर्म को भी अपनी उन्नति का साधन वना लेता है।

यहाँ श्री भरत का विवेक प्रयोग देख उन्हें धन्य कहना ही पड़ता है। वे जा रहे हैं——प्रभु को लौटाने के लक्ष्य से। विरह प्रेम का अंग होते हुए भी व्याकुलता के आधिक्य के कारण स्वयं अंगी बनकर प्रेमी को "तत्सुख-सुखित्त्व" से दूर कर देगा। यहाँ प्राण का बलिदान तो हो जाएगा, पर किसके लिए ? अपने दुःखों से छुटकारा पाने के लिए ही तो। अतः चुतर प्रेमी विवेक का आश्रय ग्रहण कर अपन लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ जाता है। उसका विवेक-जहाज 'मुक्ति-पुर' न जाकर 'प्रेमपुर' जा रहा है। इस अनोखे प्रेम के कारण ही उन्हें श्री गोस्वामीजी ने चातक और हंस के समन्वित रूप में स्वीकार किया है।

राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न यहि करतूत।
चातक हंस सराहियत, टेंक बिबेक बिभूति ।।

चातक 'प्रेम' प्रधान और हंस 'विवेक' प्रधान माना जाता है।

महापुरुषाग्र-गण्य श्री भरत का दर्शन प्राप्त कर ग्राम निवासी स्त्री-पुरुष अपने को धन्य मानने लगे। साक्षात् मन्मथ श्री कौशल किशोर ने अपनी रूप माधुरी के द्वारा कुछ दिन पूर्व लोगों का चित्त-वित्त चुरा लिया था। आज उनके ही "वय वपु वरण रूप सोइआली" वाला नव किशोर प्रेम सुधा का वितरण करता हुआ प्रभु से भी अधिक श्रद्धा का पात्र वन गया।

भरत दरस देखत खुलेउ, मग लोगन कर भाग ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयाग ।।

श्री भरत के लिए प्रयाग की उपमा देना स्तुति नहीं वास्तविक सत्य है– अपितु सत्य से भी अधिक। तीर्थराज प्रयाग के कोषागार में चारो फल, 'अर्थ धर्म, काम, मोक्ष' हैं, पर उन्हें प्राप्त करने वाला अधिकारी चाहिए। अधिकार का स्वरूप है श्रद्धा और विश्वास। विश्वास बिना वहाँ कुछ भी न प्राप्त हो सकेगा। पर श्री भरत-पयोधि में तो अनन्त रत्न भरे हुए हैं। यहाँ अभिनव-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तीर्थराज चतुर्वर्ग की तो कथा क्या, 'प्रेम' रूप परम फल का भी दान करने में समर्थ हैं—समर्थ ही नहीं करते भी हैं। अविकारी अनाधिकारी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि वह स्वयं ही व्यक्ति को अधिकारी भी बना देते हैं। अतः प्रयाग भी इनसे तुलना करने योग्य नहीं। इतना महान व्यक्ति कितना नम्र है। इसकी साक्षी निम्नलिखित चौपाइयाँ दे रही हैं:

तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा, निरखि निमज्जन करहिं प्रनामा।
मनहीं मन मागहि बर येहू, सीय राम पद पदुम सनेहू।।

प्रेम-पयोधि याचना करता है 'प्रेम कण' की। दाता होते हुए भी भिक्षा की झोली सबके सामने पसार देता है। श्री भरत की अनन्यता का स्वरूप यही है। वे प्रभु को छोड़ अन्यों से न माँगने की विचारधारा के अनुयायी नहीं हैं। यदि उनसे कोई इस विषय में प्रश्न करता तो सम्भवतः वे यही उत्तर देते कि "वे लोग धन्य हैं जो अपने प्रियतम को छोड़कर दूसरों के सामने हाथ नहीं फैलाते। पर वे सबल हैं, प्रेमी हैं और प्रभु पर उनका अधिकार है। मुझ जैसे प्रेमहीन को ऐसी प्रतिज्ञा करने का क्या अधिकार? भिखारी को प्रेमियों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।"

विचार करने पर श्री भरत की विचारधारा अधिक कल्याणकारी, अधिक पूर्ण, और अधिक निरापद प्रतीत होती है। इस विचार का सबसे महत्वपूर्ण अंग यह है कि इसमें प्रेमी अपने लक्ष्य से क्षण भर को भी विचलित नहीं होता। क्योंकि वह माँगे चाहे जिससे पर माँगता केवल "राम पद पदुम सनेहू" ही है। साथ ही किसी की अवहेलना या तिरस्कार भी उसके द्वारा नहीं हो पाता। जिससे स्वभावतः प्रत्येक की सहानुभूति उसे प्राप्त रहती है। सहस्त्रों भावनाएं प्रेम-पथ में उसकी सहायक बन जाती हैं। इसके लिए हम एक पति-व्रता स्त्री का दृष्टान्त ले सकते हैं। वह अनन्य भाव से पति-भक्त है। उसका तन-मन सब उसी के लिए है। पर पति के सम्बन्ध के नाते वह सास, ससुर, देवर आदि सभी की सेवा करती है। हाँ उसका लक्ष्य पति प्रेम ही है—और यह निश्चित है कि ऐसा करने से उसके प्राण-वल्लभ को भी प्रसन्नता होगी। दूसरी ओर यदि वह दिन-रात्रि पति चिन्तन में ही निमग्न रहती है। उनकी सेवा छोड़ अन्य सम्बन्धियों से सम्बन्ध ही नहीं रखती, तो उसका परिणाम होगा कि वह पति-प्रिया तो होगी, पर पति के कर्तव्यपालन में सहायक न हो सकेगी। वह तो अपना गुरुजनों की सेवा करेगा यह असंदिग्ध है। पर पत्नी अपने व्रत पर दृढ़ रहते हुए भी पति के कार्यों में सहायक सिद्ध न हो सकेगी। उसका प्रेम

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अपनी निष्ठा को ही सँवारने में अधिक रहा, पति को विश्राम देने में नहीं। साथ ही पति को संकोच भी होगा उसके इस व्यवहार से। दोनों प्रकार की पति-व्रताएँ श्रेष्ठ हैं। पर प्रथम भावना कुछ अधिक कल्याणकारी जान पड़ती है। कहना न होगा कि भरत की विचारसारिणी प्रथम प्रकार की है। वे जप, तप, व्रत, तीर्थ, देवोपासना आदि सभी स्मार्त धर्मों का पालन करते हैं और सबसे केवल 'राम-प्रेम' की याचना करते हैं। यह मार्ग सर्व-साधारण के लिए निरापद भी है, क्योंकि जहाँ प्रेम की उच्चतम अवस्था में स्मार्त धर्मों का त्याग हो जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं, वहीं दूसरी ओर अनुकरण की चेष्टा में उच्छृंखलता के वरण की ही सम्भावना है। जब 'सर्व-धर्मों' के त्याग का उपदेश दिया जाता है, तब वह केवल उसके लिए जो अधर्मों का पूर्ण त्याग पहले ही कर चुका ह। पर अधिकांश रूप में देखा यह जाता है कि अधर्म का त्याग तो होता नहीं—धर्म त्याग भले ही हो जाए। द्वितीय प्रकार की अनन्यता असाधारण अधिकारियों के लिए है, पर यदि उसका प्रयोग सर्व-साधारण करें, तो सर्वनाश निश्चित है। उससे ईर्ष्या-द्वेष दूसरों से भले ही हो जाए पर प्रेम होने से रहा। प्रथम प्रकार में इसकी कोई संभावना नहीं। अहंकार का तो वहाँ प्रवेश भी नहीं है। श्री भरत की विचारधारा निर्दोष गोदुग्ध है। जिसका पान सभी स्वस्थ-अस्वस्थ निस्संकोच रूप से कर सकते हैं। विचार की दृष्टि से तो यह विचारधारा अधिक संगत है ही। जब प्रभु ही सब में रम रहे हैं, जब उनके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, तब पूर्ण अनन्यता भी यही है। स्वयं श्री मुख से अनन्यता की परिभाषा भी प्रभु ने यही की है।

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप राशि भगवन्त ॥

इसीलिए श्री भरत प्रत्येक को प्रणाम करते हैं।

मिलहिं किरात कोल बनवासी, बैखानस बटु जतो उदासी।
करि प्रणाम पूँछहि जेहि तेही, केहि बन राम लषण बैदेही।

श्रुतियों में प्रणाम कर्म के लिए जिस अधिकारी-अनाधिकारी का उल्लेख किया गया है, वह केवल स्थूल दर्शियों के लिए है। यह कोई अनादर की बात नहीं, क्योंकि प्रारम्भ में सभी स्थूलदर्शी होते हैं। अतः उसकी उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं। पर वे जो प्रभु का ही सर्वत्र दर्शन करते हैं, उन अनन्यों के लिए सभी प्रणम्य हैं। भगवान व्यास भी श्रीमद्भागवत् में यही कहते हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

खं वायु मग्निं सलिलं महीं च ज्योतींसि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणभेद नन्यः ।

रामानन्य श्री भरत मार्ग में प्रत्येक पथिक को प्रणाम करके बड़ी ही नम्रता से पूछते हैं, क्या आपने हमारे प्रभु के दर्शन किए हैं ? वे कहाँ हैं ? कुशलपूर्वक तो हैं न ? सभी से उन्हें कोई-न-कोई प्रभु की मनहरिणी लीला श्रवण करने को मिलती है ।

करि प्रणाम पूँछहि जेहि तेही, केहि बन राम लषन बैदेही ।
ते प्रभु समाचार सब कहहीं, भरतहिं देखि जनम फल लहहीं ।।

जे जन कहहिं कुशल हम देखे, ते प्रिय राम लषन सम लेखे ।
एहिं बिधि बूझत सबहिं सुबानी, सुनत राम बनवास कहानी ।।

किसी किरात ने बड़ी मधुर कथा सुनाई । मैं वन में लकड़ी एकत्र कर रहा था तब तक देखता हूँ कि हमारे राघव धनुष-बाण लिए मृगया के लिए चले आ रहे हैं । अहा ! कसी मधुर छवि थी उस साँवरे की । श्याम तमाल का सा रंग, प्रफुल्लित शत दल कमल के समान नेत्र, मस्तक पर जटा मुकुट, विशाल भुजाओं में धनुष-बाण धारण किए वे गज-गति से चले आ रहे थे । उसी समय उधर से निकला मृगों का समूह । प्रभु सावधान हुए, मैंने सोचा अब दौड़ प्रारम्भ होगी---मृगों की और कुमार की । पर यह क्या ? सभी मृग एक टक खड़े होकर निहार रहे थे साँवरे को । बाण चढ़ाते देखकर भी वे विचलित न हुए और वैसे ही एक टक देखते रहे । उनकी आँखों में छाया हुआ था प्रेमोन्माद और उधर भी वात्सल्य भरी दृष्टि से प्रभु मृगों को निहार रहे थे । धनुष की प्रत्यंचा ढीली हो गई थी---बाहु शिथिल ।

तुलसीदास प्रभु बाण न मोचत सहज सुभाय प्रेम वस भोरे ।

अचानक ही पीछे लता जाल को हटाकर प्रिया जी प्रकट हो गईं । मन्द हास उनके मुख पर अठखेलियाँ कर रहा था । बड़े ही विनोदमय शब्दों में उन्होंने कहा, "करुणानिधान आर्यपुत्र ! हो चुकी मृगया !" और प्रभु जी मुस्करा पड़े उनकी ओर तिरछी दृष्टि से देखकर । मृगों ने और भी निकट पहुँच कर प्रिया जी को घेर लिया और वे सुकोमल कर कमलों से उनके शरीर को सहलाने लगीं । अहा ! मेरे भाग्य का क्या कहना ? प्रभु की इस मधुर-मादक-लीला का दर्शन कर के आज मैं निहाल हो गया । इतना कहते-कहते

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वक्ता भावों में मग्न हो गया और श्रोता की आँखें बरस रही थीं इस कहानी को सुनकर।

कथा श्रवण में समय बीतते देर ही न लगी। सूर्यास्त हो गया और वहीं उस दिन सबने रात्रि बिताई। प्रातःकाल होते ही अभूतपूर्व उत्कण्ठा और हर्ष के साथ यात्रा प्रारम्भ हुई। आज तो मंगलसूचक प्रिय शकुन भी हो रहे हैं। शकुन भी अपने को सत्य सिद्ध करने के लिए उत्सुक हैं। वे भरत के दृष्टि-पथ में आकर अपने को धन्य करना चाहते हैं। खंजन-नैन भी फड़क-फड़क कर मानो सबसे पहले उड़कर प्रियतम के निकट पहुँच जाना चाहते हैं। सूरदासजी ने नेत्रों के औत्सुक्य पर बड़ा ही भावमय पद लिखा है—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चपल चारु अनियारे पल पिंजड़ा न समाते॥

चलि चलि जत निकट श्रवणनि कै उलटि पलटि ताटंक फँराते।
सूरदास अंजन गुन अटके न तरु अबहिं उड़ि जाते॥

इस प्रकार सारा समाज प्रेम-सुरा का पान कर उन्मत्त हो रहा है। हृदय में अपनी-अपनी भावना के अनुरूप ही विचार उठ रहे हैं। सभी डगमगाते हुए चल रहे हैं। वार्त्तालाप में शब्दोच्चारण भी ठीक से नहीं हो पाता है। इस तरह श्री भरत के प्रेम ने समग्र पुरवासियों को ही नहीं—जड़-चेतन सभी प्राणियों को प्रेमोन्मत्त कर दिया है। गोस्वामीजी ने उस मादक परिस्थिति का चित्रण बड़े ही भावमय शब्दों में किया है।

करत मनोरथ जस जिय जाके, जाहि सनेह सुरा सब छाँके।
सिथिल अंग पग डगमग डोलहिं, बिह्वल बचन प्रेम बस बोलहिं॥

तभी दीख पड़े शैलराज जिनके निकट ही पयस्विनी तट पर श्री प्रिया प्रियतम का निवास स्थल है। राम-सखा ने उसकी ओर संकेत किया और सभी आह्लाद सागर में डूब गए। "जय जानकी जीवन" के गम्भीर घोष से सारा प्रदेश गूँज उठा। कुछ क्षण के लिए पुरवासी इतने आह्लादित हुए मानो राम ही अयोध्या लौट पड़े हों।

राम सखा तेहि समय दिखावा, सैल सिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित पय नीरा, सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देखि करहिं सब दण्ड प्रनामा, कहि जय जानकी जीवन रामा ।
प्रेम मगन अस राज समाजू, जनु फिरि अवध चले रघुराजू ।।

किन्तु श्री भरत के प्रेमांकन में कवि अपनी असमर्थता का ही वर्णन करता है।

भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहिं सकहिं न शेष ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु ।।

वैसे कवि ने अनेक स्थलों पर उपमाओं द्वारा श्री भरत-भाव को व्यक्त करने की चेष्टा की है—

(१) जे जन कहहिं कुशल हम देखे, ते जनु मनहुँ राम सम लेखे ।
(२) तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम ।
(३) जनु योगी परमारथ पावा ।
(४) मानहुँ पारस पायउ रँका ।

प्रश्न यह है कि फिर कवि यहाँ क्यों मौन हो जाता है ? कवि को वर्णन के लिए कुछ आश्रय अपेक्षित है। हृद्‌गत भावनाओं के द्वारा शरीर में प्रगट होनेवाले रोमांच, अश्रु आदि विभिन्न लक्षणों और क्रिया का सहारा लेकर ही कवि किसी उपमा की सृष्टि करता है। पर अन्य स्थलों से यहाँ वैशिष्ट्य है। प्रभु की स्मृति आने पर या उनसे सम्बन्धित किसी वस्तु का दर्शन होने पर श्री भरत के शरीर में रोमांच होता था। अश्रुपात होने लगता था। वस्तुओं को दण्डवत-प्रणाम करते थे, किन्तु अब तो एक ऐसी तन्मयता हुई कि जिससे शरीर समाधि की तरह निश्चेष्ट हो गया। उसमें न रोमांच हुआ, न अश्रुपात। और यहाँ तक कि दण्डवत-प्रणाम भी करने का उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार निर्विकल्प समाधि की भाँति प्रेम के उच्चतम स्तर में वे ऐसे निमग्न हो गये कि शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—सभी निश्चेष्ट हो गए। प्रेमी और प्रियतम, आराध्य-आराधक, दर्शक और दर्शनीय का भेद मिटकर केवल प्रेम ही प्रेम शेष रह गया। ऐसी परिस्थिति में कवि किस छाया का अनुकरण कर के उपमा दे या व्यक्तीकरण की चेष्टा करे। अतः वह उनके सुख की नहीं, अपनी असमर्थता की उपमा देता है।

श्री भरत की उस समय जो प्रेममयी स्थिति थी, उसका वर्णन तो शेष भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नहीं कर सकते, फिर कवि के लिए तो वह उतनी ही अगम है, जितनी अहंकार और ममत्व से मलिन चित्तवाले व्यक्ति के लिए ब्रह्मसुख की अनुभूति——

भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहिं सकई न शेष ।
कबिहिं अगम जिमि ब्रह्मसुख, अह मम मलिन जनेषु ।।

यहाँ की भावनामयी परिस्थिति का चित्रण करने के पश्चात् गोस्वामी जी प्रभु की स्थिति का चित्रण इन शब्दों में करते हैं—

उहाँ राम रजनी अवशेषा, जागे सीय सपन अस देखा ।

उपरोक्त 'उहाँ' शब्द एक अनूठा भाव रखता है । 'इहाँ' शब्द कहने वाले की उपस्थिति का सूचक है और 'उहाँ' शब्द अनुपस्थिति का । कोई व्यक्ति जब 'इहाँ' शब्द का उच्चारण करता है, तो सिद्ध होता है कि कहनेवाला स्वयं वहाँ है । वर्तमान काल में जो कुछ वक्ता से दूर है, उसे 'उहाँ' शब्द द्वारा संकेत करते हैं । कवि को अनेक स्थलों का वर्णन तो करना ही है । एक ही समय पर दो विभिन्न स्थलों पर भिन्न कार्य हो रहे हैं । कवि का कर्त्तव्य है कि वह दोनों का ही वर्णन करे । पर एक समय म वह एक ही स्थान पर उपस्थित रहकर उसी का वर्णन कर सकता है । और यही हमारे महाकवि ने किया भी है । एक स्थल पर वे स्वयं उपस्थित रहते हैं और दूसरे का वर्णन अपनी दूरदर्शी दृष्टि से करते हैं । यह तो निश्चित है कि जो स्थल उसे अधिक प्रिय होगा वहीं वह स्वयं उपस्थित रहेगा । इसीलिए कविकुल चूड़ामणि भगवान राम और रावण के युद्ध का वर्णन करते समय अपने को राघवेन्द्र के निकट रखते हैं और समकालीन लंका की परिस्थिति का वर्णन वे प्रभु के निकट बैठकर दिव्य दृष्टि द्वारा कर देते हैं । इस अन्तर को समझने के लिए उनके 'इहाँ' और 'उहाँ' शब्द के प्रयोग पर ध्यान देना होगा । प्रभु परिस्थिति का चित्रण 'इहाँ' और रावण की 'उहाँ' । उदाहरण के लिए दो चार चौपाइयां देखें——

उहाँ निशाचर रहहिं सशँका, जबते जारि गयउ कपि लंका ।
उहाँ अर्ध निशि रावण जागा, निज सारथि सन खीझन लागा ।
इहाँ सुवेल शैल रघुबीरा, उतरे सेन सहित अति भीरा ।
इहाँ प्रात जागे रघुराई, पूँछा मत सब सचिव बोलाई ।
इहाँ बिभीषण सब सुधिपाई, सबहिं जाइ रघुपतिहि सुनाई ।
इहाँ राम अंगदहि बोलावा, आइ चरन पँकज शिर नावा ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर जब भक्त और भगवान दो विभिन्न स्थलों पर हों—जैसा कि इस प्रसंग में हुआ, तब हमारे महाकवि प्रभु की अपेक्षा प्रेमी के पास रहना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। इसीलिए भक्ताग्रगण्य श्री भरत और प्रभु के वर्णन का अन्तर स्पष्ट है।

उहाँ राम रजनी अवशेषा........ ।
इहाँ भरत सब सहित सुहाए, मन्दाकिनी पुनीत नहाए ।।

कारण स्पष्ट है। प्रभु की अपेक्षा श्री भरत के यहाँ अधिक रस और आनन्द है। श्री भरत के प्रति रामानन्य गोस्वामीजी का कितना उत्कृष्ट भाव है, यह उनके इस एक शब्द से स्पष्ट हो जाता है। अस्तु !

× × × ×

श्री किशोरीजी के स्वप्न को सुनकर नटनागर सशंक हो ही रहे थे कि तब तक किरातों ने आकर चतुरंगिणी सेना सहित श्री भरत के आगमन का समाचार दिया। अहो ! सुनते ही प्रभु की विलक्षण स्थिति हो गई।

दो० सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर ।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ।।

राघव तो सदा भरत की चिन्ता में ही निमग्न रहते हैं। गोस्वामीजी ने प्रभु की इस चिन्ता को कमठ की उपमा देकर बड़ी ही सुन्दर रीति से समझाया है।

रामहिं बन्धु सोच दिन राती, अड़न्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ।

कछुआ अपने अण्डे से दूर रहता हुआ भी मन से सदा उसके निकट ही रहता है। उसकी भावना ही उसका रक्षण और पोषण करती है। उसी प्रकार राघवेन्द्र को भी भैया भरत का स्मरण सदा बना रहता है। अयोध्या में शकुन हुआ, तो मन में अव्यक्त रहनेवाली बात प्रकट हो गई।

राम सीय तन सगुन जनाए, फरकहिं मँगल अँग सुहाए।
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं, भरत आगमन सूचक अहहीं ।
भए बहुत दिन अति अवसेरी, सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ।
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं, इहइ सगुन फल दूसर नाहीं ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सर्वज्ञ प्रभु रागान्वित होकर कैसी सत्य से परे की कल्पना करते हैं। बलिहारी है इस प्रेम की। जो प्रभु को भी रागी बनाकर ऐसी बात सोचने की प्रेरणा देता है। श्री भरद्वाजजी ने इसीलिए तो भरत के प्रति प्रभु-प्रेम के लिए "जैसे जड़ प्राणी सांसारिक सुखों से प्रेम करता है" की उपमा दी थी।

तुम पर अस सनेह रघुबर के, सुख जीवन जस जड़ जग नर के।

हाँ तो आज प्रभु के हर्ष का क्या पारावार? भरत आगमन का समाचार सुनते ही आनन्दमग्न हो गए। विशाल उत्फुल्ल कमल नेत्र आनन्दाश्रु से भर गए।

पर इस समय क्यों आ रहे हैं? यह चिन्ता मन में हुई और "कहि है सब तेरो हियो मेरे मन की बात" के सिद्धान्तानुसार प्रभु को समझते देर न लगी। हृदय ने सब बता दिया। आँखों के सामने श्याम संकोची भरत की मूर्ति स्पष्ट दीखने लगी। दोनों हाथ जोड़े खड़े हैं। विनम्र भाव से अयोध्या लौटने की प्रार्थना कर रहे हैं और तब प्रभु विचलित हो गए––इस कल्पना मात्र से कि मैं क्या उत्तर दूँगा? क्या भरत से 'नहीं' कह सकूँगा? हृदय ने उत्तर दिया–– कदापि नहीं। बुद्धि ने प्रश्न किया––"फिर मर्यादा, धर्म, देव कार्य, भूभार हरण, इन सब का क्या होगा?" हृदय ने उत्तर दिया––"कुछ भी हो, भरत की बात नहीं टाली जा सकती। मैं मर्यादा पुरुषोत्तम न रहूँ कोई चिन्ता नहीं–– सत्य संधता, पितृ-भक्ति सब झूठी हो जाए, पर भरत भरत ही है। आज तक जिसने कभी कुछ याचना ही न की, जिसने मेरी आज्ञापालन के लिए विरह का कष्ट उठाया––अपने जीवन को मेरे संकेत पर अर्पित कर दिया। क्या यदि आज वह कुछ इच्छा प्रगट करे, तो मैं उसे अस्वीकार कर दूँगा? ना, ना! मुझसे यह न हो सकेगा।

भरत सुभाव समुझि मन माही, प्रभु चित हित थिति पावत नाही।

'दैन्य' ही जिसका बल हो और 'मौन' ही अस्त्र। भला उस विलक्षण सेनानी को हराया भी कैसे जा सकता है? जिसमें प्रेम का अगाध जल और भावना की तरंगें उठती रहती हों, ऐसे भरत महोदधि को किस साधन द्वारा पार किया जा सकता है। भरत के इस स्वभाव का चिन्तन करते-करते प्रभु स्वयं निराश हो गए, जैसे कोई तैराक नदी की वेगवती धारा से थककर बैठ जाए और तब रघुवीर को सहारा भी दिया तो श्री भरत ने ही। भरत की आज्ञाकारिता रूप जहाज ने आकर उबार लिया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

समाधान तब भा यह जाने, भरत कहे महँ साधु समाने ।

सुजान कौशलेन्द्र सोचने लगे, "अहो ! मैं व्यर्थ ही चिन्ता कर रहा था। जिसने अपने जीवन का आदर्श केवल आज्ञाकारिता बनाया है, वह दृढ़ निश्चयी क्या किसी भी परिस्थिति में मुझे आज्ञा देगा ? साधु ही धर्म के रक्षक हैं। सदा दूसरों को सुखी बनाना ही उनका लक्ष्य है। फिर भरत क्या विश्व को सुखी करने के लिए कष्ट नहीं उठावेंगे ? वह तो सन्तों में अग्रगण्य हैं। वह सयाना है। महान है। क्या वह कभी हठी और दुराग्रही हो सकता है ? सयाने जन संकेत से ही सब कुछ समझ लेते हैं। उसे समझाने के लिए क्या प्रयास करना होगा ?" और तब सरकार प्रसन्न और शान्त हो गए। किन्तु परमानुरागी श्री लक्ष्मण ने प्रभु के हृदयस्थ द्वन्द्व को किसी दूसरे ही रूप में लिया। चतुरंगिणी सेना के साथ आगमन से उनकी भावना को पुष्टि मिली। फिर क्या था ? वीर रस जागृत हो गया। गरज उठे महाव्रती और फिर जो कुछ मन में आया कह डाला प्रेममूर्ति भरत के लिए। वध के लिए प्रत्यंचा चढ़ाई गई और प्रतिज्ञा भी।

जिमि करि निकर दलइ मृग राजू, लेइ समेटि लवा जिमि बाजू ।
तैसहिं भरतहिं सेन समेता, सानुज निदरि निपातऊँ खेता ।

लक्ष्मण की इस भीषण प्रतिज्ञा को सुन पृथ्वी काँपने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया। पर प्रश्न उठता है कि प्रभु क्यों मौन हैं ? यह तो स्पष्ट ही है कि उनके हृदय में भरत के प्रति कोई सन्देह नहीं। फिर उन्होंने लक्ष्मण को रोक क्यों न दिया ? राघवेन्द्र लक्ष्मण के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हैं। वे जानते हैं कि आज्ञापालन की अपेक्षा मेरी प्रतिष्ठा का उन्हें अधिक ध्यान रहता है। परशुराम के प्रसंग में बार-बार निषेध करने पर भी वे मौन न रह सके। कटूक्तियों का उत्तर हास्य और व्यंग्य से देते रहे। फिर यहाँ तो वे प्रभु को मौन रखने के लिए एक वाक्य पहले ही कह चुके हैं।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान ।।

यदि प्रभु श्री भरत की प्रशंसा करें या पक्ष लें तो वे उत्तर दे देंगे कि मैंने तो पहले ही कह दिया है कि "आप इतने सीधे हैं कि अपनी ही तरह सब को सरल समझ लेते हैं।" और तब पक्ष लेना व्यर्थ हो जाएगा। सुजान राघवेन्द्र उचित अवसर पर ही कार्य करते हैं। आकाशवाणी द्वारा उनके कार्य के अनौचित्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का निर्णय हो जाने पर उन्होंने (रघुवंश भूषण) भरत के प्रति अपने अगाध विश्वास का न केवल वर्णन किया, अपितु उनका गुणगान करते हुए उनकी वही स्थिति हुई, जो एक भक्त की भगवान के गुणगायन में होती है। रोमांच, प्रेमाश्रु, रुद्ध कण्ठ से उन्होंने जो कुछ कहा, उसे महाकवि के शब्दों में पढ़िए—

सुनि सुर वचन लषण सकुचाने, राम सीय सादर सन माने।

कही तात तुम नीति सुहाई, सबते कठिन राज मद भाई।
जो अँचवत नृप मातहिं तेई, नाहिन साधु सभा जेहि सेई।

इस भाषण का अर्थ समझने के लिए श्री लक्ष्मण जी द्वारा किए गए तर्कों को ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि प्रभु ने उन तर्कों का ही उचित उत्तर दिया है। श्री लक्ष्मण का प्रथम तर्क था कि राज्य-मद अत्यन्त कठिन होता है। प्रभुता रूप-सुरा को पीनेवाला उन्मत्त हुए विना नहीं रह सकता। इसी का उत्तर देते हुए प्रभु कहते हैं—

जो अँचवत नृप मातहिं तेई, नाहिन साधु सभा जेहि सेई।

जिन्होंने साधु-संग नहीं किया है, वे ही इसे पीकर उन्मत्त होते हैं। लक्ष्मण स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि "भरत नीति रत साधु सुजाना" हैं। किसी को एक ओर साधु स्वीकार करें और दूसरी ओर उन्मत्त, यह दोनों सर्वथा असंगत बात है। दूसरा तर्क श्री लक्ष्मण का है कि विषयी ही नहीं सभी लोग राज्य-पद पाकर उन्मत्त हो जाते हैं, इसके प्रमाण स्वरूप वे कुछ लोगों के नाम गिनाते हैं।

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू, केहि न राज मद दीन्ह कलँकू।

दो० ससि गुरु तिय गामी नहुष, चढ़ेउ भूमि सुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा, अधम न बेन समान॥

वास्तव में यह तर्क यथेष्ट बलशाली है। श्री लक्ष्मण जी को अपने प्रथम तर्क की असंगति का ध्यान था। अतः उन्होंने इन उदाहरणों से सप्रमाण यह सिद्ध कर दिया कि सत्पुरुष भी पद प्राप्त कर गिर जाते हैं। अतः भरत के गिरने में भी आश्चर्य की कोई बात नहीं।

रचना नागर ने इसका भी मार्मिक उत्तर दिया—"तुम ठीक कहते हो, दूध जैसी वस्तु भी खटाई से विकृत बन जाती है (यहाँ एक बात ध्यान देने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

योग्य है कि खटाई डालकर जो दूध जमाया जाता है वह दधि बन जाता है, पर शराब डाल देने पर तो वह सर्वथा त्याज्य हो जाएगा।) अतः जिन सत्पुरुषों का नाम तुमने लिया है, वे दूध जैसे होते हुए भी राज्य-मद रूप खटाई से विकृत हो गए। किन्तु यह तो बताओ कि यदि क्षीरसागर में वह खटाई डाल दी जाती, तो क्या वह उसका रूप परिवर्तन करने में समर्थ होती ? सहसबाहु आदि दुग्ध सदृश्य थे, लेकिन भरत तो साक्षात क्षीरसागर हैं। उनके लिए तो त्रिदेव का पद भी काँजी के एक कण के सदृश्य है। क्षीरसागर में जाकर तो सुरा भी दुग्ध ही बन जाएगी। भरत की स्वीकृति से राज्य-पद भी धन्य हो गया होगा।

भरतहिं होइ न राज मद, बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, क्षीर सिन्धु बिनसाइ ।।

श्री भरत की क्षीरसागर से तुलना भी साभिप्राय है। यों तो दुग्ध की नदी में भी कण मात्र खटाई से कुछ न होगा, पर नदी न कहकर समुद्र कहना केवल विशालता की दृष्टि से नहीं। क्षीरसागर की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसमें साक्षात विष्णु भगवान का निवास है। जिसके हृदय में प्रभु का निवास हो—जिसके गुणों के आश्रय भगवान हों, वह कैसे विकृत हो सकता है। यहाँ सुरनाथ त्रिशंकु आदि से एक अन्तर स्पष्ट हो गया। उनमें सज्जनता आदि गुण थे, पर स्व-कर्माश्रित। उन्होंने सत्कर्मों द्वारा अपने बल से गुण एकत्र किए थे। उसमें भगवान का आश्रय न था। इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं कि भगवदाश्रय रहित अपने पुरुषार्थ से एकत्र किए हुए गुण, प्रभुता आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ निष्फल हैं, जैसे मूलाश्रय रहित बरसाती नाला। इसीलिए भक्ताग्रगण्य कवि कुल तिलक ने कवितावली में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है—

काम सो रूप, प्रताप दिनेश सो, सोम सो शील, गनेश ते मानी।
हरीचन्द सों दाता बड़ो बिधि सो, मघवासो महीम, बिषय सुखसाने।
शुक से मुनि, शारद से वकता, चिरजीवन लोमश ते अधिकाने।
एते भए तो कहा तुलसी_जो पै जानकी जीवन राम न जाने।

भगवदाश्रय रहति होने से ही उन लोगों का पतन हुआ। पर भक्त की रक्षा, उसकी चिन्ता तो स्वयं प्रभु को रहती है। इस तरह श्री भरत की तुलना क्षीरसागर से करके राघवेन्द्र ने श्री लक्ष्मण जी को संकेत किया कि क्या मेरा आश्रय ग्रहण करनेवाला मदोन्मत्त हो सकता है ? क्या तुम स्वयं श्री भरत के विषय में यह नहीं स्वीकार कर चुके हो कि "प्रभु पद प्रीति सकल जग जाना"—फिर उनकी तुलना इन्द्र, सहस्र बाहु आदिकों से क्यों करते हो ?

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

इसके पश्चात् पाँच असम्भव उदाहरणों के द्वारा प्रभु उनकी अपेक्षा भी भरत को राज्य-मद होना असम्भव सिद्ध करते हैं। यहाँ पाँच उदाहरण देने का तात्पर्य श्री भरत की महिमा सिद्ध करना है। पाँचों मिलकर भी भरत की तुलना नहीं कर सकते। तरुणसूर्य सबसे अधिक तेजस्वी है। आकाश सबसे विशाल है। घटयोनि विलक्षण दैवी-सम्पत्ति-सम्पन्न हैं। पृथ्वी क्षमाशील और सुमेरु गुरुता-सम्पन्न है। इन सब में तो एक एक ही विशिष्ट गुण है। किन्तु श्री भरत जी में पाँचों हैं।

सूर्य तेजस्वी है, किन्तु उसका अन्धकार से विरोध है। उसका नाम तमारि है। किन्तु श्री भरत के कीर्तिरूप यशचन्द्र से किसी का विरोध नहीं। वह दिन-रात्रि में समान रूप से प्रकाशित रहता है।

उदित सदा अथइहि कबहूँना।

आकाश विशाल है, किन्तु उसकी भी एक सीमा तो है ही। भरत तो सर्वथा निरवधि हैं "निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम आहि"। समग्र आकाश को न सही, पर लघु अंश को अवश्य मेघ ढकने में समर्थ हो जाता है। पर श्री भरत के हृदय-रूप-निर्मल आकाश में वासना के काले बादल कभी आये ही नहीं। वे सर्वथा वासना रहित बने रहे।

महर्षि अगस्त ने समुद्र का पान कर लिया। किन्तु उस समुद्र में खारा जल ही तो था। पर श्री भरत के हृदय में तो राम-यश-रूप-मधुर-मनोहर-मंगलकारी जल का अथाह सागर लहराता रहता है। फिर भी वे अतृप्त बने रहते हैं। "सुनत विमल गुन अति सुख पावहिं, बहुरि बहुरि करि विनय कहावहिं" से इसी अतृप्ति का संकेत मिलता है।

धरित्री क्षमाशील है, किन्तु परद्रोहियों को वह भी क्षमा नहीं कर पाती। स्वयं ही उसने "गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोहीं, जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही" कहकर इसे स्वीकार किया है। पर श्री भरत प्रभुद्रोही मन्थरा को भी क्षमा कर देते हैं। उनकी क्षमाशीलता अद्वितीय है। सुमेरु अपनी गुरुता के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु हिरण्यकशिपु और रावण के भय से वह भी काँप उठता है, पर श्री भरत तो उन महारथियों में हैं, जो सदा अडिग बने रहते हैं। अपनी निष्ठा से कभी विचलित नहीं होते। वाणासुर के द्वारा उठाया गया सुमेरु श्री भरत की गुरुता की तुलना कैसे कर सकता है?

इसीलिए प्रभु संकेत करते हुए कहते हैं कि भले ही तरुणसूर्य को अन्धकार

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निगल जाए। आकाश को मेघ ढक ले। अगस्त गोपद में डूब जाए। पृथ्वी क्षमाशीलता को छोड़ दे और सुमेरु मच्छर की फूँक से उड़ जाए, पर भरत को राज्य-मद नहीं हो सकता। उदाहरणों के द्वारा श्री भरत की विशेषता नहीं समझाई जा सकती। क्योंकि विश्व में ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं, जिससे भरत की तुलना की जा सके। अतः प्रभु स्वयं ही बड़े मार्मिक शब्दों में बोले——

सुनहु लषण भल भरत सरीषा, बिधि प्रपंच महँ सुना न दीखा।

भावुकता भरे शब्दों में प्रभु ने कहा——"वत्स लक्ष्मण! तुम भले ही उन्हें भ्रमवश कुटिल, कुबन्धु कहो, किन्तु मैं तुम्हारी और पिता जी की सपथ लेकर कहता हूँ कि श्री भरत के समान पवित्र और आदर्श भाई मैंने नहीं देखा।"

लषण तुम्हार सपथ पितु आना, शुचि सुबन्धु नहि भरत समाना।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रभु लक्ष्मण के प्रत्येक तर्क का समुचित उत्तर देना चाहते हैं और इसीलिए उन्हें सपथ लेने की भी आवश्यकता पड़ी। क्योंकि राघवेन्द्र द्वारा कही जानेवाली आगे की प्रत्येक वात का लक्ष्मण ने एक ही वाक्य में प्रभाव समाप्त कर दिया है।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित, शील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥

आप तो प्रेमशील और पवित्रता की मूर्ति हैं। और सबको अपने ही समान समझ कर विश्वास कर लेते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रभु के द्वारा की गई सारी प्रशंसा का उत्तर श्री लक्ष्मण एक ही वाक्य में दे सकते हैं। "यह तो आपकी सरलता और साधुता है। आप तो कैकेयी की भी प्रशंसा करते हैं।" अस्तु प्रभु मानो सपथ के द्वारा यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि भावुकता के आवेश में मैं श्री भरत की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, मैं अच्छी तरह से सोच-समझ कर सपथपूर्वक यह बात कहता हूँ।

दो सपथ भी सकारण हैं। श्री भरतजी में दो प्रधान गुणों का उल्लेख प्रभु करना चाहते हैं। "शुचि (प्रथम) सुवन्धु (द्वितीय) नहि भरत समाना।" पिताजी को प्रभु 'शुचिता' की सीमा मानते हैं और लक्ष्मण को सुबन्धुत्व की। मानो वे लक्ष्मण से कह रहे हों, "वत्स! पिताजी को मैं आदरणीयता की सीमा मानता हूँ और तुम्हें वात्सल्य की। मैं दोनों की सपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र और आदर्श वन्धु मैंने कहीं नहीं देखा।" इस सपथ से एक बात

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

और स्पष्ट है कि श्री भरत के प्रति प्रभु के दोनों भाव हैं--पिता जी के समान आदर की भावना और लक्ष्मण के समान वात्सल्य की भावना। "जग जप राम राम जपु जेही" और "जानि तुमहिं मृदु कहउँ कठोरा" से इन दोनों भावों की पुष्टि भी हो जाती है।

यदि कोई यह तर्क करे कि ब्रह्मा ने "जड़-चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार" के सिद्धान्तानुसार मिश्रित सृष्टि बनाई है, तो श्री भरत में गुणों के साथ किंचित दोष अवश्य होंगे। इसके उत्तर में प्रभु ने कहा--"यह ठीक है कि ब्रह्मा ने गुण-दोष मय सृष्टि को दूध-पानी की तरह इतना एकमेक कर दिया है कि उसका पृथक्करण असम्भव है। पर यह सिद्धान्त हम पर लागू नहीं किया जा सकता, वह तो क्षीर-निवासी है। पानी को पृथक् कर देना उसका सहज गुण है। उसी तरह रविवंश तड़ाग में जन्म लेकर भरत हंस ने भी उसी सत्य को चरितार्थ किया। वह अवगुण रूपजल का परित्याग कर गुणरूप दुग्ध को पी लेते हैं। इसी प्रकार अन्यों के लिए असम्भव कार्य को सम्भव बना देनेवाले यशस्वी भरत धन्य हैं।" इतना कहते-कहते प्रभु मौन हो गए, क्योंकि भरत स्मरण से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया और प्रेम-पयोधि में निमग्न हो गए। मानो पयोधि का स्नानार्थी चलते-चलते वहाँ तक पहुँच गया, जहाँ जल अगाध था। अथाह जल में डूबने पर शब्द निकलना असम्भव हो जाता है। गोस्वामीजी ने इन शब्दों में इसका उपसंहार किया--

सगुन खीर अवगुन जल ताता, मिलइ रचइ परपंच बिधाता।
भरत हंस रविवंश तड़ागा, जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी, निज जस जगत कीन्ह उजियारी।
कहत भरत गुन शील सुभाऊ, प्रेम पयोधि मगन रघुराउ।

दो० सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपा निकेतु।।

भरत के प्रति राघवेन्द्र का ऐसा स्नेह देखकर देवगण राम की प्रशंसा करते हुए कहने लगे--"अहा ! प्रभु-सा कृपा-निकेत कौन है ?" यहाँ गोस्वामीजी ने देवताओं के लिए 'बिबुध' शब्द का प्रयोग किया है। 'विबुध' का अर्थ है 'विशेष विद्वान'। साधारणतया गोस्वामीजी ने देवताओं की स्वार्थ-प्रवृत्ति को दृष्टि-गत रखकर उनकी आलोचना की है। किन्तु यहाँ श्री भरत की प्रशंसा सुनकर देवताओं को प्रसन्न होते देख श्री गोस्वामीजी भी उनके लिए 'विबुध' शब्द का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रयोग कर देते हैं। किन्तु देवताओं के कहने में कुछ भ्रम की सम्भावना है। श्री भरत की प्रशंसा सुनकर प्रभु की कृपालुता की सराहना करने का अभिप्राय मानो यह हो जाता है कि श्री भरत के गुणों की विशेषता न होकर प्रभु के स्वभाव का ही वैशिष्ट हो।

वस्तुतः साधना की दृष्टि से व्यक्ति की स्वकीय विशेषता को उसके पुरुषार्थ का परिणाम मानकर कृपा का ही परिणाम माना जाता है। कृपा और साधना परस्पर एक दूसरे की पूरक हैं। साधना के अभाव में कृपा की मान्यता केवल व्यक्ति के आलस्य की पोषक हो जायगी। और कृपाविहीन साधना की मान्यता से अहंकार वृद्धि होना संभव है।

भरत चरित्र में इन दोनों का समन्वय है।

सदोष व्यक्ति को भी भगवान अपना दास बना लें। किन्तु वह प्रभु के यश-वृद्धि का कारण नहीं बनता, और मुक्त हो जाने पर भी उसका नाम बदनाम ही रहता है। उदाहरण के लिए अजामिल को ले लीजिए। गोस्वामीजी ने इस विषय में एक भावपूर्ण दोहा लिखा है—

दो० तुलसी निज करतूति बिनु, मुकुत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि, नाम सक्यो नहि धोइ॥

इसीलिये गोस्वामीजी भक्ति की याचना के साथ ही कामादि दोषों के नाश की भी प्रार्थना करते हैं—

भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥

सर्वथा निष्पाप भक्त भगवान के यश की वृद्धि करता हुआ लोगों को भक्ति-मार्ग में बढ़ने की प्रेरणा देता है, किन्तु दोषी व्यक्ति अपने कार्यों से भक्तिमार्ग को भी आलोचना का पात्र बना देता है। श्री सुग्रीव प्रभु के सखा थे। फिर भी हम उनकी भरत से तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि उन्हें सखा बनाने में प्रभु का मृदु स्वभाव ही कारण बना—उनके कार्य नहीं। श्री भरत की विशेषता यही है कि प्रभु की महती कृपा के पात्र होते हुए भी सर्वथा जागरूक रहते हैं। समग्र धर्मों का पालन करते हैं। पर उसको भी प्रभु कृपा के ही रूप में लेते हैं। इतना ही नहीं, अपनी त्रुटियों का दर्शन करते हुए सर्वथा निरभिमान बने रहते हैं। "भरत-चरित्र" को आदर्श माननेवाला कभी पतित नहीं हो सकता।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यदि हमें कभी भी अपनी किसी विशेषता का भान हो, तो बस 'भरत-चरित्र' को पढ़ लो, मस्तक लज्जा से झुक जाएगा। "अहो! महर्षि देव, साध्य गणों द्वारा वन्दित भरत अपने में अभावों का अनुभव करते हैं और हम क्षुद्र जीव अपनी विशेषता—कैसी हास्यास्पद चेष्टा है हमारी।"

× × × ×

इसीलिए श्री भरत का दैन्य युग-युग के लिए भक्तों का सम्बल है। यह तो हुई उनके मनोभावों की पृष्ठ-भूमि। अब उस भावमय दृश्य को देखिए, जिसका गोस्वामीजी ने निम्नलिखित शब्दों में चित्रण किया है—

जौ परि हरहिं मलिन मन जानी, जौ सनमानहिं सेवक मानी।
मौरे सरन रामहिं की पनही, राम सुस्वामी दोष सब जनहीं।
जग जस भाजन चातक मीना, नेम प्रेम निज निपुन नबीना।
अस मन गुनत चले मग जाता, सकुच सनेह सिथिल सब गाता।
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी, चलत भगति बल धीरज धोरी।
जब समुझत रघुबीर सुभाऊ, तब पथ परत उताइल पाऊं॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी, जल प्रबाह जल अलि गति जैसी॥

श्री भरत का यह शब्द-चित्र भक्त हृदय का अमूल्य धन है। प्रेम-रस का सार सर्वस्व है। प्रेम-दर्शन का मंगलमय गम्भीर सूत्र है।

"चाहे मलिन मनवाला समझ कर मेरा त्याग कर दें और चाहे सेवक मानकर सत्कार करें। किन्तु उनके पादत्राण को छोड़ मेरे लिए अन्यत्र स्थान कहाँ?" यही शरणागति का मूल मंत्र है। जब तक हमारे हृदय में अन्य किसी भी आश्रय की स्मृति है, तब तक सच्ची शरणागति नहीं। सच्चा शरणागत सन्मान की भावना से नहीं जाता। उसके लिए प्रभु द्वारा किया गया सन्मान और निरादर दोनों ही समान हैं। क्योंकि उनका तिरस्कार भी विश्व के सन्मान से अनन्त गुना श्रेष्ठ है। श्री भरत-भाव को ही अपना आदर्श माननेवाले गोस्वामी जी भी विनय से पुकार उठे—

जौ तुम त्यागौ राम हौं तो नहि त्यागौं, परिहरि पाँय काहि अनुरागौं।
सुखद सुप्रभु तुम सों जगमाहीं, श्रवन नयन मन गोचर नाहीं।
हौं जड़ जीव ईश रघुराया, तुम मायापति हौं बस माया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हौं तौ कुजाचक स्वामी सुदाता, हौं कपूत तुम हित पितु माता ।
जो पै कहुँ कोउ पूछत बातो, तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ।
(विनय पत्रिका)

अपने प्यारे की चरण-पनहीं में उसके लिए वह दिव्य सुख है, जो मुक्ति में भी नहीं। चारों फलों का तिरस्कार कर के, अपमानित होकर भी वह इन्हें नहीं छोड़ सकता। प्रभु के यहाँ तो शरणागतों की भीड़ लगी रहती है। पर यह अनोखा भक्त तो उनकी 'पनही' की शरण में जा रहा है। आप चौंकेंगे—कहेंगे 'पनही'! वहाँ कहाँ? श्री भरत तो स्वयं ही "लषण राम सिय बिनु पग पनहीं" कह चुके हैं। फिर "मोरे शरण रामहि की पनहीं" का क्या अर्थ है?

इस अनोखे प्रेमी का आदर्श है 'पनहीं।' उसमें उसे गुण ही गुण दिखाई देते हैं। यह सदा प्रभु-चरणों में पड़ी रहनेवाली तपस्विनी है। इसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। इसकी साधना का केवल एक ही लक्ष्य है—राघवेन्द्र के सुकुमार चरण कमलों की रक्षा करना—उनके शिरीष पुष्पाधिक कोमल चरणों में कहीं कोई काँटा न लग जाए। बस इतने के लिए वह हर समय कंकरीली, पथरीली, कण्टकाकीर्ण सह में चलने को उत्सुक रहती है। इतने पर भी आज वह प्रभु द्वारा परित्यक्त है। जब इतनी साधनामयी होकर भी वह मानापमान से परे है, तब वे यदि मेरा त्याग करते हैं, तो मैं भी उन परित्यक्त उपानहों का ही आश्रय ग्रहण कर लूँगा। हमारे लिए वही आराध्य है। उसको प्राप्त कर लेना ही मेरा लक्ष्य है। उस जैसा बन जाऊँ यही कामना है। केवल प्यारे की कष्टों से रक्षा के लिए यह जीवन हो। इसी भावना से वे "मोरे शरन रामहिं की पनहीं" कहते हैं। उसके पहले "जौ परिहरहिं मलिन मन जानी" से भी इसी भावना की पुष्टि होती है। अभिप्राय यह है कि प्रभु भले ही त्याग कर दें, पर पनहीं नहीं त्याग करेगी। क्योंकि उसे स्वयं भी परित्यक्ता के दुख का अनुभव है। यदि वे ग्रहण करते हैं, तब भी मैं उपानह की ही तरह बनना चाहूँगा, और त्याग में भी उपानह ही। उपानह का और दूसरा उपयोग हो ही क्या सकता है? चरण उसे धारण कर लें, सेविका मान कर, तो वह धन्य हो गई। पर यदि त्याग भी कर दें, तो क्या वह अन्यत्र कहीं जा सकेगी? कौसल्या अम्बा का भी प्रभु की 'पनहीं' से बड़ा अनुराग है। उसके साथ संवेदना है। और उसके गुणों के प्रति श्रद्धा, साथ ही व्यथा—

बार बार उर नैननि लावति प्रभु जी की ललित पनहियाँ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राघवेन्द्र की तरह वे उस 'पनहीं' को भी हृदय से लगा लेती हैं। वास्तव में 'पनहीं' की शरणागति ही प्रभु की सच्ची शरणागति है। श्री भरत जैसे भावुकों को छोड़कर अन्यों के लिए यह सूझ असम्भव थी।

श्री भरत के शुभागमन से चारों ओर मंगल शकुन होने लगे। वहाँ का वातावरण शान्त, स्वच्छन्द और हृदय में आनन्द का संचार करनेवाला था। साधारण व्यक्ति को तो वहाँ वृक्ष और पशु के ही दर्शन होते हैं।! किन्तु भरत के नेत्रों में कुछ और ही दिव्य वातावरण दीख रहा था। उन्होंने देखा कि वहाँ 'विवेक नरेश' का राज्य था, मन्त्री भी अनुरूप ही था––'वैराग्य।' 'यम नियम' उसकी सेना के सैनिक थे, पर्वत राजधानी थी। शान्ति, सद्बुद्धि और पवित्रता उस राजा की तीन रानियाँ हैं। जो अतीव सुन्दर हैं। सुराज्य सभी अंगों से सम्पन्न है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह 'विवेक नरेश' रामचरणाश्रित हैं। 'मोह-नरेश' पर विजय प्राप्त कर के 'विवेक नरेश' अकण्टक राज्य कर रहे हैं। इसीलिए उनके राज्य में सुख सम्पत्ति और सुकाल का निवास हैं।

यह वर्णन श्री भरत के हृदय के सद्भाव का ही सूचक है। व्यक्ति अपने अनुरूप ही समग्र विश्व को देखता है। विरहातुर अवस्था में प्रभु को वन 'कामदेव की सेना' जैसा प्रतीत होता है। चन्द्रमा की कालिमा में विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दीखीं––पर श्री हनुमान जी को 'घनश्याम राम' दीखे, क्योंकि उनके हृदय में प्रभु का निवास है। इस प्रकार सर्वत्र ही भावना की प्रधानता दृष्टिगोचर हो रही है। वन में विवेक नरेश का राज्य हो किंवा नहीं पर श्री भरत के हृदय में विवेक राज्य अवश्य है। राष्ट्र के सभी सद्गुण उनमें व्याप्त हैं :

वन-प्रदेश	भरत
१. विवेक नरेशू	१. भरत विवेक बराह विशाला
२. सचिव विराग	२. तेहि पुर बसत भरत बिनुरागा
३. भट यम नियम शैल राजधानी	३. मुनि मन अगम यम नियम समदम विषमव्रत आचरत को
४. सांति सुमति शुचि सुन्दर रानी	४. भरत महा महिमा जल राशी परम पुनीत भरत आचरनू
५. राम चरण आश्रित चित चाउ	५. राम चरन पंकज मन जासू

उपरोक्त तुलना से स्पष्ट है कि भरत में वे सभी सद्गुण हैं, जिनका उल्लेख वन-प्रदेश के लिए किया गया है। अपनी ही भावना से वे उस सुप्रदेश का दर्शन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करते हैं। स्थान स्थान-पर मुनियों की मँजु कुटीर सुशोभित हैं। कई गुरुकुल आश्रम भी हैं, जहाँ सहस्रों शिक्षार्थी शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। वे विशाल आश्रम इस सुराज्य के महान नगर जान पड़ते हैं। कहीं कोई एकान्तवासी मौनी महात्मा अपनी पर्ण कुटी में ध्यान मग्न है। जिसके चारों ओर कदली, आम्र, मौलिश्री के हरित पादप हैं, वे इस राज्य के लघु ग्राम जान पड़ते हैं। वन-प्रदेश पक्षी और विहंग रूप प्रजा से परिपूर्ण है। करि, सिंह, व्याघ्र, शूकर, महिष, वृष आपसी शत्रुता त्याग कर वन में विहार करते रहते हैं। देखने में ये चतुरंगिणी सेना जैसी प्रतीत होती है। निर्झर कल-कल शब्द करते हुए बह रहा है, मानो निशान ही अनवरत रूप से बज रहा हो। चक्रवाक, चकोर, चातक, शुक, कोकिल, हंस आदि पक्षी अपने कण्ठ वाद्य पर विभिन्न ताल-स्वरों में गा रहे हैं। मयूर मेघ न होने पर भी नृत्य कर रहे हैं। इस प्रकार सुराज्य में चारों ओर मंगल ही मंगल छाया हुआ है। बेलि, विटप, तृन—सभी पुष्पित हैं और फलित होकर श्री भरत के सामने नम्र भाव से झुके हुए हैं। उनका स्वागत कर रहे हैं।

एक राष्ट्र का अधिपति जब दूसरे मित्र देश में जाता है, तो वहाँ उसका सोत्साह स्वागत किया जाता है। 'विवेक नरेश' के इस परम पावन प्रदेश में पहले तो अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड नायक का शुभागमन हुआ। नरेश ने बड़े ही समारम्भ से उनका स्वागत किया। अपना अतिथि बनाया। पर आज जिस अतिथि का शुभागमन हो रहा है, वह तो अतुलित है। वह 'प्रेमपुर' का अधिपति है। अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्डाधीश्वर भी जिसके सामने अनेकों बार पराजित हो चुके हैं (एक कहँ भई हार रामजू की एक कहँ भैया भरत जये—गीतावली) फिर उसके स्वागत का क्या कहना। दोनों का स्वागत हुआ, पर अन्तर अवश्य है और बड़ा ही मधुर व मनोरंजक। श्री भरत की अगवानी में संख्या का बाहुल्य है साथ ही वस्तु का भी। दोनों की तुलना देखिए—

श्री राम	श्री भरत
करि, केहरि, कपि, कोल, कुरंगा विगत बैर १ २ ३ ४ ५	खगहा, करि, हरि, बाघ, बराहा १ २ ३ ४ ५

श्री राम	श्री भरत
विचरहिं सब संगा (पाँच प्रकार के पशुओं द्वारा स्वागत)	देखि महिष, वृषु, साज सराहा ६ ७ (सात प्रकार के पशुओं द्वारा स्वागत)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नीलकण्ठ, कलकण्ठ, शुक, चातक, चक्क,
१ २ ३ ४ ५
चकोर। भाँति भाँति बोलहि बिहग
६
श्रवण सुखद चित चोर। (छः प्रकार के पक्षियों द्वारा स्वागत)

चक, चकोर, चातक, शुक, पिक गन,
१ २ ३ ४ ५
कूजत मंजु मराल मुदित मन, अलिगन
६ ७
गावत नाचत मोरा जनु सुराज मंगल
८
चहु ओरा। (आठ प्रकार के पक्षियों द्वारा)

फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना, मंजु ललित बर बेलि बिताना। (वृक्षों ने पुष्पित-फलित होकर स्वागत किया)

बेलि बिटप तृन सफल सफूला, सब समाज मुद मंगल मूला। (प्रभु के आगमन पर केवल वृक्ष ही फलित हुए, पर यहाँ तो बेलि और तृन सफल सफूला हो गए।

इस दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि मार्ग के स्वागत की पुनरावृत्ति यहाँ भी हुई। "तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात" का पाठ 'विवेक नरेश' ने भी दुहरा दिया। धन्य हैं श्री भरत।

श्री भरत तो इस मंगलमय दृश्य का कुछ और ही अर्थ ले रहे हैं। पशु-पक्षियों का यह वैर-त्याग, वृक्षों के फल और सुमनावली उनके हृदय में यही भाव उत्पन्न करता है कि बिना प्रभु सामीप्य के यह शोभा आ ही नहीं सकती है। अन्वेषणशीला गोपियों ने भी एक लता में अद्‌भुत पुष्प लगा देखकर यही निर्णय किया था।

पूछौ री इन लतनि फूलि रहों फूलन सोई।
बिना पिया के परस कतहुँ अस फूल न होई॥

प्रेमियों की पारखी दृष्टि में प्रिय सामीप्य छिपा नहीं रह सकता। श्री भरत की उत्सुकता देखकर राम-सखा ने वहीं से प्रभु-आश्रम का मनोरम दृश्य उन्हें दिखाया। "नाथ! देखिए उस विशाल वट वृक्ष को! जिसके चारों ओर रसाल और तमाल के चार पादप सुशोभित हैं। बट-तरु तो रामभद्र को अतीव प्रिय है। वह है भी इस योग्य क्योंकि उसके नीलवर्ण के किसलय अत्यन्त सघन हैं। नील रंग के पत्र, और रक्त वर्ण के फलों को एकत्र देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो अन्धकार और प्रकाश का एकत्रीकरण कर के ब्रह्मा ने समग्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सुषमा सकेल कर इसका निर्माण किया है। प्रत्येक ऋतु में वह पादप सुखद है। उसी वृक्ष के निकट श्वेत-सलिला-पयस्विनी मन्थर गति से बह रही हैं। पयस्विनी-पुलिन पर प्रभु की रम्य कुटी निर्मित है। कुटीर के चारों ओर जगदम्बा जानकी और श्री लक्ष्मण ने तुलसी तरु को पंक्ति-बद्ध लगाया है। वट-तरु के नीचे विशाल वेदी बनी हुई है, जिसका निर्माण स्वयं श्री किशोरीजी के कर कमलों द्वारा हुआ है। युगल सरकार मुनिवृन्द समेत वहाँ नित्य सत्संग करते हुए कथा-पुराण-इतिहास का श्रवण करते हैं।

निषाद राज की वाणी सुनते, और बट वृक्ष को देखते ही श्री भरतजी के विशाल नेत्रों में आँसू भर आए। मानो आँसुओं की पुष्पांजलि उस वृक्ष के लिए अर्पित करते हुए मन-ही-मन कह उठे——"धन्य हो बट वृक्ष ! तुमसा भाग्यवान कौन होगा ? अभागी अयोध्या का परित्याग कर के अखिल लोकाश्रय तुम्हारे आश्रय में निवास कर रहे हैं। तुम्हारा पल्लवित, पुष्पित, फलित, होना आज सफल हो गया। सुरतरु भी आज तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या करते हैं। तुम सच्चे अनुरागी हो।" इसके पश्चात् दोनों भाई दण्डवत करते हुए आश्रम की ओर चले। अहा ! यह तो प्रभु के चरण चिह्न हैं। ध्वज कुलिश, अंकुश, कमल अपना परिचय आप दे रहे हैं। श्री भरत के हर्ष का क्या ठिकाना ? मानो दरिद्र को पारस पत्थर मिल गया हो। उस पावन धूलि को माथे पर चढ़ाते हैं। हृदय और नेत्रों में लगा लेते हैं। उन्हें तो उसमें रघुवर-मिलन का ही आनन्दानुभव हो रहा है। ठीक ही तो है, यह सुख प्रभु के यहाँ नहीं——वहाँ यदि प्रभु के चरणों में पड़े रहना चाहे तो भला वे कैसे रहने पावेंगे ? राघवेन्द्र की दृष्टि में उनका स्थान हृदय है——चरण नहीं। उनके निकट पहुँच कर तो मन की मन ही में रह जाती है। अच्छी तरह आँख उठाकर देख भी नहीं पाते। स्वयं वे कहते हैं——

महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कहेऊँ न बैन।
दरशन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥

यहाँ तो कोई रोक नहीं। चरण-रज को चाहे हृदय पर धारण करें या माथे पर चढ़ावें और चाहे नेत्र में लगावें। यह चरण-रज ही वह औषधि है, जिसकी खोज में वह वन-वन भटक रहे हैं। अयोध्या के सभा-भवन में यही तो समस्या उत्पन्न हुई थी। जब सब लोगों ने एक स्वर से राज्य पद स्वीकार

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

करने का आग्रह किया, तो व्याकुल हो गया राम विरही—इस राजमद-रूप-वारुणी के अविष्कार से, और बोल ही तो पड़ा—

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मारि।
ताहि पिआइहि वारुणी, कहहु कवन उपचार।।

वास्तव में यह वाक्य इतना समुचित था कि सभी लोग अवाक् रह गए। अपनी धारणा पर लज्जित होकर अधोग्रीव बैठ गए। तब इस भवरोग के सच्चे वैद्य ने घोषणा की थी—

आपुनि दारुण दीनता, सबहि कहउँ समुझाइ।
देखे बिनु रघुबीर पद, जिय की जरनि न जाइ।।

आज वह संजीवन-मूरि का चूर्ण प्राप्त हो गया है—"पद-पंकज-पराग" के रूप में। विरह-संकुल श्री भरत की स्थिति वाणी के लिए अतीव अकथ हो गई। उनकी प्रेम विह्वलता को देख पक्षी, मृग, जड़, चेतन सभी प्रेममग्न हो गए। नदी का प्रवाह रुक गया। प्रस्तर पिघल कर द्रव्य रूप में प्रवाहित होने लगे। चित्रकूट में एक अद्‌भुत व्यतिक्रम उपस्थित हो गया। जड़-चेतन बन गए और चेतन जड़। मार्ग दिखानेवाला भी इस सुरा की मादकता से न बच सका। राम सखा स्वयं ही रास्ता भूल गए। "रामहिं भरतहिं भेंट न होई" की भावनावाले स्वार्थी देवगण भी इस प्रेम-प्रभाव से अछूते न रह सके। हृदय का स्वार्थ और कलुषता विस्मृत हो गई। स्वयं ही मार्ग बताते हैं और पुष्प-वृष्टि करके पथ को कोमल बनाने के साथ ही अपने सद्‌भाव की भी वृष्टि करते हैं। इस अद्‌भुत "न भूतो न भविष्यति" दृश्य को देखकर सिद्ध, साधक सभी प्रेममग्न हो सहजानुराग की सराहना करने लगे—गोस्वामीजी के शब्दों में पढ़िए—

हरषहिं निरखि राम पद अंका, मानहुं पारस पायउ रंका।
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं, रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।।

देखि भरत गति अकथ अतीवा, प्रेम मगन खग मृग जड़ जीवा।
सखहिं सनेह बिबस मग भूला, कहि सुपन्थ सुर बरसहिं फूला।।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे, सहज सनेह सराहन लागे।
होत न भूतल भाउ भरत को, अचर सचर चर अचर करत को।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वास्तव में इस सहजानुराग के कारण श्री भरत के प्रेम की तुलना अन्य किसी से नहीं की जा सकती। सिद्धों के लिए भी यह प्रेम सर्वथा अप्राप्य है। "रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निसम्यशब्दान्" से जिस अनुराग का उदय होता है, उसे प्रेम नहीं प्रेमाभास कहना उपयुक्त होगा। इसमें इन्द्रियजन्य लालसा और भोग वासना ही प्रेरक है। इस तरह तो हम नित्य न जाने कितनी वस्तुओं पर मुग्ध होते रहते हैं और उसके उपभोग के लिए व्याकुल होते हैं। भोग के फलस्वरूप उसमें क्षणिक तृप्ति का भी अनुभव होता है। महर्षि नारद ने अनुरागोदय के साधन के रूप में माहात्म्य-ज्ञान––श्रवण की आवश्यकता का उल्लेख किया है। "सातु माहात्म्य ज्ञानपूर्वं" पर यह प्रक्रिया भी संसार के प्रति महत्व बुद्धि और आकर्षण का नाश करने के लिए है। क्योंकि जब तक विश्व की किसी वस्तु में महत्त्व बुद्धि होगी, तब तक उससे राग भी अवश्य होगा और जब तक अन्यत्र राग है, तब तक प्रभु में पूर्ण प्रेम होना असम्भव है। प्रियतम के माहात्म्य-ज्ञान-श्रवण से लौकिक महत्त्व बुद्धि का नाश हो जाता है। उसके पश्चात इस माहात्म्य ज्ञान की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती। दूसरी ओर माहात्म्य श्रवण से भोग बुद्धि का भी नाश होता है। उनके कोटि कन्दर्प दर्पदलन रूप सुधा माधुरी का वर्णन सुनकर भोगेच्छा का उदय नहीं ? अपितु उनके चरणों में अर्पित हो जाने की भावना बलवती हो उठती है। माहात्म्य श्रवण में यद्यपि उनकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन वह सुनता है, पर उनकी कोमलता, सुकुमारता हृदय पर इतना प्रभाव डालती है कि उनसे कोई कार्य लेने की इच्छा शेष नहीं रह जाती। प्रेमी के हृदय में उनकी सर्व-शक्तिमत्ता की अपेक्षा पाटल-पुष्पाधिक सौकुमार्य का ही चिरस्थायी प्रभाव रहता है। अपितु इसे यों कहना चाहिए कि उनका सौकुमार्य ज्ञान, सर्वशक्तिमत्ता को इतना ढक लेता है कि प्रेमी के हृदय से उसकी सर्वथा विस्मृति हो जाती है। इसलिए वह तो उनकी सेवा, उनको सुखी देखने की भावना में ही सर्वथा निमग्न रहता है। इस प्रकार "माहात्म्य ज्ञान श्रवण" रूप साधना के द्वारा सिद्ध प्रेमी भी सर्वथा निष्काम हो जाता है। प्रेम और कामना की एकत्र स्थिति असम्भव है।

किन्तु श्री भरत का सहजानुराग इसकी अपेक्षा भी विलक्षण है। क्योंकि विस्मृत या लुप्त वस्तु का ही साधनों के द्वारा प्राकट्य होता है। पर श्री भरत के जीवन में विस्मृति का कोई स्थान ही नहीं। एक क्षण के लिए भी प्रभु उनके हृदय से पृथक् नहीं होते। अतः साधन द्वारा प्रेम प्राकट्य का वहाँ कोई प्रयोजन नहीं। उनके द्वारा साधना लोकसंग्रह और सहज रूप से होती रहती है। इस प्रकार उनका आचरण साधक-सिद्ध दोनों के लिए अनुकरणीय है। नित्य सिद्ध

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रेमी श्री भरत का दैन्य और अनुराग विश्व इतिहास में अद्वितीय हैं। वे प्रभु के चरणों में रहे या कण्ठ से लग जाए।

पद युग परिचर्या कामिनी व विद्वत्ते ।
प्रियतम हृदये व खेलतु प्रेम रीत्या ।।

सदा चरणों में ही पड़े रहने की आकांक्षावाला भक्त जिसने कभी भी अपने अधिकार का प्रयोग न किया—अधिकार होते हुए भी जिसने अपनी कोई इच्छा प्रभु से कभी न मनवाई हो, वह हैं 'श्री भरत'। सिद्ध-साधक सभी कहने लगे, अहा! हम तो प्रभु के वन-आगमन का कारण धर्म-रक्षा और पितृ-आज्ञा पालन ही समझते थे, पर भरत का दर्शन होने पर वास्तविकता का ज्ञान हुआ। रघुवीर ने प्रेमामृत को प्रगट करने के लिए ही यह लीला की है। राघवेन्द्र की महती कृपा से ही हम सबको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गंभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिन्धु रघुबीर ।।

× × × ×

अखिल लोक मोहन आज प्रेमी वने वड़ी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहे हैं अपने 'भरत' की। विशाल खंजन जैसे चंचल नयन बार- बार छटपटा उठते हैं, किन्तु मार्ग की ओर देखकर निराश हो जाते हैं। कहाँ गई आज सर्वज्ञता! जिसकी प्रतीक्षा है, वह तो निकट आ चुका है। प्रभु की बाँकी-झाँकी का दर्शन कर रहा है। पर उसे वे न देख सके। आज तो कुछ उल्टी रीति हो गई। छिपने की कला में तो नटनागर ही निपुण थे। भक्त की प्रेममयी व्याकुलता का आनन्द कहीं लता-ओट से लेते हैं, तो कहीं तरु-ओट से। वह चिन्तित होकर अधीर हो उठता है, तो इनके अधरों पर हास्य की मन्द रेखा बिजली जैसी चमक जाती है। किसी ने कहा होगा हे निठुर शिरोमणे! तुम प्रतीक्षा की व्याकुलता क्या जानो तुम्हें क्या पता तुम्हारे बिना मेरा पल कैसे व्यतीत हो रहा है।

युगायितं निमेषेण चक्षुणा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोबिन्द विरहेणमं ।।

पर आज तो वह स्वयं ही प्रतीक्षा भरे नयनों से पंथ निहार रहा है। प्रेमी भी आकर कुछ दूर से उनका दर्शन कर रहा है। वह भी पीछे से ही आया है--

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर उसके हृदय में छकाने का भाव नहीं। वह तो अपनी नम्रता, दीनता से भयभीत निशब्द पग रखता हुआ पीछे से आता है। सामने आने में उसके पग काँपते हैं, पर लक्ष्मण तो प्रभु के ठीक सामने ही बैठे हुए हैं--

देखे भरत लषण प्रभु आगे।

वे भी नहीं देख पाए भैया भरत को। क्यों? अहा! वह न केवल पृष्ठभाग से आया है, अपितु विजन-वन-पादपों की ओट में अपने को छिपाए हुए है। उसकी इच्छा के बिना उसे कोई देख भी कैसे पाता। इसीलिए वे नहीं देख पाए इस "सखा संयुक्त मनोहर जोटे को"--

सखा समेत सनोहर जोटा, लखेउ न लषण सघन बन ओटा।

पर प्रेमी सब कुछ देख रहा है। अपलक नयनों से अपने श्याम सलोने को निहार रहा है। भला सामने से आन पर देख पाता इस भाँति? संकोच से आँखें गड़ जातीं भूमि की ओर। प्रेमी के लिए दर्शन भी एक कठिन समस्या है। एक प्रेमी तो कह उठा---'अरी निगोड़ी आँखो, तुम्हारे लिए सुख बनाया ही नहीं गया है। उन्हें देखे बिना रहा नहीं जाता है और सामने आने पर देखते नहीं बनता'—

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनैं न देखते, बिन देखे अकुलाहिं।।

पर प्रेमी बड़े चतुर होते हैं—उपाय निकाल ही तो लिया और दर्शनानन्द का अनुभव करने लगे चुपचाप। मस्तक पर जटा सुशोभित है। जान पड़ता है मानो काम ही सुवेश में पद्मासनस्थ बैठकर कथा श्रवण कर रहा है। कटि में बल्कल वस्त्र धारण किए हुए हैं। निषंक कसा हुआ है। हाथ में बाण और स्कन्ध पर धनुष सुशोभित है। यह ध्यान रहे प्रेमी पृष्ठ भाग में खड़ा है।

देखे भरत लषण प्रभु आगे, पूँछे बचन कहत अनुरागे।
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे, तून कसे कर सर धनु काँधे।
बेदी पर मुनि साधु समाजू, सीय सहित राजत रघुराजू।

पर हठीला कवि इतने से क्यों सन्तुष्ट होने लगा--वह सामने की भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

झाँकी का आनन्द लेना चाहता है। उसकी अव्याहत गति है और वह सम्मुख खड़ा होकर चित्रण करने लगा—

बलकल बसन जटिल तनु श्यामा, जनु मुनि वेश कीन्ह रति कामा।
कर कमलनि धनु सायक फेरत, जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।

दो० लसत मँजु मुनि मण्डली, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जन तनु धरे, भगति सच्चिदानन्द ॥

दोनों झाँकियों में अन्तर है। जहाँ कुछ क्षण पहले धनुष स्कन्धों पर था अब कर कमलों में सर सहित लालित हो रहा है। मुख से हास्य की रेखा प्रस्फुटित होना चाहती है। यह युद्ध और प्रसन्नता की मुद्रा का एकत्र निवास कैसा? 'सरचाप' तो युद्ध-क्षेत्र में ही स्कन्धों से आकर कर कमलों में लालित होता है। दूसरी ओर युद्ध की कोप मुद्रा नहीं——मुख पर हँसी खेल रही है। कवि श्री किशोरी जी की 'कृपा-कटाक्ष-लब्ध निर्मल-मति" से जान लेता है कि यह हास्य तो किसी का स्वागत करने के लिए है। पर साथ ही युद्ध भी तो करना है किसी से, उससे जो भरत-हृदय में घुसकर अधिकार जमाने की चेष्टा में संलग्न है "जिय की जरनि।" वह हृदय तो केवल प्रभु का ही विश्रामस्थल है। उसमें अन्य का प्रवेश कैसे सहन किया जा सकता है। येन केन प्रकारेण तो उसे निकालना ही है। अन्वेषण हो रहा है उसका। पर वह तो छिप गया कहीं जाकर। भागा हुआ शत्रु क्षमा का पात्र अवश्य है, पर प्रभु तो इसे क्षमा करने के लिए तत्पर नहीं हैं। उसे खोजकर मारेंगे, जिससे फिर लाड़िले भरत को कभी पीड़ा न पहुँचा सके। इस दृष्टि और मुस्कान के द्वारा जो अमृतमयी है वे भरत को देखने के लिए आतुर हैं।

'रघुचन्द' नाम भी कवि की काल मर्मज्ञता का परिचायक है। इस समय प्रभु 'रवि' बनकर प्रकाश वितरण नहीं कर रहे हैं। क्योंकि सूर्य तो जलन को बढ़ानेवाला है। वे चन्द्रमा के समान शीतलता और आह्लाद का दान कर रहे हैं। अतः 'रघुचन्द' है।

जीवन सर्वस्व के दर्शन हुए और मन उनमें समा गया। अब उनका, हर्ष, शोक, दुख, सुख, रूप, स्वरूप चितचोर में मिलकर एकमेक हो गया। उसे अब खोजना व्यर्थ है—इसे चाहे योगी की निर्विकल्प समाधि कह लें, चाहे प्रियतम का मिलन, बात एक ही हैं। "हेरत हार हेरान रहिमन आपुहि आप में" कैसा आश्चर्य है?

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सानुज सखा समेत मगन मन, बिसरे हरष शोक सुख दुख गन ।

अहा ! यह बेसुधी ही तो ज्ञान का भी चरम लक्ष्य है। लाल की लाली की खोज में लाल ही तो होना पड़ा। प्रेमी सर्वथा आत्म-विस्मृत हो रहा है। वियोगी सोच भी नहीं पाता कि मैं कभी पृथक् था। 'मैं' की अनुभूति भी जाती रही। बस केवल प्रेम ही प्रेमभाव मग्नता शेष रही। श्री मद्भागवत् में इसी स्थिति का उल्लेख किया गया है।

ता न विदन्मय्य् नुषंका वद्ध धिय: स्वामात्मान भतस्थदेम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धिनोये नद्य: प्रविष्टा इव नामरूपे ।।
(११।१२।१२)

"जैसे समाधिस्थ मुनि जन और समुद्र में मिलकर नदियाँ अपना नाम रूप खो देती हैं उसी प्रकार सदा मुझमें मन लगे रहने के कारण उन्हें अपनी विस्मृति रहती है।"

श्री भरत ही नहीं निषाद राज और शत्रुघ्न की भी वही स्थिति है और और प्रभु की भी। प्रतीक्षा के पश्चात् वे शान्त भाव से बैठ गए हैं। मुख पर मुस्कराहट आ रही है। वह इसीलिए कि शरीर से कुछ दूरी होने पर भी मन से दोनों मिलनानन्द में मग्न हैं। तब व्याकुलता कैसी ?

मनमहाशय तो अवश्य मगन हो गए प्रेम पयोधि में अपने संकल्पों-विकल्पों से रहति होकर। पर शरीर भी तो आतुर था–उनके चरणों में लिपट जाने के लिए। किन्तु अपने आगे दूसरे का ध्यान किसे ? मन को तो मिल चुका प्राणेश्वर, बस दोनों घुल-मिलकर एकमेक हो गए। पर न रहा गया अन्य इन्द्रियों से, मानो सब ने जिह्वा से प्रार्थना की कि तुम पुकारो हृदयेश्वर को, नहीं तो हम सब उनकी स्पर्शानुभूति से वंचित ही रह जाएँगी। वाणी पुकार उठी––"रक्षा करो, रक्षा करो नाथ।" शरीर दण्ड की भाँति भूमि पर गिर पड़ा।

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं ।

पर सुनता कौन ? वहाँ भी तो "प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ" हो रहे हैं। कुछ लोगों को यह अद्भुत प्रतीत होता है कि जिसका नाम सुनकर आँखों में प्रेमाश्रु छलक उठे, जिससे मिलने के लिए वे व्याकुल हो रहे हैं, उसके शब्दों को न सुन सकें। पर जैसा कहा जा चुका है कि व्याकुलता मिलने के पहले ही समाप्त

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हो चुकी है। सुतीक्ष्ण जी के प्रसंग में भी--कहाँ तो दौड़ते जा रहे थे प्यारे का स्वागत करने और अब देखिए तो अखिल लोकेश्वर खड़े बार-बार जगा रहे हैं, पर प्रेमी उठता ही नहीं है।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा, जाग न ध्यान जनित सुख पावा।

जानकर न उठे हों ऐसा नहीं। वह जो बाहर खड़े हैं, भीतर भी प्रगट हो गये हैं "प्रगटे हृदय हरन भव भीरा"।

ठीक यही स्थिति यहाँ भी हो रही है। "पाहिनाथ" का शब्द कौशल-किशोर ने नहीं, श्री लक्ष्मण ने सुना। अहा! यह प्रेममयी वाणी तो भैया भरत की है।

बचन सप्रेम लषण पहिचाने, करत प्रणाम भरत जिय जाने।

और सुनते ही रामानन्य "गुरु पितु मातु न जानऊँ काहू" का सिद्धान्त माननेवाले भैया लक्ष्मण भी क्षण भर के लिए भरत के स्नेह-प्रवाह में पड़ गए। हृदय में द्वन्द्व खड़ा हो गया। एक ओर सरस-बन्धु-स्नेह और दूसरी ओर सेवा-धर्म। श्री लक्ष्मण जी के जीवन में यह प्रथम क्षण है, जब किसी का स्नेह प्रभु-सेवा की तुलना में उपस्थित हुआ है--बलिहारी है श्री भरत-स्नेह की। कैसा अद्भुत द्वन्द्व है। तब अनन्य व्रती का निर्णय सेवक धर्म की ओर होता, यह स्वाभाविक भी है। पर मन तो चला ही गया बन्धु के निकट। हाँ उसे वापस लाना है। अतः चतुर पतंग उड़ाने वाले की तरह (बीच में ढील दे देकर) पतंग नीचे उतारते हैं। एक साथ खींच लेने पर धागे के टूट जाने का भय बना रहता। मन में श्री भरत की गुण गाथा (यही ढील है) गाते हुए समाहित हो जाते हैं। इसके पश्चात बड़ी ही शीघ्रता से पृथ्वी पर झुककर नित्य किशोर को प्रणाम कर के प्रेम भरे शब्दों में बोले--"हे रघुकुल शिरोमणे! भ्राता भरत आपको प्रणाम कर रहे हैं।" 'करत प्रणाम भरत रघुनाथा'। तब चौंक पड़े रसिक शेखर! क्योंकि यहाँ तो श्री भरत की मानसमूर्ति से वार्त्तालाप हो रहा था। तन्मयता में उन्हें इसका भान ही न था कि भरत तो भूमि पर पड़े हुए हैं। श्री लक्ष्मण से सूचना पाते ही प्रभु अधीर हो जाते हैं।

'भरत' शब्द कर्ण कुहरों में प्रविष्ट होकर मतिधीर को भी अधीर बना देता है। उस समय की विह्वलता का चित्रण गोस्वामी जी के शब्दों में पढ़िए--

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनुतीरा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उस समय रसिक-वर कौशलेन्द्र की अधीरता की तुलना कृष्ण-प्रेम-सार-सर्वस्व महाभाग ब्रजांगनाओं की साक्षात्मन्मथ-मन्मथ श्याम सुन्दर की कल वेणु से विनिसृत आह्वान वाणी को सुनकर हुई अधीरता से ही की जा सकती है। भगवान व्यास उसका वर्णन करते हुए कहते हैं —

निषम्य गीतं नदनंग वर्धन ब्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः।
आजग्मु रन्योन्य भलक्षिनोयमाः सयत्र कान्तो जब लोक कुण्डलाः।
दुहन्त्यो ऽभिमयुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सु काः।
पयो ऽधि श्रिन्य संयाव मनु द्वास्या परा ययुः।
परिवेष यन्त्य स्तद्धिला धाययन्त्य शिशून्ययः।
शुश्रूषन्त्य पतीन्काश्चिद श्नन्त्यो पास्प भोजनम्।
लिम्पन्त्यः प्रभुजन्त्यो न्या अंजन्त्यः काश्चलोचने।
व्यत्यस्तः वस्त्रा भरणाःकाश्चित्कृष्णान्तिक यदुः।

किन्तु यहाँ अखिल लोकाराध्य ही 'भरत' शब्द श्रवण कर सुध-बुध खो बैठते हैं। प्रियतम ही प्रेमी बन गए। कहीं पट गिरा, कहीं निषंग और धनुष-तीर भी गिर पड़ा। मानस भर में ऐसी देह-विस्मृति का एक मात्र यही उदाहरण है।

प्रिय से मिलने के लिए सर्वत्याग अपेक्षित भी तो है। व्यवधान रहते हुए सच्चा मिलन कैसे होगा? रसिक-जनों द्वारा तो पुष्प हार भी इसी भय से धारण नहीं किया जाता कि प्रिय से दूरी उपस्थित कर देगा। "हरो नारो पिता कण्ठे भमा विश्लेष भीसणा।" रसिक शेखर चार-चार वस्तुओं को धारण किए हुए हैं। कैसे मिलें?

शकुन-शास्त्र-वेत्ता कहते हैं कि हाथ से अस्त्र-शस्त्र गिरना अशुभ है। पराजय का सूचक है। लंका काण्ड में भी अशुभ के रूप में इसका उल्लेख हुआ है। "स्त्रवहिं आयुध हाथ ते।" यही एक ऐसा अवसर है, जब प्रभु के कर कमलों से आयुध गिरा, और शास्त्रवेत्ताओं की बात भी झूठी न हुई। राघवेन्द्र की पराजय हुई, पर किसके सामने? लाड़िले भरत के समक्ष। इस पराजय पर सौ-सौ विजयों को निछावर किया जा सकता है। प्रेमपराजित कौशल-किशोर तो शिशुपन से ही भरत के सामने हारते आए हैं—हारकर प्रसन्न होते आए हैं। हारकर दान देते हैं। ब्राह्मणों से आशीर्वाद माँगते हैं कि ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि भरत के समक्ष हम सदा परास्त होते रहें।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

एक कहत भई हार रामजू की, एक कहत भैया भरत जये।
प्रभु बकसत गज, बाजि, बसन, मनि, जय धुनि गगन निसान हए।

अहा! आयुध पात मानो उस आत्मसमर्पण की पूर्व सूचना है, जो आगे "भरत कहे सोइ किए भलाई" कहकर राघव करनेवाले हैं।

किंवा रघुवीर के आयुध स्वयं ही चरण धूलि में गिरकर उस दिव्यानन्द का अनुभव करना चाहते हैं, जिसका अनुभव "प्रभु पद पाथेऊ पराग" में पड़े हुए श्री भरत कर रहे हैं। मानो वे सोचते हैं कि अवश्य ही इस मकरन्द में कोई विशिष्ट रस होगा। इसी से तो भक्ताग्रगण्य भूमि में पड़े हैं। हम लोग तो इससे वंचित ही रहे जा रहे हैं। अतः प्रभु की अधीरता का लाभ उठाकर वे भी चरण रज में लिपटने के लिए भूमि में गिर पड़ते हैं। अथवा भक्त-कुल-तिलक भरत का दैन्य देखकर अपनी धृष्टता का अनुभव करते हैं कि अहो! श्री भरत जैसे प्रेमी भूमि पर और हम सब प्रभु के अंग पर। अतः लज्जित होकर यत्रतत्र भूमि पर गिर पड़ते हैं।

किंवा "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव मजाम्य हम्" तो प्रभु की प्रतिज्ञा ही है। श्री भरत भी यहाँ आकर चार वस्तुएँ विस्मृत हुए —

"बिसरे हरष, शोक, सुख, दुख गन।'
१ २ ३ ४

अतः इधर भी चार वस्तुएँ विस्मृत हुईं।

कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा।
१ २ ३ ४

यहाँ प्रभु की शीघ्रता की मार्मिक अभिव्यंजना गोस्वामीजी ने अपनी अनूठी शैली से की है। 'बेसुध शरीर' से उठने के पश्चात् उनके चलने या दौड़ने का कोई उल्लेख महाकवि नहीं करते हैं। वे तो कहते हैं कि प्राणाराम विह्वल होकर उठे--निषंक पट धनुष-तीर गिरने की स्मृति भी न रही और हठात् अनुराग-रस-सार सरोवरोद्भूत दिव्य सरोज भरत को हृदय से लगा लेते हैं —

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषंक धनु तीरा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Harihharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दो० बर बस लिए उठाई उर, लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरेउ सबहिं अपान ।।

उठने और हृदय से लगा लेने के बीचवाली स्थिति का उल्लेख क्यों नहीं करते ? इस प्रसंग पर मुझे स्मरण हो आता है आर्त्त-गजेन्द्र की गाथा का। 'ग्राह' पूर्व वेग से सरोवर में खीचे लिए जा रहा है 'गज' को। स्त्री-पुत्र-कलत्र सभी चेष्टा कर के हार चुके हैं। चारों ओर निराशा ही निराशा है। तभी हृदयान्धकार में एक क्षीण रेखा दिखाई पड़ी अनाथ-बन्धु, लोकनाथ भगवान विष्णु की कृपा की। प्रतिक्षण मृत्यु निकट आ रही है। विह्वल कण्ठ से पुकार उठा—"हे जगन्निवास ! मैं मदान्ध चारों ओर से निराश होकर आपकी शरण में हूँ, रक्षा कीजिए।" गजेन्द्र की आर्त पुकार बैकुण्ठनाथ के कानों तक पहुँची और गरुड़ पर बैठकर चलने लगे। देवी लक्ष्मी ने पूछा—"भगवन इतनी शीघ्रता में कहाँ ?" उत्तर देने लगे—कहना चाहते थे "हाथी"। पर उस समय की आतुरता देखने योग्य थी। शीघ्रगामी गरुड़ की चाल भी मन्थर प्रतीत होने लगी, तो कूद पड़े वाहन से। भावुकों का कथन है कि " 'हा' रहचो भवन वीच 'थी' गयन्द पास ही में" 'हा' शब्द लक्ष्मी जी सुन चुकी थी—शब्द का उच्चारण तो गजेन्द्र के निकट हुआ। चक्र से नक्र के टुकड़े-टुकड़े कर गजराज को कष्ट से मुक्त कर दिया। गजेन्द्र तो आर्त भक्त था। श्री भरत से उसकी तुलना कैसे की जा सकती है।आज प्रेमी ने पुकारा—'पाहिनाथ' 'रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए'—तो प्रभु लज्जित हो उठे। अहो ! "योग क्षेमो वहाभ्यहम्" की मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो गई। भक्त को पुकारना पड़ा। उठे पर उसके पश्चात शीघ्रता से दौड़े, यह कल्पना असह्य है। जगन्निवास की अधीरता की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। कवि उठने के पश्चात हृदय से लगाने का उल्लेख करता हुआ मानो हमें बताना चाहता है कि हमने तो उठने के बाद हृदय से लगाते ही देखा—चलते या दौड़ते नहीं। धनुष तोड़ने के अवसर पर भी रघुवंश-शिरोमणि ने बड़ी शीघ्रता की थी। लोगों ने उन्हें खड़े ही देखा—धनुष उठाते चढ़ाते-तोड़ते नहीं। पर कवि ने सभी क्रियाएँ देख लीं।

दमकेउ दामिनि जिमि जव लयऊ, पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ।

हाँ दर्शकों ने तो यही देखा कि वे यथापूर्व खड़े हैं। टूटा धनुष सामने पड़ा है।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े, काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कवि के नेत्रों में महत् शक्ति होती है। पर इस प्रसंग में तो कविकुल-कमल-दिवाकर भक्ताग्रगण्य भी उनको दौड़कर जाते हुए न देख सके।

× × × ×

कैसा मनोहारी दृश्य है—श्याम द्वय के मिलन का। मानों प्रेम और शृङ्गार मूर्तिमान होकर मिल रहे हों। श्याम तमाल-सा वर्ण, कोटि काम कमनीय श्रीअंग, रतनारे अश्रुपूर्ण नयन, आजानुलाम्बिनी करि कर सी भुजाएँ— ऐसे हैं कामाभिराम 'राम'। और भूमि में पड़े हुए भी ठीक वैसे ही हैं। भेद का स्थान वहाँ नहीं। धनुष, वाण, निषंक के त्याग से सर्वथा एकरूपता हो गई है और प्रभु हृदय से लगाकर रहे-सहे अन्तर को भी मिटा देना चाहते हैं। पर वे तो पाद-पद्म को छोड़ना ही नहीं चाहते हैं। राघवेन्द्र का आग्रह अन्त में सफल होता है। आज प्रेमी प्रियतम का शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, सभी एकमेक हो रहा है। इस मिलन का दृश्य देखकर देखनेवाले भी आत्म-विस्मृत हो गए। उस परिस्थिति और प्रेम का वास्तविक चित्रण कर सकना असम्भव है। असीम को सीमा में कैसे आवद्ध किया जा सकता है।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी, कबिकुल अगम करम मन बानी।
परम प्रेम पूरन दोउ भाई, मन बुद्धि चित अहमिति बिसराई॥

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई, केहि छाया कबि मति अनुहराई।
कबिहि अरथ आखर बल साँचा, अनुहर ताल गतिहि नट नाचा॥
अगम सनेहु भरत रघुबर को, जहँ न जाय मति बिधि हरि हर को।
सो मैं कुमति कहों केहि भाँती, बाज सुराग कि गांडरि ताँती।

उपरोक्त चौपाइयों में कवि ने अपनी असमर्थता का ही वर्णन किया है। कवि के महान कर्त्तव्य का उसे ध्यान है। सब 'अपान' खो कर मगन हैं, पर वह अपनी मति को स्थिर रखने की चेष्टा करता है। उसे तो वर्णन करना है। किन्तु असफलता ही हाथ लगती है।

यहाँ तो विस्मृति का साम्राज्य छाया हुआ है। श्री भरत द्वारा हर्ष शोक, दुःख, सुख की विस्मृति, प्रभु द्वारा पट, निषंक, धनु, तीर की विस्मृति और फिर दोनों के मिलने पर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार का विस्मरणा। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के विस्मरण का अभिप्राय इनका सर्वथा अभाव

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नहीं। संकल्प-विकल्प ही तो मन का स्वरूप है। पर उसकी कोई आवश्यकता शेष नहीं, क्योंकि भरत ही तो भक्तवत्सल भगवान के संकल्प-विकल्प के प्रधान पात्र हैं।

रामहिं बन्धु सोच दिन राती।

और श्री भरत का मन सदा प्राणाभिराम की चिन्ता में लगा रहता है। उनके संकल्प-विकल्प के केन्द्र प्रभु ही हैं। दोनों के इस मिलन से मन संकल्पात्मक न रहकर प्रेमाकार हो जाता है। जब द्वन्द्व नहीं, तो बुद्धि का कार्य समाप्त। निर्णय के अभाव में चित्त भी क्या करेगा? और कर्तृत्व ही नहीं, तो अहंकार कैसा? प्रेम-तीर्थ में स्नान कर के मानो तत्काल ही उन सबका रूप परिवर्तन हो गया और वे सब 'प्रेम' हो गए।

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली खोजन मैं गई, हो गई लाल गुलाल॥

भक्ति की मधुमयी राका यामिनी में जब प्रेम रूप पूर्ण चन्द्र का उदय होता है, उस समय भावनाएँ विविध रूप में आनन्द मग्न हो उसके सुशीतल प्रकाश में यत्र-तत्र क्रीड़ा करती डोलती हैं। उनका यथार्थ चित्रण असम्भव होते हुए भी जब मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार रूप भूमि पर उनकी छाया पड़ती है, तब रसिक सूक्ष्मदर्शी मनीषी कुछ शब्दों में उस छाया के ही अंकन का प्रयास करता है। वह प्रेम के नाम पर जो कुछ कहता है वह छाया है—वास्तविकता नहीं, पर हम सबको कृत-कृत्य करने के लिए वही यथेष्ट हैं।

किन्तु जब भावनाएँ अपने विविध रूपों का त्याग कर के चन्द्रिका बन जाएँ। भूमि भी द्रवित होकर रस रूपा बन जाए, तब किसकी छाया कहाँ पड़े? और कवि-वर्णन के लिए किस छाया का आश्रय ग्रहण करे? उस समय की असमर्थता ही हमें उस उन्मादिनी स्थिति का किंचित संकेत करती है। यहाँ कवि भी मानों पाठकों से पूछ बैठते हैं—

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई, केहि छाया कबि मति अनुहरई।

नर्तक ताल की गति पर ही तो नृत्य करता है। उससे ही उसकी कला ज्ञातृत्व का भी पता चलता है। चतुर कवि की लेखिनी मानो उन्माद में निकली हुई वाणी को ही ताल मानकर थिरक उठती है। पर जब प्रेमी सर्वथा मौन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हो जाए, सात्विक भावों का संचार भी रुक जाय, तब कवि किस आधार पर वर्णन करे ?

कबिहिं अरथ आखर बलु साँचा, अनुहर ताल गतिहि नट नाचा ।

छाया और ताल का दृष्टान्त भी सकारण है । वर्णन में दो ही इन्द्रियाँ सहायक होती हैं 'नेत्र' और 'कर्ण'—देखी या सुनी हुई बात के आधार पर ही वर्णन किया जाता है । छाया नेत्र का और ताल कान का विषय है । पर यहाँ तो दोनों का ही अभाव है—शरीर और वाणी निस्पन्द हैं ।

"सुनु शिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई" भी यहाँ नहीं कहा जा सकता—क्योंकि 'अहं' न होने से सुख के अनुभविता का भी सर्वथा अभाव है । 'मूकाऽस्वादनवत्' या 'गूंगे गुड़' का दृष्टान्त भी यहाँ असंगत है । क्योंकि गूंगे को उसके स्वाद का ज्ञान होता है, केवल वर्णन में असमर्थता है । पर यहाँ तो मन का अभाव होने से रसास्वादक भी नहीं रहा । 'निर्विकल्प समाधि' से भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि समस्त विकल्पों का नाश हो जाने पर भी 'अहं' का स्फुरण तो रहता ही है । पर यहाँ तो अहंकार भी विस्मृत हो गया है । निस्पन्दता होते हुए भी जड़ता नहीं है, क्योंकि प्रेम तो रस-रूप है । आप कहेंगे फिर क्या है ? पर इसे बतावे कौन ? जिनका आश्रय लेकर हम कुछ कहते हैं, वे महाकवि असमर्थ हो रहे हैं । इस असमर्थता में वे अकेले नहीं । जो विश्व के रचयिता हैं, पालनकर्ता और संहारक हैं, सभी इस श्रेणी में आते हैं ।

अगम सनेह भरत रघुबर को,
जहँ न जाइ मति बिधि हरि हर को ।

भगवान शंकर से ही तो याचना कर के सुमति प्राप्त की थी हमारे कवि कुल चूड़ामणि ने—

सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम चरित मानस कबि तुलसी ।

पर आज तो भूत भावन भगवान शिव की मति भी असमर्थ हो रही है इस प्रेम पयोधि के निकट जाने में । पार करना तो दूर रहा । तब 'सुमति हिय

८

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तुलसी' की स्वीकारोक्ति करनेवाले गोस्वामीजी अपने को कुमति स्वीकार करते हैं—

सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती, बाज सुराग कि गाँडर ताँती।

इस प्रकार कवि ने तीन प्रकार से इस सनेह कथा के वर्णन में अपनी असमर्थता प्रगट की। छाया को देखकर भाव चित्रित करना चाहता है, पर छाया का अभाव है। शब्द सुनकर नर्तन करना चाहता है, पर निस्तब्धता है। सोचता है, अच्छा न सही स्वतन्त्र कृति-ब्रह्मा, विष्णु शिव निर्मित राग (अभिप्राय यह है कि मेरी समझ में न आवे पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि जैसा कहें वैसा ही लिख दूँ) ही बजा दूँ। किन्तु जब श्रेष्ठ ताँत से बने सुस्वर वाद्य वाले भी इस मौन संगीत को नहीं गा पा रहे हैं, तो भला मैं गाँडर ताँत को लेकर बेसुरा बजाने की चेष्टा करूँ तो यह कैसे शोभा देगा? अतः मौन ही श्रेयस्कर है। मानस भर में महाकवि की यह असमर्थता अपने प्रकार की अनूठी है। अन्य सभी स्थलों पर भाषा शक्ति की त्रुटि ही कवि के मौन का कारण है। वह देखता, समझता है पर उपमाओं का अभाव उसे असमर्थ कर देता है।

सीय बरनि तेई उपमा देई, कुकबि कहाय अजस को लेई।

अन्य कई स्थलों पर सुखानुभव करनेवाले के द्वारा वर्णन में असमर्थता दिखाकर कवि अपनी असमर्थता का ज्ञापन करता है। जैसे—

रामहिं चितव भाव जेहि सीया, सो सनेह सुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कह सक सोऊ, कौन प्रकार कहै कबि कोऊ।

पर यह मिलन तो अन्य सबकी अपेक्षा विलक्षण है, क्योंकि भाषा की शक्ति का प्रश्न ही उठाना व्यर्थ है, जब तक कोई स्वरूप न ज्ञात हो। और न तो "श्री भरत और राम अनुभव कर रहे हैं, पर वे बता नहीं सकते"—यही कहा जा सकता है। क्योंकि किसी पदार्थ का अनुभव मन द्वारा ही होता है, पर यहाँ तो दोनों भाई मन की कौन कहे बुद्धि, चित्त, अहंकार को भी विस्मृत कर चुके हैं। यही कारण है कि यहाँ अश्रुपात, रोमांच, कण्ठरुद्धता, आदि किसी भी बाह्य लक्षण का उल्लेख महाकवि नहीं करते। मनःस्थिति बिना यह सब होने का नहीं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्यों की बात ही क्या श्री भरत जी व प्रभु का लंका से लौटने पर जो मिलन हुआ उसमें और इसमें कितना अन्तर है। दोनों का मिलान करिये—

चित्रकूट	अयोध्या
१. अश्रु रोमांच का अभाव	श्यामल गात रोम भए ठाढ़े नव राजीव नयन जल बाढ़े
२. मन बुधि चित अहमिति बिसराई	सुन शिवा सो सुख बचन मनते भिन्न जान जो पावई
३. कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूँछा	बूझत कृपानिधि कुशल भरतहिं

इस अन्तर का क्या कारण है ?

मुझे तो लगता है कि चित्रकूट के मिलन को मिलन न कहकर एकत्व कहना अधिक उपयुक्त होगा। यहाँ समग्र भेदों और दूरी का विस्मरण कर दोनों एकमेक हो जाते हैं। अयोध्या का मिलन मिलन है। अत्यधिक सामीप्य होने पर भी वहाँ भेद है और उसका कारण स्पष्ट है। यहाँ का सारा वातावरण रसमय है—निषाद राज, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और श्री किशोरीजी की उपस्थिति में रसिक शेखर को एकान्त ही प्रतीत हो रहा है। उनसे संकोच का कोई कारण नहीं। मिलन एकान्त में ही हो पाता है। पर अयोध्या का वातावरण एकान्त न था। वहाँ गुरुजन और समस्त पुरवासी मिलने के लिए आए हुए थे। वहाँ राघवेन्द्र ने प्रेम की अपेक्षा धर्म की मर्यादा का पालन उचित समझा। इसीलिए श्री भरत से पहले वे गुरुजनों से मिलते हैं। वहाँ कविकुल चूड़ामणि प्रभु के नाम के साथ विशेषण भी बड़ा सुन्दर देते हैं।

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा, धरम धुरन्धर रघुकुल नाथा।

'धर्म धुरन्धर' में ही सारा रहस्य निहित है। वातावरण की इस पृष्ठ भूमि पर भरत से प्रभु का मिलन होता है। गुरुजनों और पुरवासियों की उपस्थिति में संकोच होना स्वाभाविक था।

रसमय वातावरण और एकान्त में ही पूर्ण मिलन हो सकता है। मुझे स्मरण आता है जब प्रभास क्षेत्र में द्वारिका से पधारे हुए आनन्दकन्द भगवान श्री कृष्णचन्द्र का शुभागमन हुआ और श्री ब्रज धाम से ब्रज-जन-सीमन्तिनी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नित्य-निकुन्जेश्वरी प्राणेश्वरी श्री वृषभानु नन्दिनी श्री राधारानी पधारीं। दोनों का मिलन हुआ। लौटने पर किसी अनुरागमयी गोपी ने पूछ ही तो दी प्रिय-मिलन की बात--उत्तर मिला--"अरी सखी ! वही प्राणाधिक रसिकवर नन्द नन्दन थे और मैं भी वही राधा और हम दोनों सोल्लास मिले भी, किन्तु हा सखि ! मेरा मन रसमय-कालिन्दी पुलिन की ओर जाता है, कभी उस निविड़ अरण्य के कदम्ब तले तो कभी किसी बिभृत निकुन्ज में प्राण प्यारे के साथ मिलन के अनेक-अनेक मादक क्षण हमारी स्मृतियों में भूल रहे थे। वह रस यहाँ कहाँ ?" सम्भवत: इसीलिए किसी रसिक ने कह दिया--

रे मन बृन्दा विपिन निहारु।
बिपिन राज सीमा के बाहर हरि हूँ को न निहारु ।।

चित्रकूट और अवध के वातावरण के अन्तर से ही दोनों के मिलन और तन्मयता में किञ्चित अन्तर पड़ गया।

अहा ! वह वातावरण--जहाँ एक ओर कल-कल निनादिनी पयस्विनी मन्थर गति से वह रही है। पाकरि-जम्बु-रसाल-तमाल बट की पंचवटी, और लता जाल से अच्छादित प्राकृतिक मण्डप सुशोभित है। कुन्द पारिजत, पाटल तुलसी की मधुर सुगन्ध से सुरभित वायु बह रही है। चारों दिशाओं में चार प्रेममय रसिकाचार्य रसवर्षण कर रहे हैं। एक ओर हैं रसिकशेखेन्द्र-मोहिनी श्री जनक नन्दिनी सीता, दूसरी ओर रामानुराग सर्वस्व श्री लक्ष्मण, तीसरी दिशा में सहज सनेही राम-सखा निषाद और चौथी ओर भरत पाद-पद्म-मधुकर श्री शत्रुघ्न। इस प्रकार चार रसिकों से परिवेष्टित मानो सर्वथा अप्राकृत कुँज का निर्माण हो गया हो। उसमें प्राणाभिराम राम और श्री भरत का मिलन होता है। प्रेमी प्रियतम का भेद मिट चुका है, सर्वथा एकाकार हो चुके हैं। पहचानना ही असम्भव ह कौन राम हैं ? कौन भरत ?

कान्ह भए प्राणमय, प्राण भए कान्हमय।
समुझि न परत कि कान्ह हैं कि प्राण हैं ।।

किन्तु अभागे देवत इस दृश्य को देखकर रस विभोर न हो सके। स्वार्थ ने उनके हृदय में रस को प्रविष्ट ही न होने दिया। उनका हृदय काँप रहा है "ओह ! जिससे मिलकर प्रभु इतने विह्वल हो गए ह, उसकी बात कैसे टालेंगे ?' तब क्या होगा देव-कार्य का ? हम लोग इसी प्रकार रावण की सेवा करते रहेंगे।'

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किन्तु देव गुरु सद्गुरु थे। उन्होंने देवताओं को सान्त्वना दी, "धैर्य धारण करो प्रभु का विधान मंगलमय है। अपने कर्तव्य का पालन करो।" गुरु पद विश्वासाधिक्य से वे चैतन्य हो गए और पुष्प-वृष्टि करके प्रेम की प्रशंसा करने लगे।

समुझाए सुर गुरु जड़ जागे, बरसि प्रसून प्रशन्सन लागे।

स्वर्ग से पुष्प स्वार्थी देवताओं के हाथों से बरसाए गए व उनके द्वारा स्तुति की गई, उसका प्रभाव भी तत्क्षण हुआ। अरसिक की उपस्थिति और शब्द भी रस में बाधक बन जाते हैं। प्रभु पुनः लीला भूमि में जागृत हुए। व्यावहारिक दृष्टि से यह आवश्यक भी था और तब उन्होंने स्नेहालिंगन में शत्रुघ्न को बाँध लिया, निषाद राज से भी मिले।

मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।

दूसरी ओर दो प्रेमाचार्यों का दिव्य मिलन हो रहा है। राघवेन्द्र-कीर्ति-विस्तारक, प्रभु-पद-मकरन्द मधुप लक्ष्मण श्रद्धावनत हो भैया भरत को प्रणाम करते हैं। आज की घटना से भाई भरत पर उनकी श्रद्धा सहस्र गुणा बढ़ गई है, और इधर श्री भरत के हृदय में लक्ष्मण के लिए अपार श्रद्धा और वात्सल्य है। लक्ष्मण प्रणाम करते हैं, पर भरत उन्हें आशीर्वाद न देकर हृदय से लगा लेते हैं। परस्पर नवनि का अद्भुत दृश्य है।

भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रणाम।

लक्ष्मणजी शत्रुघ्न और निषाद का भी बड़े उत्साह से आलिंगन करते हैं। श्री भरत शत्रुघ्न समस्त मुनि मण्डली को प्रणाम करते हैं। स्नेहाशिष मिला "रति होउ अविचल राम पद।" ऐसा पात्र पाकर महर्षि भी धन्य हो गए और आशीर्वाद से भ्रातद्वय को जो आनन्द हुआ, वह तो अनिर्वचनीय है।

स्नेहपूरित हृदय से सोत्साह श्री भरत-शत्रुघ्न करुणामयी अम्बा के पद-कमल-पराग को मस्तक से लगाते हैं। माँ के हर्ष का क्या ठिकाना ? भरत जैसा सुयोग्य पुत्र पाकर कौन माँ प्रसन्न न होगी। पर स्नेह और प्रसन्नता के साथ श्री भरत के हृदय में भय भी है। वे सोचते हैं, अम्बा भले ही अपने लिए रुष्ट न हों, पर प्रभु को जो मेरे कारण कष्ट उठाना पड़ रहा है, उसे वे कैसे क्षमा कर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सकती हैं ? तब वे स्नेहाधिक्य के साथ-साथ क्षमायाचना के भाव से वार-वार प्रणाम करते हैं—

सानुज भरत उमगि अनुरागा, धरि सिर सिय पद पदुमपरागा ।
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाए, सिय कर कमल परसि बैठाए ।

माँ के मौन से क्षण भर के लिए भरत का भय और भी वढ़ गया । यद्यपि मौन का कारण कुछ दूसरा है । श्री भरत के प्रेम के कारण वे इतनी भाव विभोर हैं कि शरीर की विस्मृति हो गई । वार-बार चरण-प्रणाम से उनकी भाव समाधि भंग हुई, तब उन्होंने बड़े स्नेह से भरत को चरणों पर से उठाया, अपना वरद-हस्त उनके मस्तक पर रक्खा, और समीप ही बैठा लिया । फिर भी प्रेमाधिक्य के कारण कण्ठ रुद्ध है, आशीर्वाद देना चाहती हैं, पर शब्दोच्चारण नहीं हो पा रहा है । मन-ही-मन अपने लाड़िले भरत को आशीष देती है और श्री भरत तो आज निश्चिन्त हो गए माँ की इस अहैतुक कृपा को देखकर । एक अखण्ड मौन का ही साम्राज्य छाया हुआ है । सभी मौन हैं, पर यह व्यथा का नहीं प्रेमाधिक्य का मौन है । स्नेह समुद्र में आकण्ठ निमग्न होने पर वाणी कैसे निकले ? उस रसमयी परिस्थिति का चित्रण गोस्वामीजी की लेखिनी से देखिए —

सीय असीस दीन्ह मन माँही, मगस मनेह देह सुधि नाहीं ।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता, भे निशोच उर अपडर बीता ।
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूँछा, प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ।

श्री किशोरीजी द्वारा यह सौभाग्य श्री भरत को छोड़कर अन्य किसी को नहीं मिला है । यह 'कर-स्पर्श' श्री भरत की निर्मलता का सब से बड़ा प्रमाण पत्र है ।

यह विस्मृति कितनी गहरी है इसका पता इसी से चलता है कि श्री राघवेन्द्र को चतुरंगिणी सेना सहित भरत आगमन का समाचार पहले ही प्राप्त हो चुका है । पर उन्होंने इस विषय पर कोई प्रश्न नहीं किया, मानो भरत को प्राप्त कर कुछ पाना शेष न रहा । इस विस्मृति को भंग किया राम-सखा ने । उनका कर्त्तव्य भी तो यही था । वे तो केवट और सखा दोनों ही हैं । प्रेम पयोधि में डूबे हुए को निकालना उनका ही कार्य है । मर्यादा-पुरुषोत्तम की मर्यादा-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रक्षण की चिन्ता भी सखा को हो यह स्वाभाविक है। अतः उन्होंने प्रणामपूर्वक स्तुति कर के सूचना दी——

नाथ साथ मुनि नाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, जाए बिकल बियोग।

शील-सिन्धु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राघवेन्द्र गुरु आगमन की बात सुनते ही जागृत हो जाते हैं। और श्री किशोरीजी के निकट शत्रुघ्न को छोड़कर गुरुदेव का स्वागत करने चल पड़ते हैं।

सब का सुस्वागत कर प्रभु यथास्थान लोगों के निवास की व्यवस्था करते हैं। गुरुदेव से पिता जी के स्वर्ग गमन का समाचार सुनकर बड़े ही व्यथित चित्त से समग्र शुद्धिकृत्य सम्पादन करते हैं। पुरवासियों के दिन बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक बीतने लगे। पुन्य-सलिला-पयस्विनी का स्नान, सात्त्विक आहार, प्राणप्रिय राम का दर्शन——इतना पाकर उनके मन से अवध की सर्वथा विस्मृति ही हो गई—

सो॰ बिरहहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम।
पुरजन नारि मगन अति प्रीती, बासर जाँहि पलक सम बीती।

किन्तु श्री भरत पुरवासियों की प्रसन्नता में भाग नहीं ले पाते हैं। अन्य जन धन को प्राप्त कर आनन्दोपभोग में मस्त हैं, पर भरत का हृदय चिन्तातुर हो रहा है। न भूख लगती है और न रात्रि को निद्रा ही आती है।

दो॰ निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मलिन जस, मीनहिं सलिल सँकोच ।।

जल की पंकिलता और अल्पता से मीन को जैसी व्यथा होती है, वैसी ही स्थिति भरत की भी है। यह उपमा बड़ी सार्थक है। यों तो जल में कमठ, दादुर आदि का भी निवास है और जल के प्रति आकर्षण भी, किन्तु सच्चा अनुराग एकमात्र मीन का ही है।

मीन, कमठ, दादूर, उरग जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को, है साँचिलो सनेह ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जल क्रमशः सूख रहा है। पर कमठ, दादुर को उसकी इतनी चिन्ता नहीं, वे क्रीड़ा में निमग्न हैं। रहा-सहा जल भी पंकिल होता जा रहा है। मीन उसे देखती है, उसकी आँखों में पानी भर आता है। बेचारी मीन सोचती है, जल का सूखना कैसे बन्द हो ? यह स्वच्छ कैसे हो ? क्योंकि अन्य लोग जल के उपभोक्ता हैं, पर मीन प्रेमी है। जल उसका जीवन है। जल उसका त्याग कर दे, पर वह उसे नहीं छोड़ती। जब तक जल में रहती है, उसको स्वच्छ करती है। वियोग में अपने प्राण छोड़ देती है। धीवर उसे जल से अलग कर देता है पर मृत्यु में उसे सन्तोष है, क्योंकि वह प्रेम के लिए मरी है। किन्तु यहाँ तो स्थिति ही दूसरी है। जल को उससे पृथक् किया जा रहा है। जल सूख रहा है। एक सच्चे प्रेमी की भाँति आज प्रेम में जल ने ही बाजी मार ली। मीन के देखते-देखते वह सूख रहा है—पंकिल हो रहा है और वह उसके लिए कुछ नहीं कर पा रही है। प्रेमी मीन की इस असमर्थता की कल्पना कीजिए और तब श्री भरत की ओर देखिए। प्रभु का मिलन ही जल है। पुरवासी आनन्दमग्न हैं। उनका अनुराग न हो ऐसी बात नहीं। पर वे भीषण भविष्य की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। वियोग की घड़ी निकट आ रही है। अब तक तो कर्त्तव्य-बन्धन में श्री भरत बलपूर्वक राघवेन्द्र से अलग किए गए थे। पर स्थिति परिवर्तित हो चुकी है। वे स्वयं ही इस 'मिलन-जल' को सदा के लिए स्थिर बनाने के लिए आये थे—राज्याभिषेक का साज सम्भार लेकर वे प्रभु का राज्याभिषेक करने आये थे, पर कोई उपाय नहीं सूझता है, और तब वे सोचते हैं "क्या यह मिलन-बेला समाप्त होकर रहेगी ? हम कुछ न कर पावेंगे—धर्म-रवि की किरणें सुखा देंगी इस नीर को ? कहाँ तो आए थे प्रभु को सुखी बनाने और कहाँ स्वयं दर्शन का सुख लेकर लौटना पड़ेगा।" वे सोचते हैं यदि हम प्रभु को राज्याभिषिक्त न कर सके, वन के कष्टों को न मिटा सके, तो यहाँ आकर राघवेन्द्र के लिए संकोच और कष्ट के कारण ही तो बने। जल को और भी पंकिल बना दिया।

× × × ×

नीरव निस्तब्ध निशा में जब चित्रकूट का सम्पूर्ण तपोवन शान्त है—सब लोग निद्रा-निमग्न हैं, तब जाग रहे हैं केवल दो महापुरुष ! एक हैं वीर-व्रती-लक्ष्मण, वे कौशलेन्द्र की वर्त्तमान चिन्ता में निमग्न धनुष बाण लेकर रक्षा कर रहे हैं। दूसरे हैं परमानुरागी श्री भरत, वे प्राणाभिराम के भविष्य चिन्तन में तल्लीन हैं। दोनों ही प्रेमी 'तत्सुख-सुखित्त्व' के आदर्श का निर्वाह कर रहे हैं। श्री भरत की चिन्ताधारा अत्यधिक तीव्र है। उसमें जटिलता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

केहि बिधि होय राम अभिषेकू, मोहि अवकलत उपाय न एकू।

'राघवेन्द्र भैया को राज्याभिषिक्त करने का क्या उपाय है ?' मन ने कहा—गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन, प्रभु नहीं कर सकते। यदि महर्षि आज्ञा दे दें तो, सुगमता से समस्या हल हो सकती है, पर वे क्या ऐसा करेंगे ? बुद्धि ने उत्तर दिया—'कदापि नहीं, उनका रघुवीर के प्रति वात्सल्य ही नहीं, आदरभाव भी है। वे राम की इच्छा के विरुद्ध एक भी शब्द न कहेंगे। उधर से निराशा हुई तो मन ने माँ की ओर संकेत किया—कौशल्या अम्बा की ओर। 'क्या हुआ यदि पिता की आज्ञा-पालन करने के लिए प्रभु वन में आए हैं—माँ का स्थान पिता की अपेक्षा अत्यधिक उच्च है। यदि वे लौटने की आज्ञा दे दें, तो धर्म के नाते भी श्री राघवेन्द्र उसे अस्वीकृत न कर सकेंगे। अवश्य लौट चलेंगे।' बुद्धि ने कहा—'पर वे राम जननी हैं। यदि श्री राम धर्म समझ कर वन-वन भटक सकते हैं, तो वे भी पति-प्राणा हैं। वे धर्म का उल्लंघन क्यों करने लगीं ? फिर क्या मैं नहीं जानता कि अपने लाल के वियोग में उन्हें कितना कष्ट हुआ होगा। यदि उन्हें रोकना होता तो वन आते समय ही रोक देतीं ? उन्होंने आज्ञा दे दीं "पितु आयसु सब धर्म को टीका" कह कर। अतः उधर से भी निराशा ही मिलेगी।"

मन ने बड़े ही क्षीण कण्ठ स्वर से जिसमें निराशा का ही आधिक्य था सकुचाते हुए कहा—"मेरे कहने से ......।" पर मानो इतना कहते-कहते स्वयं ही लजा गए। स्वयं ही उन्हें अपनी बात भ्रामक लगी। बुद्धि ने फटकारा—"तुम्हारा इतना साहस ? प्रभु स्नेह से मिले—क्या इसी से तुम फूल गए ! वह तो उनकी अहैतुकी कृपा का स्वरूप है। "कौशल पाल कृपालु दयानिधि द्रवत सकुचि सिर नाए"। फिर क्षण भर के लिए मान लो तुम्हारे आग्रह से प्रभु लौट भी जाएँ, तो क्या तुम्हारा यह हठ उचित है ? इससे बड़ा कुकर्म और क्या होगा ? सेवक स्वामी को आज्ञा दे—इससे बड़ी लज्जा की बात और क्या होगी ? सेवा धर्म कैलाश पर्वत की अपेक्षा भी गुरुतर है—उसे इस प्रकार हलका बना देना क्या सेवक का कर्तव्य है ?"

इस प्रकार उस गहन अंधकार में निराशा की अँधियारी ने उन्हें और भी निराश बना दिया। प्रातः काल हो गया, पर समस्या दुरन्त ही बनी रही।

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी, मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ, राम जननि हठकरब कि काऊ।
मोहि अनुचर कर केतिक बाता, तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता।
जौ हठ करउँ तो निपट कुकरमू, हर गिरि ते गुरु सेवक धरमू।
एकहु जुगुति न मन ठहरानी, सोचत भरतहिं रैन बिहानी।

श्री भरत जी की उपरोक्त विचारधारा उनके दैन्य और जागरूकता व दूरदर्शिता का एक सजग उदाहरण है।

× × × ×

नित्य कृत्य से निवृत्त होकर भरत ज्योंही प्रभु पद वन्दन करते हैं कि श्री गुरुदेव का आमन्त्रण प्राप्त होता है। वहाँ जाकर देखते हैं कि समस्त सभासद एकत्र हो रहे हैं। सबके एकत्र हो जाने पर महर्षि अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं। भाषण से पहले एक बार हमें महर्षि के मन की पृष्ठभूमि समझ लेना आवश्यक है। श्री वशिष्ठजी बहुत बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं—त्रिकालज्ञ और रामावतार का रहस्य जाननेवाले हैं। राम-वन-गमन उनके लिए कोई अप्रत्याशित घटना न थी। यह तो उनकी सुनिश्चित धारणा थी कि प्रभु को वन जाना है और जाना चाहिए, क्योंकि रावण-वध बिना धर्म-रक्षण असम्भव है। नाट्य की सफलता की दृष्टि से उन्होंने इसका स्पष्टी करण नहीं किया, पर श्री दशरथ द्वारा मुहूर्त पूछे जाने पर वे भावपूर्ण ढंग से उसे टाल जाते हैं। सिद्धान्ततः सत्य होते हुए भी उनका यह कहना कि "सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुवराज"। वास्तव में उनके मुहूर्त न बताने की इच्छा का सूचक है। क्योंकि लीला में जब सभी संस्कारों के लिए मुहूर्त देखे गए हैं, तो फिर इस समय भावुकता का क्या अर्थ? राघवेन्द्र के यहाँ उपदेश देते समय भी उन्होंने एक गुप्त संकेत उनसे कर दिया था कि यदि विधाता कुशलतापूर्वक कार्य निर्वाह कर दे तो—

राम करहु सब संयम आजू, जो बिधि कुसल निबाहे काजू।

अन्त में जो होना था सो हुआ। परन्तु श्री भरत के आने पर स्थिति में एक पेचीदगी पैदा हो गई। गुरुदेव ने वहाँ पर भी श्री भरत को राज्याभिषिक्त कर के समस्या को सुलझाना चाहा, पर समस्त तर्क-शक्ति, धर्म शास्त्र की दुहाई देकर भी प्रेम-पयोधि को न रोक सके। श्री भरत के तर्कों के समक्ष महर्षि की बातें दुर्बल प्रतीत होने लगीं। गुरुदेव की बातों का समर्थन लोगों ने असमर्थता और सुलझाहट के लिए केवल वाणी से किया था। किन्तु श्री

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भरत का निर्णय इतना हृदयग्राही था कि लोग थिरक उठे। यह निर्णय लोगों के 'राम वियोग बिषम विष' के लिए 'सबीज मन्त्र' था। महर्षि को भी समर्थन करना पड़ा। किन्तु अब भी उनकी बुद्धि राम को लौटाने के पक्ष में न थी। उन्हें सबसे अधिक चिन्ता धर्म रक्षा की थी। इस पृष्ठभूमि को हृदयगंम कर लेने पर श्री वशिष्ठ जी का दृष्टिकोण समझने में सुगमता होगी। अस्तु उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।

बोले मुनिवर समय समाना, सुनहु सभासद भरत सुजाना।
धरम धुरीन भानुकुल भानू, राजा राम स्वबस भगवानू।
सत्य सन्ध पातक श्रुति सेतू, राम जनम जग मंगल हेतू।
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी, खल दलु दलन देव हितकारी।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ, कोउ न राम सम जान जथारथ।
बिधि हरिहर ससि रबि दिशिपाला, माया जीव करम कुलि काला।
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई, जोग सिद्धि दिगमागम गाई।
करि बिचार जिय देखहु नीके, राम रजाई सीस सबही के।

दो० राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिल सम्मत सोइ॥

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू, मंगल मोल मूल मग एकू।
केहि बिधि अवध चलिहिं रघुराऊ, कहहु समुझि सोई करिय उपाऊ।

ध्यान से पढ़ने पर भाषण का विरोधाभास स्पष्ट हो जाता है। एक ओर तो गुरुदेव कहते है कि राम पितृ-आज्ञा-पालक हैं, सत्य-सन्ध हैं, उनकी आज्ञापालन में ही हम सबका हित है। तो दूसरी ओर उनका यह कथन कि राम-राज्याभिषेक ही मंगलमय है, किस उपाय से वे लौटेंगे? इस पर विचार कीजिए? दोनों का विरोध स्पष्ट है। भाषण से यह भी स्पष्ट है कि वास्तव में वे रामाज्ञा (जिसका अर्थ है वन-गमन की स्वीकृति) के पक्ष में है। किन्तु चतुर वक्ता की भाँति अन्तिम वाक्य उपस्थित सभासदों तथा श्री भरत को सन्तुष्ट करने के लिए जोड़ दिया है। उनकी यह भावना प्रत्येक शब्द से स्पष्ट हो रही है। सारा भाषण राम के ऐश्वर्य और मर्यादा-पालन की प्रशंसा में है। एक शब्द भी राघव की भक्त-वत्सलता का ज्ञापन नहीं करता। इस

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भाषण में एक विलक्षण क्रम है। महर्षि क्रमशः राम का ऐश्वर्य स्पष्ट करते-करते अन्त में पूर्ण स्वरूप व्यक्त कर देते हैं। उनका प्रथम वाक्य है रविवंश-शिरोमणि धर्म-धुरीण समग्र ऐश्वर्यों से युक्त राजा राम स्वतन्त्र हैं। पर जैसे उन्हें लगता है कि 'स्वतन्त्र' कहकर मैंने एक भूल कर दी, तब तो वे लौट भी सकते हैं। यद्यपि भगवान राम के ऐश्वर्य का प्रतिपादन करने का उनका एकमात्र अभिप्राय इस धारणा का खण्डन करना है कि उन्हें बन में कोई कष्ट है, या कैकयी की कु-चेष्टा से उन्हें बन आना पड़ा। किन्तु 'स्ववस' शब्द दोनों पक्षों की धारणा का समर्थन कर सकता है। अतः महर्षि ने दूसरे वाक्य में उनकी सत्य-सन्धता और श्रुति-आज्ञानुसारिता का उल्लेख कर दिया। अभिप्राय यह है कि यद्यपि वे स्वतन्त्र हैं, पर स्वयं अपने बनाए हुए नियमों को भंग नहीं कर सकते हैं। एक बार निर्णय कर लेने पर सत्य-सन्ध राम उसे परिवर्तित नहीं करते। उनका जन्म विश्वमंगल के लिए हुआ है। थोड़ा भी भ्रम न रहने देने के लिए उपरोक्त सत्य-सन्धता श्रुति-सेतु-पालकता और जग-मंगल तीनों का अर्थ स्पष्ट कर देते हैं।

गुरु पितु मातु बचन अनुसारी, खल दल दलन देव हितकारी।

गुरुजनों की आज्ञापालन ही 'श्रुति-सेतु-रक्षण' है। निर्णय से न हटना' 'सत्य-सन्धता' है। और राक्षस-बध 'जग-मंगल' हेतु है। 'हम लोग उचित निर्णय नहीं कर सकते'—इस बात को मनवाने के लिए भगवान की सर्वज्ञता की प्रशंसा करते हैं। पुनः यह कहकर कि हमी नहीं समग्र विश्व ही उनकी इच्छा से संचालित हो रहा है, इसलिए हमें भी उनकी इच्छा का पालन करना चाहिए, अपने भाषण का वास्तविक मत व्यक्त कर देते हैं। पर चतुर वक्ता के नाते उन्होंने यह अच्छी तरह देख लिया कि हमारे ऐश्वर्य कथन का प्रभाव श्री भरत और पुरवासियों पर नहीं पड़ा। माधुर्य-रस में सराबोर रसिकों को यह प्रभावित कर भी नहीं पाता। तब वे संक्षेप में भरत-मत का भी समर्थन कर देते हैं। एक बात बड़ी ही महत्वपूर्ण है कि अपने मत के विषय में वे स्पष्ट निर्णय दे देते हैं कि "राखे राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ" पर लौटाने के विषय में वे दूसरों से उपाय पूछते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि ने बड़ी बुद्धिमत्ता से अपना मत व्यक्त किया। अयोध्या की राज-सभा से उन्होंने शिक्षाग्रहण की थी। अतः वहाँ जैसे मध्यम तर्क उन्होंने यहाँ उपस्थित नहीं किए। क्योंकि उन तर्कों का उत्तर श्री भरत ने बड़ी ही चतुराई से दे दिया था। वास्तव में महर्षि के चित्रकूट वाले तर्क अकाट्य हैं। उनके खण्डन का अभिप्राय है राम के ऐश्वर्य की अस्वीकृति। इस

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकार यहाँ महर्षि का पक्ष पूर्ण सबल है, किन्तु भरत तो भरत ही हैं। यहाँ उनकी दूरदर्शिता और विवेक शक्ति देखने योग्य है —

उन्होंने महर्षि के तर्कों को स्पर्श भी नहीं किया। तर्क का उत्तर तर्क से न देकर उन्होंने अमोघ प्रेमास्त्र का प्रयोग किया। परिस्थिति विकट थी। क्योंकि वशिष्ठजी के भाषण से लोग अवाक् हो गए थे। तब हम देखते हैं— करबद्ध महाव्रती को—

उतरु न आव लोग भए भोरे, तब सिर नाइ भरत कर जोरे।

श्री भरत के भाषण का अर्थ विरोधी मतवाले को ही मध्यस्थ के पद पर प्रतिष्ठित कर देने का है। इसका प्रभाव इसे छोड़ हो ही क्या सकता था कि महर्षि भरत के सरल विश्वास के समक्ष लज्जित हो जाएँ। वे अपने पक्ष के समर्थक-रूप में स्वतन्त्र थे, पर निर्णायक रूप में वे सर्वथा पराजित हो गये। श्री वशिष्ठजी ने भरत-मत का विरोध किया था और प्रेमी भरत ने इसके बदले में उनकी स्तुति और निर्णय की समस्त जिम्मेदारी अर्पित कर दी। श्री भरत के शब्दों की मधुरता देखिए—

भानुवंश भए भूप घनेरे, अधिक एक ते एक बडेरे।
जबत हेतु सब कहँ पितु माता, करम शुभाशुभ देइ बिधाता।
दलिदुख सजइ सकल कल्याना, असि असीस राउर जग जाना।
सो गोसाई बिधि गति जेहि छेंकी, सकइ को टारि टेक जो टेकी।

दो० पूछिय मोहि उपायु अब सो सब मोर अभाग।

श्री भरत ने महर्षि के तर्क पर तर्क का प्रहार नहीं किया। उन्होंने तो अपनी मधुरता और प्रेम से वशिष्ठजी के हृदय में सुप्त स्नेहसरिता को जागृत कर दिया और तब श्री भरत को कुछ न करना पड़ा। महर्षि के हृदय ने ही अपने तर्कों को स्नेहसरिता में डुबा दिया।

सुनि सनेह मय बचन गुरु, उर उपजा अनुराग।

अनुराग ने पिछले समस्त तर्कों को विस्मृत कर दिया। सत्य-संधता, श्रुति-सेतु-पालकता, को भुलाकर राम को लौटाने का उपाय सोचने लगे। कहाँ श्री वशिष्ठ को आशा थी विवाद की। अपने तर्कों की अकाट्यता का विश्वास

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ही उनका वल था। पर उनका सारा तास-महल भरत की एक ही ऊर्ध्व श्वास से गिर पड़ा। शीघ्रता में कोई निर्णय करना कठिन हो गया। श्री भरत की दुःख भरी वाणी ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे राघवेन्द्र को शीघ्र-से-शीघ्र लौटाने का उपाय सोचने लगे और तब उन्होंने एक विचित्र निर्णय किया—

सकुचऊँ तात कहत एक बाता, अरघ तजहिं बुध सर बस जाता ।
तुम कानन गवनहुँ दो भाई, बहुरहिं लषण सीय रघुराई ।

समस्या का यह हल व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसके लिए भरतजी की स्वीकृति के साथ श्री कौशलेन्द्र की स्वीकृति भी अपेक्षित थी। श्री राम द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत होने की आशा स्वप्न में भी नहीं की जा सकती। "भरत शत्रुघ्न वन जाएँ और मैं राज्य करूँ"। ऐसी बात प्रभु कैसे स्वीकार कर सकते हैं। फिर विवेकी महर्षि ने ऐसा क्यों कहा? क्या परीक्षा के लिए? मुझे यह विश्वास है कि श्री भरत स्वभाव से थोड़ा भी परिचित व्यक्ति यह नहीं सोच सकता कि वे इस प्रस्ताव से घवड़ा जाएँगे। उनका त्याग-वैराग्य इतना महान और स्पष्ट है कि उनके सम्बन्ध में साधारण व्यक्ति भी यह धारणा नहीं बना सकता, फिर वशिष्ठजी की तो बात ही दूसरी है। तब इस प्रस्ताव को हम एक स्वाभाविक घटना के रूप में ले सकते हैं। महर्षि इस प्रकार का उत्तर पाने को प्रस्तुत न थे। शीघ्रता में कोई सफल उपाय नहीं सूझ पा रहा है। साथ ही उन्हें राम के लौटने का पूर्ण विश्वास भी नहीं है, अतः वे जान-बूझ कर ऐसा प्रस्ताव रखते हैं जो उलझनदार हो। उन्होंने सोचा होगा, ऐसा प्रस्ताव करने पर मैं इस दोष से मुक्त हो जाऊँगा कि महर्षि राम को लौटाने के पक्ष में नहीं हैं। साथ ही उन्हें यह भी विश्वास है कि भरत के प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर भी प्रभु इसे स्वीकार नहीं करेंगे। अतः इस प्रस्ताव का केवल एक ही अर्थ है कि महर्षि की ओर से अपनी सफाई।

किन्तु प्रेम-मूर्ति श्री भरत और शत्रुघ्न तो इस कल्पना से ही हर्ष-विभोर हो गए कि कोई ऐसा उपाय निकल आया, जिससे राघवेन्द्र वन से लौट सकते हैं। पर उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि हम लोगों के बन जाने मात्र जैसी छोटी घटना के बदले में इतना महान कार्य हो सकता है। और उस समय उनकी मुख छवि दर्शनीय हो गई। वे पुलकित तन से यह प्रस्ताव करते हैं कि—"चौदह वर्ष ही नहीं, जीवन भर हम दोनों वन में निवास करें। इससे बढ़कर हमारे लिए सौभाग्य की कोई बात न होगी। महात्मन्! श्री सीता-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राम अन्तर्यामी हैं और आप भी सर्वज्ञ हैं। यदि आप सत्य कह रहे हैं, तो शीघ्रातिशीघ्र ऐसी व्यवस्था कीजिए।"

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता, भे प्रमोद परिपूरन गाता।
मन प्रसन्न तन तेज बिराजा, जनु जिय राउ राम भए राजा।
कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हें, फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हें।
कानन करउँ जनम भरि बासू, एहि ते अधिकन मोर सुपासू।

दो० अन्तरयामी राम सिय, तुय सर्वज्ञ सुजान।
जौ फुर कहहुं त नाथ निज, कीजिय बचन प्रधान॥

एक सच्चे प्रेमी के हृदय का प्रतिविम्ब ही उपरोक्त वाक्यों के शब्द-शब्द से झलक रहा है। प्रेमी के जीवन का लक्ष्य ही है प्रियतम को सुखी वनाना। वह 'संयोग' स्वसुख के लिए नहीं चाहता। 'संयोग' भी वह चाहता है केवल सेवा कर के उन्हें प्रसन्न करने के लिए। यदि उसे यह ज्ञात हो जाए कि मेरे अलग रहने से ही उन्हें सुख होगा, तो वह सहर्ष इसके लिए प्रस्तुत हो जाता है। श्री भरत के "कानन करउँ जनम भरि बासू" के निश्चय में इसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण हो जाता है। 'जौ फुर कहहुँ' (यदि आप सत्य कहते हैं) इस वाक्यांश में उनकी जो सरलता झलकती है, उसकी तुलना केवल श्री राघवेन्द्र की उस सरलता से की जा सकती है, जब कैकयी अम्बा ने महाराज दशरथ के दुख का कारण दोनों वरदान वताया, तो उस समय प्रभु को यह विश्वास ही नहीं होता कि मेरे वन-गमन जैसी लघु घटना से पिताजी को इतना दुःख हो सकता है। बड़े ही भावमय शब्दों में उन्होंने कहा--

थोरेहि बात पितहिं दुख भारी, होत प्रतीत न मोहि महतारी।

श्री भरत की भी स्थिति ठीक वैसी ही है। गुरुजी के प्रस्ताव पर उन्हें पूर्ण विश्वास होते हुए भी अविश्वसनीय-सा लग रहा है। आश्चर्य हो रहा है कि क्या मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को "अरध जतहिं बुध सरबस जाता' के सिद्धान्तानुसार 'अर्ध' माना जाता है? क्या यह सम्भव है कि मेरे वन-गमन मात्र से हमारे महामहिम लौट जाएँ? ओहो! कितनी सरल बात है। इसलिए वे सरलता भरे शब्दों में कहते हैं—"गुरुदेव! यदि आप सच कह रहे हैं? (मानो उन्हें विश्वास नहीं कि ऐसे सरल उपाय से समस्या हल हो जाएगी) तो इसे कार्य रूप में परिणित कीजिए।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री भरत की सरलता और स्नेहमयी वाणी को सुनकर समस्त सभासदों सहित मुनि राज 'विदेह' (देह विस्मरण) हो गए। स्वीकृति की आशा होते हुए भी महर्षि को इस रूप में इस भावना के साथ स्वीकृति की कल्पना न थी कि 'यह तो सरलतम उपाय है और मैं जन्म भर वन में निवास करूँ।' मुनिराज इस प्रस्ताव द्वारा अपने को मुक्त कर लेना चाहते थे, पर हुआ उलटा। श्री भरत ने 'कीजिये बचन प्रमाण' कहकर गम्भीर बन्धन में डाल दिया।

महर्षि की तत्कालीन असमर्थता कल्पनातीत है। ब्रह्मा के मानस पुत्र, स्मृति निर्माता, महान विवेकी आज पराजित हो गये अपने शिष्य की महानता के सामने। महाकवि ने इसे बड़ी ही सुन्दर रीति से व्यक्त किया है—

भरत महा महिमा जल रासी, मुनि मति तीर ठाढि अबला सो।
गा चह पार जतनु हिय हेरा, पावति नावन बोहित बेरा।
ओरु करिहि को भरत बड़ा, सरसी सीप कि सिन्धु समाई।

भरत की 'महान महिमा' विशाल पयोनिधि है और महर्षि की अवला मति पार करने की इच्छा से किनारे खड़ी है। उसने अनेक उपाय सोचे किन्तु नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी प्राप्त नहीं हो रहा है। महर्षि के तीन प्रयत्न ही मानो नाव, बोहित और बेरा पाने का प्रयत्न करना है। (१) अयोध्या में भरत को राज्याभिषिक्त करने की चेष्टा—मानो भरत पयोनिधि को पार करने के लिए 'नाव' प्राप्त करने की चेष्टा के समान है। (२) चित्रकूट में राघवेन्द्र की महिमा का वर्णन करके, उनके वन-गमन में ही मंगलमयता दिखाकर मानो 'जहाज' प्राप्त करने की चेष्टा है। (३) "तुम कानन गवनहुँ दोउ भाई" का प्रस्ताव अन्तिम और वृहत् बेड़ा प्राप्त करने का प्रयत्न है।

किन्तु तीनों बार निराशा ही हाथ लगी। सत्य तो यह है कि भरत पयोधि को पार करने की चेष्टा व्यर्थ है। उस प्रेम-पयोधि का दर्शन-मज्जन ही कल्याणकारी है। जहाँ महर्षि वशिष्ठ की यह स्थिति हो वहाँ अन्यों की क्या कथा —

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाही, कहहु तूल केहि लेखे माँही।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किन्तु महर्षि अपनी पराजय पर प्रसन्न थे, क्योंकि "अन्यत्र विजय इच्छेत् शिष्यात् मिच्छेत् पराजयम्" सूक्ति लोक प्रसिद्ध है। तब वे प्रेम पराजित हो भरतजी के साथ राघवेन्द्र के यहाँ पधारे—

भरत मुनिहिं मन भीतर भाए, सहित समाज राम पहि आए।

× × × ×

भगवान राम ने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया। बैठने के लिए कुसाशन बिछाया। उस पर आसीन हो महर्षि ने सबको बैठने की आज्ञा प्रदान की। इसके पश्चात् सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। यह तो स्पष्ट है कि श्री वशिष्ठ के हृदय में विचित्र द्वन्द्व है। एक ओर उनका विवेक उन्हें भावुकता के प्रवाह में बहने से रोकता है, बन जाने देने के पक्ष में निर्णय देता है, तो दूसरी ओर हृदय भरत का अनुगामी हो चुका है, बुद्धि भी भरत-प्रेम के समक्ष पराजित है। ऐसी जटिल परिस्थिति में उन्हें दोनों का निर्वाह करना है। अतः वे अपनी सारी कठिनाई प्रभु से व्यक्त कर देते हैं।

सुनहु राम सरवज्ञ सुजाना, धरम नीति गुन ग्यान निधाना।

दो० सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन, जननी भरत हित, होइ सो कहिय उपाउ॥

चौपाई—आरत कहहिं बिचारि न काऊ, सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

महर्षि ने अपने संक्षिप्त भाषण में सांकेतिक रीति से सारी स्थिति व्यक्त कर दी। भगवान की सर्वज्ञता का वर्णन करना एक ही अर्थ रखता है कि आप मेरी कठिनाई और भरत से हुआ वार्त्तालाप अच्छी तरह समझ सकते हैं? सबके अन्तर्यामी होने से लोगों का भाव भी आप से छिपा नहीं है। अतः पुरजनों, माताओं और भरत का हित जिसमें हो, वह उपाय कीजिए। सम्भव है प्रभु पूछें कि जिनके हित की बात आप कहते हैं, वे भी तो बुद्धिमान हैं। वे स्वयं निर्णय क्यों नहीं करते? तो इस प्रश्न का उत्तर महर्षि पहले ही दे देते हैं कि "आर्त्त विचारशील नहीं होते, जुआरी को सदा अपना ही दाँव सूझता है"। इस प्रकार महर्षि बड़ी बुद्धिमानी से अपने को लांक्षन मुक्त रखते हुए भी संकेत कर देते हैं। स्वयं कोई निर्णय न कर के प्रभु पर यह भार छोड़, वे स्वतन्त्र होने की चेष्टा करते हैं। किन्तु एक तो राघवेन्द्र की गुरुभक्ति अद्वितीय है,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गुरुजनों के समक्ष कोई निर्णय देना उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे संकेत नहीं—आज्ञा चाहते हैं। दूसरा कारण है लीला-विहारी की कौतुक प्रियता—सर्वज्ञता की ओर संकेत करने पर भी वे माधुर्य में ही रहना चाहते हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि सदा स्पष्ट निर्णय देनेवाले महर्षि आज मुझ पर यह भार क्यो छोड़ रहे हैं? वह कौन-सी शक्ति है, जिसने मुनिराज को भी संकोच में डाल दिया है? स्पष्ट अर्थों में कहें, तो इसका भाव यह कि अपने लाड़िले भरत की गुण-गाथा सुनना चाहते हैं। किन्तु व्यक्त रूप में उसका स्वरूप गुरुभक्ति ही है।

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ, नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ।
सब कर हित रुख राउरि राखे, आयसु किए मुदित फुर भाखे।
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई, माथे मानि करौं सिख सोई।
पुनि जेहिं कर जस कहब गोसाँई, सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।

भगवान राघवेन्द्र के उपरोक्त वचन सर्वथा निश्चयात्मक हैं। अन्तिम वाक्य तो अतीव महत्वपूर्ण है। उसमें प्रभु न केवल अपना अपितु श्री भरत आदि सबका प्रतिनिधित्व कर देते हैं। "आपकी आज्ञा का पालन प्रत्येक व्यक्ति करेगा"—यह कहकर राघव श्री भरत पर अपना अगाध विश्वास प्रगट करते हैं। इससे महर्षि की इस धारणा का खण्डन अपने आप हो जाता है कि "आर्त्त विचारशील नहीं होते, जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है।" महर्षि श्री भरत को पहिचानने में बार-बार भूल कर जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी विह्वलता, कातरता और दैन्य से उन्हें भ्रम हो जाता है कि भरत आर्त्त हैं, वे अपना ही पक्ष पुष्ट करना चाहेंगे। भरत-चरित्र कुछ ऐसा ही है, जिसे समझना अत्यधिक कठिन है। उन्हें केवल एक ही व्यक्ति जानता है और वे हैं भक्त-वत्सल-सुजान-राम। वे प्रारम्भ में ही निर्णय कर चुके हैं कि "भरत कहे महँ साधु सयाने" और आज भी उनका निर्णय यथापूर्व है। इसी बल पर वे कह देते हैं कि "पुनि जेहि कहँ जस देव रजाई, सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।" उन्हें अपने भरत पर अगाध विश्वास है—गर्व है। हमारा भरत आर्त्त, नहीं सच्चा अनुरागी है। उसकी कातरता के पीछे अगाध विवेक शक्ति छिपी हुई है।

महर्षि चकित रह गए भरत के प्रति प्रभु का इतना अगाध विश्वास और अपनत्व देखकर। साथ ही वे जिस भार से उन्मुक्त होना चाहते थे, वह भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सम्भव न हुआ। अतः फिर वे स्वयं में निर्णय की योग्यता का अभाव बताते हैं। निर्णय करने के लिए जिस निष्पक्ष विचार-शक्ति की अपेक्षा है, आज वह मुझ में नहीं है। भरत-स्नेह ने विचार का अपहरण कर लिया है।

कह मुनि राम सत्य तुम भाषा, भरत सनेह बिचार न राखा ।
ताते कहउँ बहोरि बहोरी, भरत भगति बस भइ मति मोरी ।

वास्तव में महर्षि जिस कठिन द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में पड़ गए थे, उससे छूटने के लिए उन्होंने एक सुन्दर उपाय निकालने की चेष्टा की। श्री भरत ने उनको ही समग्र पुरवासियों का व अपना प्रतिनिधि बना दिया था। पर वह महर्षि का स्वस्वीकृत प्रतिनिधित्व नहीं है। भरत-भक्ति की पराधीनता से ही वे इसके लिए प्रस्तुत हुए। भगवान राम के इस कथन से उनकी कठिनाई और भी बढ़ गई कि आप की आज्ञा ही हम सबके लिए मान्य है। उन्हें भरत के प्रतिनिधित्व करने के साथ ही धर्म-रक्षण की अत्यधिक चिन्ता है। इसलिए वे यह नहीं चाहते कि राघव मेरे प्रस्ताव को आज्ञा रूप में लें। तब उन्होंने वही कार्य किया, जैसे कोई व्यक्ति न्यायालय में वादी की ओर से साक्षी के रूप में उपस्थित किया जाए और साक्षी साक्ष्य देने के पहले यह घोषणा करे कि मैं स्वतन्त्र विचार शक्ति से नहीं पराधीनता के कारण साक्ष्य दे रहा हूँ और उसके पश्चात् बड़ी सुन्दर रीति से वादी के पक्ष का समर्थन करे। परिणाम समझना हम सब के लिए सरल है। उसके प्रथम वाक्य से ही उसकी आगे की समस्त व्याख्या और साक्ष्य व्यर्थ हो जाएगा। ठीक ऐसा ही किया हमारे महर्षि वशिष्ठ ने भी। भरत का समर्थन करने के पूर्व ही वे "भरत भगति बस भइ मति मोरी" की घोषणा करते हैं। उसके पश्चात् भगवान भूत भावन शिव की साक्षी देकर भरत रुचि रखने की प्रार्थना करते हैं––

मोरे जान भरत रुचि राखी, जो कीजिय सो सुभ सिव साखी ।

किन्तु इसके पश्चात् उन्होंने एक बात और कही––स्नेहाधिक्य से कही है पर आप तटस्थ दृष्टि से विचार कर सकते हैं; अतः यदि भरत रुचि शास्त्र सम्मत हो तो उसे स्वीकार कीजिए। यदि कहा जाय कि क्या स्वयं महर्षि शास्त्र सम्मतता का निर्णय नहीं कर सकते? तो उसका उत्तर वशिष्ठ जी प्रारम्भ में दे चुके हैं "भरत भगति बस भइ मति मोरी" कहकर।

साधारण रीति से भी इसकी संगति लगने में कोई कठिनाई नहीं है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शिष्ट जन ऐसी ही भाषा में बात किया करते हैं–"मेरा मत तो यह है, परन्तु आप स्वयं विचार कर लीजिए, उचित हो तो मानिए।" शिष्ट शिरोमणि राघवेन्द्र भी इसी भाषा में वार्त्तालाप करते हैं। पुरवासियों को उपदेश देने के प्रसंग में यह स्पष्ट व्यक्त है।

नहीं अनीति नहिं कछु प्रभुताई, सुनहु करहु जो तुमहि सोहाई।
सोइ सेवक मम प्रियतम सोई, मम अनुशासन मानइ जोई।।

कहने के पश्चात वे स्वयं उसमें संशोधन करते हैं। "मेरी आज्ञा मानने का यह अर्थ नहीं कि आप मेरी अनुचित बातें भी स्वीकार करें। यदि अनौचित्य हो, तो मानना दूर रहा, आप लोग मुझे बीच ही में रोक दें।

जौ अनीति कछु भाखौं भाई, तौ मोहि बरजेउ भय बिसराई।

उपरोक्त उदाहरण का तात्पर्य इतना ही है कि "भरत रुचि राखी" कहने के पश्चात् "करिय बिचार बहोरि" शिष्ट जनोचित भाषण-प्रथा है। महर्षि ने मत और आज्ञा का पार्थक्य करने के साथ ही इसके द्वारा शिष्ट-प्रथा का भी निर्वाह किया है। साथ ही उनका अन्तिम वाक्यांश प्रेमपराजित होते हुए भी धार्मिक प्रेरणामूलक है। उनकी प्रबुद्ध चेतना राघवेन्द्र को शास्त्र सम्मत निर्णय का आदेश देती है।

और इधर लोक चूड़ामणि रामभद्र मुग्ध और आश्चर्य चकित हैं अपने लघु भ्राता की इस विजय पर। सर्वदा निर्भीक निर्णय देनेवाले महर्षि आज एक मत के अनुयायी हो गए। स्वयं ही राक्षस वध चाहने वाले मुनिराज आज 'भरत रुचि' रखने की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। धन्य हो भरत तुम और तुम्हारा स्नेह! इस प्रकार के आनन्दमय भाव उदित हो रहे हैं प्रभु के हृदय में। अचानक स्मरण हो आता है राघव को मुनि का अन्तिम वाक्यांश "बिचार बहोरि, करब साधु मत......"। "अच्छा! महर्षि भीत हैं भरत के अनुराग के समक्ष! वे सोचते हैं भरत प्रेमी है, कहीं मैं भी उसके प्रभाव में धर्म-विरुद्ध निर्णय से सहमत न हो जाऊँ? पर नहीं भरत धर्म धुरन्धर भी है। उसके समान धर्मज्ञानी हम लोगों में दूसरा नहीं। उसका भाषण स्नेहपूरित होने के साथ ही धर्म-विरुद्ध न होगा। वह मेरा सच्चा सेवक है, मुझे संकुचित होना पड़े ऐसा कार्य वह कदापि न करेगा।" इस प्रकार प्रभु

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

के हृदय में भाव उदित हुए। गोस्वामीजी ने उन्हें अपने शब्दों में सुलभ कर दिया है——

गुरु अनुराग भरत पर देखी, राम हृदय आनन्द बिशेखी।
भरतहिं धरम धुरन्धर जानी, निज सेवक तन मानस बानी ।

श्री भरत का उपरोक्त परिचय ही उनका वास्तविक परिचय है। भरत-चरित्र में प्रेम और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं——पूरक रूप में आते हैं। किन्तु कठिनाई यही है कि जब तक प्रभु वन-गमन नहीं हुआ था, लोगों ने उन्हें धार्मिक रूप में देखा, पूर्णानुरागी के रूप में नहीं। वन-गमन के पश्चात लोगों को अवध राज्य-सभा से उनमें पूर्णानुराग दीखने लगा। पर दुर्भाग्यवश तब उनका धर्म-धुरन्धर रूप छिप गया। अन्य लोगों की तो बात ही क्या, महर्षि वशिष्ठ भी भरत हृदय की थाह नहीं ले पाते। वे भी 'भरत-स्नेह' से पूर्ण सशंक हैं। "अन्ततोगत्वा भरत राघवेन्द्र से लौट चलने का आग्रह करेंगे"—— ऐसा उनका विश्वास था। उनके इस विश्वास में पुरवासी, माताएँ, देवगण सभी सहमत थे। ऐसी परिस्थिति में भरत-हृदय का विराट प्रेम व धर्म समन्वय जाननेवाले एक मात्र सुजान राघवेन्द्र ही हैं। उन्हें न कोई सन्देह है न भय। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि भरत का निर्णय ही साधुमत, लोकमत, राजनीति और शास्त्रसम्मत होगा। और निर्भीकता से उन्होंने प्रेम भरे शब्दों में भाषण प्रारम्भ किया——

बोले गुरु आयसु अनुकूला, बचन मँजु मृदु मंगल मूला।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई, भयउ न भुवन भरत सम भाई।
जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी, ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी।
राउर जापर अस अनुरागू, को कहि सकै भरत कर भागू।
लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई, करत बदन पर भरत बड़ाई।
भरतु कहहिं सोइ किए भलाई, अस कहि राम रहे अरगाई।

जिन शब्दों में प्रभु ने भरत की प्रशंसा की है, वह उनके भावावेश की स्थिति का सूचक है। शान्त मनःस्थिति में अपने निकटस्थ की प्रशंसा करने का मन ही नहीं होता। उसकी स्तुति अपनी स्तुति प्रतीत होती है। स्वयं अपनी प्रशंसा श्रेष्ठ जन नहीं किया करते। यों तो शान्त मनःस्थिति में राघवेन्द्र सुग्रीव की तुलना भरत से कर देते हैं और बन्दरों को भरत से भी अधिक

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रिय बताते हैं। यह एक शिष्ट जनोचित व्यवहार है। श्री हनुमानजी से मिलने पर उन्हें प्रभु "तै मम प्रिय लक्षमन ते दूना" कहकर सम्बोधित करते हुए सान्त्वना प्रदान करते हैं। अब यदि आप 'दूना' गणित वाला दूना मान लें, तो यह प्रयास व्यर्थ होगा। इन उदाहरणों का अर्थ है जिससे जितना अधिक अपनत्व होता है, एकत्व का अनुभव होने के कारण उसकी प्रशंसा नहीं की जाती। हृदय में ही प्रशंसा के भावों को संचित रखा जाता है। पर इस नियम का अपवाद न हो, ऐसी बात नहीं। एक ऐसी भी परिस्थिति आती है, जब प्रेमोन्माद में शिष्टाचार का ध्यान नहीं रहता और हृदयस्थ गुण-गाथा का गुप्त स्रोत वाणी से प्रवाहित हो उठता है। तब लोक के सामने प्रेमियों की गुप्त निधि व्यक्त हो जाती है। तब भाव-भट के समक्ष संकोच पलायन कर जाता है। कहना न होगा कि ऐसे क्षण अमूल्य होते हैं, क्योंकि तभी हम प्रेमी और प्रियतम का सच्चा स्वरूप जान पाते हैं। श्री लक्ष्मण के प्रति प्रभु कितना अधिक स्नेह रखते हैं यह तो तभी ज्ञात होता है जब वे मूर्च्छित हो जाते हैं। लंका के रणांगण में जब प्रभु मुख से दिव्य भावमय वाक्य निकल पड़ता है कि "जौ जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू, पिता बचन मनतेऊँ नहि ओहू" तभी हम जान पाते हैं कि राघव की दृष्टि में लक्ष्मण का क्या स्थान है। इसी प्रकार श्री भरत प्रभु को अतीव प्रिय हैं। उनके प्रति अगाध आदर व स्नेह उनके हृदय में है। पर सहज ही उसे प्रकट नहीं होने देते। आज भावोन्माद की दिव्य स्थिति में प्रभु का भेद खुल जाता है।

राघवेन्द्र सपथपूर्वक श्री भरत की सर्वोत्कृष्टता घोषित करते हैं। सपथ का अर्थ है—पूर्ण विश्वास के साथ घोषणा। सपथ भी साधारण व्यक्तियों की नहीं—श्री वशिष्ठ और महाराज दशरथ की। दोनों व्यक्ति महान हैं। एक पूर्ण धर्म के प्रतीक हैं और दूसरे सत्य व प्रेम के। महर्षि वशिष्ठ धार्मिक ही नहीं, धर्म निर्णायक और शास्त्र-प्रणेता भी हैं। और श्री दशरथ का राम-प्रेम उस कोटि का है, जिसकी याचना प्रेमीजन किया करते है। "बंदउँ अवध भुवाल सत्य प्रेम जेहि राम पद"। दोनों की सपथ का अभिप्राय है—धर्म और प्रेम की सपथ। क्योंकि भरत वास्तव में धर्म और प्रेम दोनों के ही मूर्तिमान स्वरूप हैं। मानो इस सपथ के द्वारा प्रभु सूचित करते हैं कि धर्म और प्रेम दोनों ही दृष्टियों से भैया भरत की अद्वितीयता पर मेरा उतना ही निर्विवाद विश्वास है, जितना महर्षि की धार्मिकता, और पिताजी के प्रेम पर।

"विश्व इतिहास में आज तक भरत के समान भ्राता उत्पन्न नहीं हुआ।" यह स्तुति नहीं, एक सत्य है। जो आज भी उतना ही सत्य है, जितना त्रेता में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

था। विश्व इतिहास के समस्त पृष्ठ उलट जाइए--अन्त में निराश होकर कहना पड़ेगा कि "भयउ न भुवन भरत सम भाई"।

भगवान राघवेन्द्र ने प्रमाण स्वरूप जो बात उपस्थित की है, वह बड़ी ही भावपूर्ण है। जो लोग गुरु चरणों में प्रेम करते हैं, वे लोक और वेद दोनों ही दृष्टियों से सर्वोत्कृष्ट व भाग्यवान हैं (अभिप्राय यह कि यदि श्री भरत ही आपके चरणों के अनुरागी होते, तो इतने मात्र से ही लोक-वेद दोनों में वे भाग्यवान स्वीकृत हो जाते) पर इस प्रकार के गुरु चरणानुरागी बड़भागियों का लोक में अभाव नहीं। किन्तु यहाँ तो सिद्धान्त ही उलट गया, जब आप ही शिष्य के अनुरागी हो गये। यह स्मरण रहे कि शिष्य को ही गुरु-चरणों का अनुरागी होना चाहिए---गुरु को नहीं। अनुराग का अर्थ है विवेक को छोड़कर समर्पण। यह पूर्ण विश्वास का सूचक है। शिष्य तो गुरु के वात्सल्य का ही अधिकारी है--अनुराग का नहीं। तभी गुरु शिष्य को उचित-अनुचित का निर्देश कर सकेगा। गुरु पूर्ण है। अतः उससे अनुराग करने में पतन की सम्भावना नहीं। पर यदि गुरु अनुरागी हो जाए, तो इसका अर्थ है शिष्य की इच्छा का अनुगमन। साधारणतया यह पतन का कारण ही बनेगा। किन्तु यहाँ महर्षि ही अनुरागी होकर "भरत भगति बस भई मति मोरी" की घोषणा करते हैं। ऐसी परिस्थिति में दो कारणों की ही कल्पना हो सकती है: (१) गुरु की भूल, (२) अथवा यह कि गुरु की दृष्टि में शिष्य स्वयं ही अपेक्षा से भी अधिक योग्य हो गया है। यह अगाध विश्वास और शिष्य की महत्ता का सूचक है। महर्षि से भूल की आशा हम नहीं कर सकते, तब द्वितीय कारण ही उचित है। वास्तव में यहाँ शिष्य गुरु की अपेक्षा प्रेम और धर्म दोनों में ही आगे हैं। अतः गुरु को ही शिष्य का अनुरागी होना उचित है। क्योंकि ऐसी परिस्थिति में शिष्य ही गुरु का कल्याण करता है। धन्य है वह शिष्य जिस पर गुरु का इतना अगाध विश्वास हो। और धन्य है वह गुरु जिसे इतना योग्य शिष्य प्राप्त हो। श्री भरत ने तो समग्र सिद्धान्त ही पलट दिए। लोक जानता है कि गुरु शिष्य का मार्ग दिग्दर्शक होता है, पर यहाँ तो शिष्य ही मार्ग प्रदर्शक बन गया। लोक इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब शिष्य की सद्भावना से अयोग्य गुरुओं का भी कल्याण हो गया हो--किन्तु कल्याण स्वरूप महर्षि को भी कुछ सीखना पड़े ऐसा उदाहरण सम्भवतः विश्व में अकेला है एक मात्र श्री भरत का। ऐसी परिस्थिति में प्रभु का यह निर्णय भावना ही नहीं, तर्क की कसौटी पर भी खरा है। हम भी अपना क्षीण-कण्ठ मिला देते हैं "को कहि सकै भरत कर भागू" में।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यहाँ हम वह प्रसंग लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते, जहाँ शिष्य गुरु के लिए प्रेम-शिक्षक बना। शिष्य का अनुकरण कर गुरु ने अपने को धन्य किया।

निषाद राज भरत का स्वागत करने के लिए कन्द-मूल आदि लेकर आते हैं और आकर उन्होंने महर्षि को साष्टांग प्रणाम किया——महर्षि ने आशीर्वाद दिया। यहाँ यह बात बड़ी हृदयग्राही है कि निषाद ने अपनी मर्यादा का त्याग नहीं किया।

देखि दूरि ते कहि निज नामू, कीन्ह मुनीसहि दण्ड प्रनामू।

'दूर से प्रणाम'——उसकी मर्यादा ज्ञान का सूचक है। महर्षि में धार्मिक संस्कार ही प्रबल रहे, उन्होंने राम-सखा जानते हुए भी उसके साथ अधिक सामीप्य का व्यवहार नहीं किया। किन्तु श्री भरत ने ज्यों ही सुना——'अहो! यह तो राम-सखा है', बस भूल गए स्थूल धर्म——उन्हें तो वह दीख रहा था जिसे स्वयं प्रभु ने हृदय से लगाया है और दौड़कर उसे हृदय से लगा लेते हैं। अवश्य ही उस अवसर पर महर्षि लज्जित हुए होंगे अपने शिष्य की इस प्रेममयता को देखकर। "हाँ! आज मैं संस्कार और लोक प्रथा में पड़कर पवित्र प्रेमी के स्पर्श वे वंचित रहा, अवश्य ही मुझमें प्रेमाभाव है, तभी तो मुझे राम सखा का निषादत्व दीखा। एक बार जिसका नाम लेने से व्यक्ति तारन तरन हो जाता है, उस प्रभु का प्रिय सखा मुझ से दूर रहा।" और तब उन्होंने निर्णय किया कि अवसर आते ही मैं भी प्रेममूर्ति भरत का अनुकरण करूँगा।" सौभाग्य से उन्हें वह सुअवसर प्राप्त भी हुआ, जब राघवेन्द्र के साथ निषाद राज भी गुरु की अगवानी के लिए आए और पुनः उसी रीति से उन्होंने महर्षि को प्रणाम किया——

नाउँ जाति गुह नाम सुनाई, कीन्ह प्रनाम माथ महि लाई।

पर इस बार महर्षि ने दौड़कर हृदय से लगा लिया राम-सखा को——

रामसखा ऋषि बरबस भेंटा, जनु महि लुटत सनेह समेटा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत-प्रेम ने गुरुदेव का भी मार्ग प्रदर्शन किया। धन्य हैं श्री भरत। भगवान राघवेन्द्र प्रशंसा करते-करते प्रकृतिस्थ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हो जाते हैं। भरत की प्रशंसा और वह भी मुख पर। संकुचित होकर प्रभु ने कहा——

लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई, करत बदन पर भरत बड़ाई।

करना न चाहते हुए भी करना पड़ता है। यह तो मानो भरत के ही गुणों का दोष है, जो व्यक्ति को मौन नहीं रहने देता। अन्त में प्रभु आज वह घोषणा करते हैं, जो मर्यादा-पुरुषोत्तम, धर्म-धुरीण राम की लीला का अद्वितीय प्रसंग है। आज इस प्रेम-मूर्ति के सामने वे समस्त मर्यादा, धर्म को भुला देते हैं। समग्र पुरवासियों के अनुरोध पर भी विचलित न होने वाले सत्य-सन्ध-राघवेन्द्र भ्राता भरत के समक्ष आत्म समर्पण कर देते हैं। आज उनका धर्म है 'भरत की इच्छा'। आज भरत के एक वाक्य पर मर्यादा-पुरुषोत्तम मर्यादा का त्याग करने को प्रस्तुत हैं। ऐसे हैं वे भरत, राघवेन्द्र के विश्वास पात्र कि निस्संकोच निर्णय मिला "भरत कहै सोइ किए भलाई, अस कहि राम रहे अरगाई।"

प्रेम-पर-वस प्रभु के इस निर्णय से लोग चकित रह गये। पुरवासियों के लिए यह निर्णय कल्पनातीत था। उन्हें आशा थी कि रघुकुल शिरोमणि धर्म और मर्यादा की दुहाई देंगे। भरत आग्रह करेंगे। अन्तिम निर्णय के विषय में लोग सशंक थे——

अस संसय सबके मनमाँही, राम गवन बिधि अवध कि नाहीं।

पर यहाँ तो भरत को एक शब्द भी कहना न पड़ा। प्रस्ताव के पूर्व ही सहमति और आत्मसमर्पण की घोषणा हो गई। लोग प्रसन्न भी थे इस निर्णय से। उन्हें पूर्ण निश्चय था कि बस अब भरत लौटने का प्रस्ताव करेंगे और प्रभु भी वचनवद्ध होने के कारण उसे स्वीकार कर लेंगे। किन्तु घटना क्रम ने इस विषय में भी उनकी धारणा को भ्रामक सिद्ध कर दिया। श्री भरत की विचारधारा सर्वथा अपनी है——सर्वथा अगम।

श्री वशिष्ठ ने आज्ञा दी श्री भरत को कि वे संकोच छोड़कर अपने हृदय की बात कृपासिन्धु राघव से कहें——

तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपा सिन्धु प्रिय बन्धु सन, कहहु हृदय कै बात॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अहा ! आज श्री भरत के हृदय की प्रसन्नता अवर्णनीय है। किन्तु आनन्द के प्रवाह में वे मार्ग भ्रष्ट नहीं हुए। वे सर्वथा जागरूक हैं। भगवान ने निर्णय का भार उन्हें देकर उनको जिस पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है, उसकी गुरुता से वे भली प्रकार परिचित हैं। उठकर खड़े हुए, श्याम शरीर में रोमांच और कमलनयन अश्रु से भरे हुए हैं—

सुनि गुरु बचन राम रुख पाई, गुरु साहिब अनुकूल अघाई ।
लखि अपने सिर सब छरु भारू, कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ।।

पुलक सरीर सभा भए ठाढ़े, नीरज नयन नेह जल बाढ़े ।
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा, एहि ते अधिक कहब मैं काहा ।।

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ, अपराधिहु पर कोह न काऊ ।
मो पर कृपा सनेहु बिशेषी, खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ।।

सिसु पन ते परिहरेउँ न संगू, कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू ।
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही, हारेहु खेलि जितावहिं मोही ।।

दो० महूँ सनेह सँकोच बस, सनमुख कहेउँ न बैन ।
दरशन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ।।

चौ० बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा, नीच बीचु जननी मिस मारा ।
यहउ कहत मोहिं आज न शोभा, अपनी समुझि साधु सुचि कोभा ।।

मातु मंदि मैं साधु सुचाली, उर अस आनत कोटि कुचाली ।
फरइ कि कोदव बालि सुसाली, मुकुता प्रसव कि संबुक काली ।।

सपनेहुँ दोस कलेष न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू ।
बिनु समझे निज अघ परिपाकू, जारिउँ जायँ जननि कहिं काकू ।।

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा, एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा ।
गुरु गोसाँई साहिब सिय रामू, लागत मोहि नीक परिनामू ।।

दो० साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउँ सुथलसति भाउ ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

चौ० भूपति मरन प्रेम पन राखी, जननी कुमति जगत सब साखी ।
देखि न जाहिं बिकल महतारी, जरहिं दुसह दुख पुरनर नारी ।।
महीं सकल अनरथ कर मूला, सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ।
सुनि बन गवन कीन्ह रघुनाथा, करि मुनि वेष लषन सिय साथा ।।
बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ, सँकए साखि रहेऊ एहि घाएँ ।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू, कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ।।
यह सब आँखिन देखेउँ आई, जिअत जीव जड़ सबई सहाई ।
जिन्हहि निरखि मग साँपिन बीछी, तजहि बिषम बिष तामस तीछी ।

दो० तेइ रघुनन्दनलषनु सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावई काहि ।।

स्नेह, दैन्य, करुणा, विवेक से परिपूर्ण श्री भरत की वाणी मानो मूर्तिमती भक्ति का प्रतीक है। भक्त हृदय का समुज्ज्वल चित्र है। करुण रस का अवाध स्रोत है। आत्मनिरीक्षण तो इसके प्रत्येक वाक्य में ओत-प्रोत है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यह भाषण 'भरत पयोधि' से निकला हुआ वह 'दिव्य स्नेह कल्पतरु' है, जिससे प्रेम, भक्ति, विवेक, धर्म—सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

भाषण के प्रारम्भ में ही वे बाल्यकाल की मादक मधुर स्मृति में डूबकर उसमें तन्मय हो जाते हैं। अहा!—वे दिवस जब बालारुण की राग रंजित किरणें अपने कोमल करों से स्वर्णिम प्रभा बिखेर देती थीं—तब अवध का राजभवन, उसका मणिमय प्रांगण, विस्तृत क्रीड़ा भूमि मुखरित हो उठती थी सहचरवृन्द सहित राघवेन्द्र की लीला माधुरी से। उधर सरोवरों में सरोज विकसित हो जाते थे बालारुण की क्रीड़ा देख। और इधर वात्सल्यमयी माताओं के नीरज नयन प्रफुल्लित हो जाते थे अपने शिशुओं की चपलता दर्शन से। लाड़िले रामभद्र अब खड़े होकर चलना सीख गए हैं, तो भैया भरत भी चेष्टा करते हैं। जब लड़खड़ाते हैं, तो सामने राघवेन्द्र हाथ पसारे सँभालने को प्रस्तुत खड़े हैं। पर आज वह कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थं ईश्वर संभाल नहीं पाते हैं। और स्वयं भी भरत के साथ भूमि पर गिर जाते हैं। एक दूसरे को देखकर मुस्कराते हैं। हाथ में हाथ जोड़कर पुनः उठने की चेष्टा करते हैं—

बाल भूषन बसन तन सुन्दर रुचिर रज भरनि ।
परस पर खेलनि अजिर उठि चलनि गिर गिर परनि ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कभी राघवेन्द्र को गिरा देख अम्बा उत्साहित करने के लिए पूप दिखाती हैं। पूर्ण काम राम उसे पाने की लालसा से उठकर खड़े हो जाते हैं। पूप की ओर बढ़ते हुए भी उनको अपने भरत की स्मृति है। अपनी तोतली भाषा में आमन्त्रित करते हैं अनुजों को--

गिर घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप दिखाए।
बालकेलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनन्द न अमाए ।।

बालक्रीड़ा में भी उनका यह भ्रातृप्रेम माताओं के लिए आनन्दकारक था।

खेल में तो लड़ना स्वाभाविक ही है और हमारे राम उलझ भी जाते थे कभी-कभी सखा परिकरों से--

झुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकति मोहनी मन हरनि ।।

पर यदि एक क्षण के लिए भी जिनसे रूठना न हुआ वे हैं एक मात्र श्री भरत। भरत के साथ क्रीड़ा में भी राघव अपनी बाल सुलभ विजयेक्षा को भुला देते थे। भरत से उन्हें हारने में ही आनन्द आता था। क्रमशः अवस्था वृद्धि के साथ तो प्रभु का यह वात्सल्य बढ़ता ही गया।

आज चित्रकूट में मर्यादा पुरुषोत्तम के आत्मसमर्पण पर श्री भरत के नेत्रों में प्रभु की एक-एक बाल क्रीड़ा झलक उठी। अहा! आज भी हमारे वही राम हैं। मुझे विजयी बनाकर हर्षानुभव करने वाले। और तब वे भाव विभोर हो गए। किन्तु श्री भरत की सदा से यह विशेषता रही कि वे प्रभु के इस स्नेह से कभी उद्धत न हुए। वे तो बाल्यावस्था से ही कौशल-किशोर के समक्ष पहुँचते ही संकोच स्नेह से नत हो जाते थे। बात करना तो दूर रहा नेत्र से मुखचन्द्र का दर्शन करने का भी साहस नहीं करते थे। उनकी चिर अतृप्ति आज भी यथापूर्व है।

उपरोक्त दोहे में उन्होंने अपने उसी स्वभाव की ओर संकेत किया है। किन्तु बाल्यावस्था की मधुर स्मृति से आज की परिस्थिति का संबंध जोड़ते हैं, तो हृदय वेदना से भर आता है। कहाँ अयोध्या का राजमहल और कहाँ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह पथरीली भूमि। उस दृश्य का स्मरण आता है, जब बाल विभूषण में सुसज्जित राघव अवध बीथियों में विहार करते थे--

छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगनि छोटी
छोटिए कछौटी कटि छोटिए तरकसी।
लसत झगूँली झीनी दामिनी की छबि छीनी
सुन्दर बदन सिर पगिया जरकसी।।
वय अनुहरन बिभूषन बिचित्र अंग
जोहे जिय आवत सनेह की सरकसी।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै
जाने सोई जाके उर कसकै करकसी।।

(गी० वा० ४४)

आज वे वल्कल वस्त्र, जटाजूट धारण किए नग्न पग से वन-वन भटक रहे हैं। उनके इस वेश को देखकर अपरिचित जन भी व्याकुल हो उठते हैं, फिर भरत की व्याकुलता का वर्णन लेखनी का विषय नहीं। व्याकुल कण्ठ से निकल पड़ा---

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा, नीच बीच जननी मिस मारा।

मैं जान गया ब्रह्मा को सह्य न हुआ मेरा यह दुलार तब उन्होंने माँ के बहाने हम दोनों के बीच (भेद) डालना चाहा। इतना कहते-कहते सन्त भरत सावधान हो जाते हैं। सन्त दोषदर्शी नहीं होता। उसके गुण-दोष दर्शन के दो ही क्षेत्र हैं--समस्त गुण प्रभु में और दोष स्वयं में। अन्यों से उसका क्या सम्बन्ध। यह साधु सिद्धान्त प्रतिपादित होता है भरत के द्वारा--

सपनेहुँ दोष कलेस न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू।
बिनु समझे निज अघ परिपाकू ,जारेउँ जाइ जननि कहि काकू।।

किन्तु भक्त निराशावादी नहीं होता। स्वयं में अवगुणों को देखते हुए भी पूर्ण आशावान है, क्योंकि उसकी आशा का केन्द्र इतना दृढ़ है कि किसी भी परिस्थिति में जीव का त्याग नहीं कर सकता। वह अकारण करुण, करुणा वरुणालय--जिसका आश्रय है, स्वामी है--उसके हृदय में निराशा कहाँ?

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसकी कृपालुता चन्द्रमा की किरणों के समान समस्त तापों का उपशमन कर देती है। हाँ! यह अवश्य है कि जीव जब चारों ओर से निराश होता है, तभी उसको इस महती कृपा के दर्शन होते हैं। अन्धकार में ही तो चन्द्रोदय होता है और श्री भरत के द्वारा व्यथा के रूप में यह 'कृपा-रहस्य', जो हम निर्बलों का सबसे बड़ा सम्बल है प्रगट होता है—

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा, एकहिं भाँति भलेहिं भल मोरा ॥
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू, लागत मोहि नीक परिनामू ।

"जिसने गुरु के प्रति समर्पण किया है, महर्षि वशिष्ठ के चरणों में जिसकी अचल निष्ठा है, राघवेन्द्र जिसके स्वामी हैं, उसका परिणाम श्रेयस्कर ही होगा।" यह श्री भरत का भाव सबके लिए है, यह वैधी भक्ति का मानो मूल सिद्धान्त है।

उसके पश्चात श्री भरत ने जो कुछ कहा—प्रेम पथ के पथिक के लिए वह अविस्मरणीय है। राम का सर्वोत्कृष्ट प्रेमी अपने हृदय को वज्र से भी कठोर मानता है। उसे स्वयं से अधिक प्रेम निषाद ही में नहीं, साँप, बिच्छू में भी प्रतीत होता है —

बहुरि निहारि निषाद सनेहू, कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ।
जेहि बिलोकि मग साँपिन बीछी, तजहि बिषम बिष तामस तीछी ॥
दो० तेइ रघुनन्दन लषन सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि ॥

जिनका प्रेम जड़ को भी चेतन बना देता है। जिनके स्नेह के एक बिन्दु को प्राप्त करने की आकांक्षा सिद्ध जन किया करते हैं, जिनके हृदय से एक क्षण के लिए भी प्रभु की विस्मृति नहीं होती। रात्रि में क्षण भर के लिए निद्रा नहीं आती। प्रतिक्षण जो प्रियतम को सुखी देखने की चिन्ता में निमग्न रहता है। उस प्रेममूर्ति के हैं यह वाक्य। प्रेमी का हृदय कैसा होता है, इसे जानना हो तो पढ़ लें इस व्यथा-मय वाणी को। प्रेम प्रतिक्षण वर्धनशील है, क्योंकि प्रेमी जब अपनी ओर दृष्टि डालता है, तो स्वयं में उसे प्रेमाभाव ही दीखता है। भावुक जनों का कथन है कि 'प्रेम चन्द्र' में कभी पूर्णिमा नहीं होती—!

····प्रेम सदा बढ़िबो करै ,ज्यों ससि कला सुबेस ।
पै पूनी यामें नहीं, ताते कबहुँ न सेष ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पूर्णिमा के पश्चात ही चन्द्रमा का पतन प्रारम्भ होता है, किन्तु प्रेम में पूर्णिमा नहीं होती। इसलिए यह अक्षय है। नित्य संवर्धनशील है :

× × × ×

प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपा सिन्धु रघुबीर।।

सचमुच ही यदि इस जटिल परिस्थिति में विरह न हुआ होता, तो प्रेम के इस अक्षय सिद्धान्त का प्रतिपादन वाणी में ही नहीं जीवन में भी देखने को कहाँ प्राप्त होता ? श्री भरत के मुख से व्यक्त हुई व्यथा ही प्रेम-दर्शन के गम्भीर सूत्र हैं। प्रेम-पथ पथिकों के लिये मार्गदर्शक है।

भरत की स्नेह-सिक्त-वाणी सुनकर समस्त सभासदों के हृदय से करुण रस का स्रोत फूट पड़ा। सभी लोग व्याकुल हो गए। तब महर्षि अनेक इतिहास सुनाकर लोगों को सान्त्वना प्रदान करते हैं। लोगों के शान्त होने पर प्रभु अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं। यह भाषण क्या है मानो भक्त द्वारा भगवान की गाई गई गुण गाथा हो। आज स्तुत्य ही स्तोता बनकर भरत का अभिनन्दन करता है।

बोले उचित बचन रघुनन्दु, दिनकर कुल कैरवबन चन्दू।
तात जायं जनि करहु गलानी, ईस अधीन जीव गति जानी।।
तीन काल त्रिभुवन मत मोरे, पुन्य सिलोक तात तर तोरे।
उर आनत तुम्हँ पर कुटिलाई, जाइ लोकु परलोकु नसाई।।
दोसु देहिं जननिहि जड़तेई, जिन्ह गुरु साधु सभा नहि सेई।

दो० मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार।।

कहहुँ सुभाउ सत्य शिव साखी, भरत भूमि रह राउरि राखी।
तात कुतरक करहु जनि जाए, बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराए।।
मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं, बाधक बधिक बिलोकु पराहीं।
तात तुम्हहिं मै जानउँ नीके, करहुँ काह असमंजस जीके।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी, तनु परिहरेउ प्रेम पन त्यागी ।
तासु बचन मेटत अति सोचू, तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ।।
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा, अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ।

दो० मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आजु ।
सत्य सन्ध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु ।।

समस्त भाषण को हम तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं। सबसे विस्तृत है भरत स्तुति खण्ड। इसमें प्रभु ने अयोध्या या अन्य स्थलों में प्रदर्शित दैन्य का खण्डन किया। तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

श्री भरत का कथन	प्रभु का कथन
१. मो समान को पाप निवासी, जेहि लगि सीय राम बनवासी।	तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे, पुन्य सिलोक तात तर तोरे।
२. जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराए	उर आनत तुम पर कुटिलाई, जाइ लोक परलोक नसाई।
३. मोहि हठि राज देइहउ जबहिं रसा रसातल जाइहिं तबहि	कहहुँ सुभाउ सत्य शिव साखी, भरत भूमि रह राउरि राखी।

भरत स्तुति के प्रसंग में प्रभु ने शाप और वरदान दोनों दिया। तुम में कुटिलता का सन्देह करनेवाले व्यक्ति का लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाए। यह शाप देने के पश्चात् प्रभु चौंक पड़े, क्योंकि इसका प्रभाव दो महत्प्रेमियों पर पड़ता है। 'निषाद राज' और 'श्री लक्ष्मण' दोनों ही ने कुटिलता का आक्षेप श्री भरत पर किया है—

निषाद राज : जो पै जिय न होत कुटिलाई,
तौ कत संग लीन्ह कटकाई।

श्री लक्ष्मण : कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी,
जानि राम बनवास एकाकी।

प्रभु द्वारा प्रदत्त शाप से दोनों प्रेमी भी संकुचित हुए होंगे। इसलिए

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

राघव ने भरत की स्तुति में ही उन लोगों को भूल का प्रायश्चित भी बता दिया —

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक सुयस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ।।

मानों इसके द्वारा वे संकेत करते हैं कि तुम दोनों को श्रद्धा से भरत नामोच्चारण कर लेना चाहिए।

प्रभु का ज्ञान अनन्त है, अपरिच्छिन्न है। उन्होंने घोषणा कर दी कि तीनों काल और त्रिभुवन में जो पुण्य श्लोक हैं या होंगे, वे तुमसे नीचे हैं। और कोई भी तुलनात्मक अध्ययन करनेवाला इससे असहमत न होगा। इसमें मुझे रंच मात्र सन्देह नहीं कि पुण्यश्लोक नल, युधिष्ठिर आदि के जीवन में भी ऐसे क्षण आए, जब वे धर्म से विचलित हुए। पर भरत के जीवन की चाहे जितनी सूक्ष्म समालोचना कीजिए—कहना ही पड़ेगा—

कहइ काहँ छल छुवत न छाँही ।

दूसरे खण्ड में राघवेन्द्र अपनी मनःस्थिति का विश्लेषण कर देते हैं। "पूज्य पिताजी ने मुझे छोड़कर धर्म की रक्षा की और शरीर त्याग कर प्रेम की। ऐसे महान त्यागी की आज्ञा का उल्लंवन करने में मुझे शोक होगा। किन्तु तुम्हारा संकोच उनकी अपेक्षा भी अधिक है।"

तीसरे खण्ड में बड़ी सरलता से भगवान भरत के समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं—

मन प्रसन्न करि सोच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु ।

इस प्रकार भक्तवत्सल प्रेम-पराधीन प्रभु ने अपने श्री मुख से भक्त महिमा का ख्यापन करते हुए अपनी कृपालुता का परिचय दिया। कौशलेन्द्र के इस अप्रत्याशित निर्णय से पुरवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। साथ ही भरत महिमा भी हृदयंगम होने लगी। आज पुरवासियों ने जाना प्रेम और प्रेमी की महिमा को। श्रद्धा से नत हो गया उनका मस्तक भरत चरणों में।

इसमें सन्देह नहीं कि पुरवासियों की प्रसन्नता का कारण यही था कि मन में पूर्ण निश्चय हो गया कि भरत लौटने की प्रार्थना करेंगे। किन्तु महदाश्चर्य,

१०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कि श्री भरत ने ऐसा नहीं किया। कुछ लोग तो आज भी उनके व्यवहार को समझने में असमर्थ हो जाते हैं। समझना है भी कठिन, क्योंकि जो व्यक्ति सर्वसम्मत राज्य के प्रस्ताव को अस्वीकार कर चुका हो, जो राघवेन्द्र को राज्याभिषिक्त करने का दृढ़ निश्चय लेकर वन में आया हो, इतना ही नहीं अभिषेक की सामग्री भी साथ लाया हो। वह इस सुअवसर से जो उसे राघव ने दिया, लाभ न उठावे। साधारणतयः यह आश्चर्य की घटना प्रतीत होती भी है। तब फिर श्री भरत ने ऐसा क्यों किया ?

श्री भरत की विचारधारा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम जान लें कि वे प्रभु को क्यों ले जाना चाहते हैं ? क्या अपने ऊपर आए हुए कलंक का प्रक्षालन करने के लिए ? कदापि नहीं। क्योंकि वे तो "जानउँ राम कुटिल कर मोही, लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही" की स्वयं याचना करते हैं।

क्या विरह-व्यथा को शान्त करने के लिए ? असम्भव ! क्योंकि प्रभु को लौटाने के लिए वे सहर्ष सारा जीवन वियोगी बन करबिताने को प्रस्तुत है—"कानन करउँ जनम भरि बासू" ही उनका आदर्श वाक्य है।

फिर प्रश्न शेष ही रह जाता है कि वह कौन-सा कारण है जिसके लिए वे प्रभु को लौटाना चाहते हैं ? श्री भरत का ही नहीं समस्त प्रेमियों के जीवन का एक ही लक्ष्य है। "तत्सुखे-सुखित्वं"

प्रियतम के सुख में सुखी होना। उसका जीवन, उसकी मृत्यु—सब प्रियतम के लिए है—

जिएँ तो हरिहित ही जिएँ, मरैं तो हरिहित लागि।
जरो करैं बिरहाग्नि में, सरबस देवें त्यागि ।।

उसका लक्ष्य 'स्वसुख' हो ही कैसे सकता है। फिर 'कामी' और 'प्रेमी' में कौन-सा अन्तर शेष रह जाता ? स्वयं भरत ही लौटाने का कारण महर्षि के यहाँ बता चुके हैं—

मोहि न मातु करतब कर सोच, नहि दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू।
नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू, पितहु मरन कर मोहि न सोकू ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्त में वे कहते हैं--

एकहिं उर बस दुसह दवारी, मोहि लगि भे सिय राम दुखारो।
विनु पानन्हिन पयादेंहि पाए, शँकर साखि रहौं एहि धाये ।।

उन्हें पादत्राण विहीन, बल्कल वसनधारी प्रभु का वन-वन भटकना दुखद था। वे प्रभु के वनस्थ दुखों का नाश करना चाहते हैं, यही उनका परम ध्येय है। और केवल इसीलिए राघवेन्द्र को अवध ले जाना चाहते हैं। पर प्रभु ने एक ऐसा संकेत किया, जिसे समझने में प्रेमी को विलम्ब न लगा। कौशलेन्द्र कुमार ने कहा--"भरत मुझे पितृ-आज्ञा का उल्लंघन करने में मानस कष्ट होगा, किन्तु तुम्हारी इच्छा पर उसका भी उल्लंघन कर सकता हूँ।"

इससे सिद्ध क्या हुआ ? भरत का अनुरोध मानकर राघवेन्द्र लौट सकते हैं। उनका शारीरिक कष्ट दूर हो जायगा। किन्तु उसके बदले में एक ऐसा कष्ट होगा, जो उसकी अपेक्षा तीव्र है। "तासु बचन मेटत अति सोचू" --मानस पीड़ा। भरत के सामने निर्णय करने के लिए स्थिति स्पष्ट है। वन में रहने पर प्रभु को शारीरिक कष्ट होते हुए भी पितृ-आज्ञा-पालन सत्कर्म के नाते अतीव हार्दिक प्रसन्नता होगी। अवध लौटने पर शारीरिक कष्ट दूर हो जाएँगे, किन्तु उन्हें पितृ-आज्ञा भंग की मानस पीड़ा होगी। क्योंकि वे भरत के संकोच से ही ऐसा करने को प्रस्तुत हुए हैं--इसे वे स्पष्ट कह चुके हैं कि "तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू"। मानस और शारीरिक कष्ट में कौन अधिक भयानक है ? इसमें कोई विवादास्पद बात नहीं। सच पूछिये तो शारीरिक कष्ट और मानस कष्ट की तुलना ही नहीं हो सकती। मन प्रसन्न रहने पर शरीर को कष्ट का भान भी नहीं होता और समग्र बाह्यभोग प्राप्त हों, परन्तु मानस दुख हो, तो सब कुछ विषवत प्रतीत होने लगता है। क्या भरत प्रभु को बाह्य सुख देने के लिए मानस पीड़ा में डालना स्वीकार कर सकते हैं ? कदापि नहीं। श्री भरत सूक्ष्मदर्शी प्रेमी हैं, उन्हें अपनी वचन-रक्षा का कोई आग्रह नहीं। उनका लक्ष्य है 'तत्सुख'। उसके लिए वे सभी कष्ट झेलने को प्रस्तुत हैं। और इसीलिए उस महान प्रेमतत्वज्ञ ने प्रभु से लौटने का आग्रह नहीं किया। अपितु यही प्रार्थना की आप की प्रसन्नता ही हमारी प्रसन्नता है। आपके हृदय में जिससे थोड़ा भी कष्ट, संकोच न हो, वही कीजिए। बिना प्रमी के इतना अनाग्रही कौन हो सकता है। उनका सम्भाषण प्रेमामृत का सार सर्वस्व है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री भरत के भाषण का प्रत्येक अक्षर महत्वपूर्ण है। किन्तु जो सबसे महत्वपूर्ण और असाधारण बात है वह है ऐसी जागरूकता, जो विश्व इतिहास में थोड़े लोगों को प्राप्त है—वह है प्रभु द्वारा की गई प्रशंसा को कृपा के रूप में ग्रहण करना। बहुधा हम बहुतों के जीवन में विजय के बाद पतन होते देखते हैं, क्योंकि विजय प्राप्त करना सरल है, पर उस प्राप्त प्रशंसारूप महा शत्रु का प्रहार सहन कर लेना बिरले वीरों का कार्य है। श्रेष्ठ सत्कर्मों के पश्चात् अहंकार के उदय होने का अर्थ है सबसे भयानक शत्रु के हाथ बन्दी बन जाना। देवर्षि नारद के चरित्र द्वारा भी हम यही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। उनके लिए दुर्भाग्य का वह सर्वप्रथम क्षण था, जब उन्होंने काम और क्रोध पर विजय प्राप्त की। उसके पहले वे अहंकार शून्य थे, किन्तु काम के चले जाने के पश्चात् विजय श्री का प्रहार वे सहन न कर सके। अहंकार के बन्दी बनकर वे पहले की अपेक्षा भी असमर्थ हो गए। प्रभु द्वारा की गई प्रशंसा को भी यदि वे उचित रूप में ग्रहण कर पाते—उस अवसर पर जो बात उन्होंने मुख से कही—"नारद कहा सहित अभिमाना, कृपा तुम्हारि सकल भगवाना" वही यदि वे हृदय से कह पाते, तो आगे चलकर उन्हें हास्य का पात्र न बनना पड़ता। पर नटनागर को तो उनके द्वारा शिक्षा देनी थी। आज श्री भरत के समक्ष साधारण अवसर नहीं। प्रभु ने उन्हें विश्व में सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति बताया। उनके नाम-जप से समस्त पाप-तापों का उपशमन होना स्वीकार किया। भूमि रक्षक की उपाधि दी। और सबसे आगे आत्मसमर्पण कर दिया। क्या यह अभिमान का पूर्ण अवसर न था? किन्तु श्री भरत अप्रतिम जागरूक हैं। उन्होंने प्रशंसा सुनी और हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो गया। अहो! हमारे प्रभु का कैसा सरल स्वभाव है कि हम जैसे तुच्छ जन को भी इतना महत्वपूर्ण घोषित कर रहे हैं। और तब वे राघवेन्द्र की कृपालुता में तन्मय हो जाते हैं। वहाँ अहंकार के आने का अवसर कहाँ?

इस पृष्ठभूमि पर ही भरत भाषण का किंचित महत्व हम हृदयंगम कर सकते हैं। गोस्वामीजी के शब्दों में ही उस भाषण का आनन्द लीजिए—

स्वारथ नाथ फिरे सबहीं का, किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका।
यह स्वारथ परमारथ सारु, सकल सुकृत फल सुगति सिंगारु॥

देव एक बिनती सुनि मोरी, उचित होइ तस करब बहोरी।
तिलक समाजु साजि सब आना, करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दो०　सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सबहिं सनाथ ।
　　न तरु फेरिअहि बन्धु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ ।।

न तरु जाहिं बन तीनिऊ भाई, बहुरहिं सीय सहित रघुराई ।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई, करुना सागर कीजिय सोई ।
देवँ दीन्ह सब मोहि अभारू, मोरे नीति न धरम बिचारू ।
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू, रहत न आरत के चित चेत ।
उतर देइ सुनि स्वामि रजाई, सो सेवक लखि लाज लजाई ।
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू, स्वामि सनेहँ सराहत साध ।
अब कृपालु मोहि सो मत भावा, सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ।
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ, जग मंगल हित एक उपाऊ ।

दो०　प्रभु प्रमन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।
　　सो सिर धरि धरि करिहिं सब, मिटिहि अनट अवरेव ।।

सर्व-भावेन आत्मसमर्पण का इससे उत्कृष्ट दृष्टान्त मिलना कठिन है। इसके पूर्व श्री भरतजी के श्री मुख से अनेकों वार स्नेहपूरित भाषण हुए। किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि उनमें भी यह सार रूप है। यदि हम ध्यान से देखें तो जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कि वे सिद्ध होते हुए भी साधक का-सा आचरण करते हैं। उसी के अनुकूल उनके भाषण में विकास है। यद्यपि वे सहज स्नेही हैं। किन्तु हम चाहें तो उनके प्रारम्भ से लेकर अब तक के भाषणों से साधना का एक क्रम भी निकाल सकते हैं।

सबसे पहले व्यथाभरी वाणी में वे कैकयी अम्बा से जो कुछ कहते हैं, उसमें "नैराश्य" का घोर चित्र अंकित है। मानो वह साधना का श्री गणेश है। जहाँ साधक को प्रतीत होता है कि संसार विश्वस्त नहीं है। चारों ओर से उसे निराशा ही निराशा प्राप्त होती है। माँ की ओर देखते हैं, तो निराश होकर कहते हैं—

जननी तू जननी भई, बिधि सन कछु न बसाए ।

पिता के कार्यों पर ध्यान गया तो निराशा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भूप प्रतीत तोर किमि कीन्ही, भरत काल बिधि मति हरि लीन्ही।

अपनी ओर से भी नैराश्य--

राम बिरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि ।।

उस "घोर नैराश्य" में फिर आशा का उदय होता है, सन्त-हृदया कौशल्या अम्वा के यहाँ जाने पर। वहाँ जाने पर उन्हें जो अगाध वात्सल्य मिला, जिस विश्वास से वे मिलीं, वह सहारा देता है। मानो "नैराश्य" के घोर अंधकार में प्रकाश का उदय हुआ। उसके पश्चात् भरत मुख से जो वाणी निकली, वह साधक की निश्छलता का सन्देश देती है। उनकी सपथ पवित्रता की प्रेरणा देती है। सपथ के द्वारा उन्होंने धर्म का ही उपदेश दिया।

इसके पश्चात् अयोध्या की राज्यसभा का भाषण "उत्कट वैराग्य" से ओत-प्रोत है। जहाँ सभी लोग राज्य का प्रलोभन देना चाहते हैं, किन्तु उस अविचल व्रती का विवेक जाग्रत है--

देखे बिनु रघुबीर पद, जिय की जरनि न जाए।

वह समस्त प्रस्तावों को ठुकरा कर "प्रभु-दर्शन" का निर्णय करता है।

मार्ग में मिलनेवाली गंगा से भी वह भक्ति की याचना करता है। "निज निज धर्म निरत श्रुति रीती" का पालन तो हो ही रहा है, मातृ चरणों की सेवा, आज्ञा-पालन आदि से। निषाद राज के समक्ष भरत मुख से निकली हुई वाणी में "दैन्य" का आधिक्य है। "दैन्य प्रियत्वाच" महर्षि नारद के वचनों का यहाँ पूर्ण निर्वाह होता है--

मै धिग धिग अघ उदधि अभागी, सबु उतपात भयउ जेहि लागी।

यह उसके 'दैन्य' का स्वरूप है। आगे चलकर सेवकों के समक्ष कही गई बात "सेवक-धर्म" की जागरूकता का प्रमाण है।

यमुना गंगा की गौर धारा को देखकर प्रभु की ही स्मृति इस स्थिति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का सूचक है जब मानो प्रत्येक वस्तु प्यारे की स्मृति का कारण बने। तीर्थराज से की गई याचना प्रेमी हृदय की "निष्कामता" का सूचक है—

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वाण।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन ।।

महर्षि भरद्वाज के समक्ष का भाषण "अनुरागी हृदय" की भावनाओं को व्यक्त करता है। उसका अपना दुख कुछ नहीं, वह केवल प्रभु के दुख से दुखी है—

लषन राम सिय बिनु पग पनही, करि मुनि वेष फिरहिं बन बनही।
एहि दुख दाह दहत नित छाती, भूख न बासर नींद न राती ।।

किन्तु अभी उस दुख निवृत्ति का उपाय वह स्वयं सोच रहा है। चित्रकूट के आश्रम में गुरु वशिष्ठ के समक्ष का भाषण उनकी अविचल "गुरु-निष्ठा" का सूचक है। उसमें साध्य का निर्णय होने पर भी साधन के लिए गुरु में ही विश्वास है—

पूछिय मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभागु।

में साधना के विषय में "गुरु चरणाश्रय" की सूचना मिलती है। यहाँ साधक को पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव का निर्देश ही उचित होगा। गुरुदेव द्वारा उपाय बताए जाने पर हर्षपूर्ण दूसरा भाषण उनके गुरु द्वारा बताए गए साधनों पर, "अचल निष्ठा" का सूचक है—

जौ फुर कहहु तो नाथ निज, कीजिए बचन प्रमान।

पुनः गुरुदेव के द्वारा भगवान के प्रति 'शिष्यार्पण' है। उसके बाद श्री भरत का वह भाषण है, जिसमें उनकी समस्त व्यथा, जिस कारण वे प्रभु को वन से लौटाना चाहते हैं, का व्यक्तीकरण है। किन्तु अब भी अपनी इच्छा, अपना विचार शेष है। इसके पश्चात् प्रभु द्वारा प्रशंसा मानो 'शरणागत की स्वीकृति' है। वे उसे अपना स्वीकार करते हैं। और प्रेमी की इच्छा पर सब कुछ करने को प्रस्तुत हैं। किन्तु श्री भरत का अन्तिम भाषण बताता है कि साधना की चरम स्थिति तब है, जब प्रेमी में अपनी कोई इच्छा शेष न रहे।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मानो "सर्वात्मना समर्पण" हो गया। अब वह प्रभु से भी यही कहता है कि आप जो कहें वही हो—

मालिक तेरी रज़ा रहे औ तू रहे, बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरज़ू रहे।

इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी भाषण अपने आप में पूर्ण होते हुए भी साधना और विकास की दृष्टि से हमें 'नैराश्य' से उठाकर 'आत्मसमर्पण' तक ले जाते हैं। इस प्रकार श्री प्रेम-मूर्ति का आचरण लोक-संग्रह के निमित्त न होते हुए भी लोकसंग्रह बन जाता है। उनका भाषण उपदेश के लिए न होते हुए भी परमोपदेश बन जाता है। प्रेम-मूर्ति श्री भरत का सहजाचरण साधक के लिए सर्वोत्कृष्ट साधन पद्धति है और सिद्ध के लिए पूर्ण प्रेम का प्रतीक। जीवन का कोई पवित्र अंग ऐसा नहीं है, जिस पर भरत-चरित्र से प्रकाश न पड़ता हो।

श्री भरत का भाषण समाप्त होते ही देवता आकाश से पुष्प-वृष्टि करने लगे। चारों ओर से साधु-साधु की ध्वनि गूंजने लगी। प्रेमी ने 'स्वसुख' का सर्वथा बलिदान कर के विश्व की रक्षा कर ली। यह सोचना स्वार्थी देवताओं के लिए असम्भव था कि वे ऐसा करेंगे। भगवान राम के ऐसा कह देने पर "भरत कहें सोइ किए भलाई" पर देवता काँप उठे थे। किन्तु वे क्या जानें इस रस रहस्य को। "भगवतरसिक—रसिक की बातें, रसिक बिना कोउ समुझि सकेना।" वास्तव में श्री भरत का यह आत्म बलिदान न केवल स्वार्थी देवताओं के लिए आश्चर्य जनक था, अपितु पुरवासियों के लिए भी था। यद्यपि वे रामानुरागी थे, परन्तु प्रेम के उस स्तर पर नहीं पहुँच पाए थे, जहाँ श्री भरत। उनको 'अहं' का सर्वथा विस्मरण नहीं हो पाया था। जहाँ किंचित 'स्व' शेष है, वहाँ इस रहस्य को समझने में असमर्थता ही रहेगी। इसीलिए गोस्वामीजी को कहना पड़ा—

असमंजस बस अवध निवासी।

निर्णय का संकेत हो जाने पर भी नियमानुकूल अभी निर्णय नहीं हुआ था, क्योंकि भरत के इस महात्याग को देखकर प्रभु भी संकोच में पड़ जाते हैं और निर्णय स्पष्ट नहीं कर पाते। उसी समय महाराज श्री जनक के आगमन की सूचना मिलती है और उसी स्थिति में सब चल पड़ते हैं। सभा समाप्त हो जाती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

× ×

महाराज श्री विदेह की एकान्त पर्णकुटी। श्री सुनयनाजी कुछ समय पूर्व ही श्री कौशल्या से मिलकर आई हैं। वहाँ से कौशल्याजी का एक विशष प्रस्ताव लेकर लौटी हैं। वह है––"लक्ष्मण जी घर को लौट जाएँ और राघवेन्द्र के साथ भरत वन को जाएँ।" क्यों? इसका कारण वहाँ स्पष्ट किया जा चुका है। कौशल्या अम्वा भरत के त्याग और स्नेह को देखकर मुग्ध हैं। यह तो एक प्रकार से निश्चित ही हो चुका है कि प्रभु वन जाएँगे। ऐसी परिस्थिति में भरत आज्ञा-पालन की दृष्टि से अवध लौट सकते हैं, किन्तु उन्हें जितना कष्ट होगा, उसकी कल्पना वात्सल्यमयी अम्वा को अच्छी नहीं लगती––

गूढ़ सनेह भरत मन माँहीं, रहे नीक मोहि लागत नाहीं।

के द्वारा उन्होंने अपने भाव व्यक्त कर दिए।

वही प्रस्ताव सुनयनाजी ने योगिराज जनक के समक्ष रखा। इसके पूर्व की समस्त घटनाएँ महाराज सुन चुके हैं और प्रत्येक में भरत की महानता का दर्शन होता है। उस महास्नेही का स्मरण होते ही शरीर में रोमांच हो आया और आँखों में प्रेमाश्रु। मन-ही-मन कुछ क्षणों तक भरत की प्रशंसा करते रहे। कवित्व स्फुरित हुआ––उपमा देने की इच्छा जाग्रत हुई, पर ढूँढने पर भी प्राप्त नहीं होती। तव एक कल्पना करते हैं––

सोन सुगंध सुधा ससि सारू।

भरत का व्यवहार मानो स्वर्ण और सुगन्ध का संयोग है। यहाँ श्री भरत का 'नित्य सनेह' ही स्वर्ण है, जो विरहाग्नि में डालने पर और भी चमक उठा––

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहे, तिमि प्रियतम पद प्रेम निबाहे।

भरत द्वारा पूर्ण प्रेम का निर्वाह स्वच्छ स्वर्ण है। स्वर्ण में सुगन्ध नहीं होती, फिर भी सभी आदरपूर्वक धारण करते हैं। पर यदि कहीं उसमें सुगन्ध आ जाए, तो कहना ही क्या! भरत के प्रेम स्वर्ण में सौरभ भी है। वह सौरभ उनका शील है। प्रभु ने उन्हें निर्णय का अधिकार दे दिया। फिर भी वे राघवेन्द्र को रंच मात्र संकोच में नहीं डालना चाहते, भले ही स्वयं को विरहाग्नि में जलना पड़े। यह शील ही प्रेम स्वर्ण में सुगन्ध है, जो सिद्ध रसिक मधुपों को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भी अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ होता है। सिद्ध जन भी इस उच्च मनस्तर की याचना करते हैं। जहाँ "स्वसुख" का लेश न रहे। किन्तु श्री जनक को इस उपमा से भी सन्तोष न हुआ। स्वर्ण में तेज और स्थैर्य होने पर भी काठिन्य है और सुगन्ध तो केवल नासिका द्वारा मानसतृप्ति ही प्रदान कर सकता है, स्थायी रस या लाभ नहीं। तब कहते हैं 'सुधा'—अमृत के समान द्रव्य, तरल, मधुर, सुस्वाद और पान करने पर अमरत्व का दान देनेवाली— "राम भगत अब अमिय अघाहू।" मधुरता ही मधुरता। अभिप्राय यह कि यद्यपि ऐसे भी प्रेमी हैं जो हैं तो अतीव स्नेही, किन्तु उनका व्यवहार अटपटा है। जैसे केवट जी। स्नेह होते हुए भी बड़े अटपटे शब्दों में अस्वीकृति देते हैं। मारीच को गोस्वामीजी प्रेमी स्वीकार करते हैं "चला राम पद प्रेम अभंगा" किन्तु उसका व्यवहार अटपटा ही नहीं, कड़ुवा भी है। अतः उपरोक्त प्रेमियों के व्यवहार को 'सुधा' नहीं कह सकते, किन्तु भरत का व्यवहार 'सुधा' है।

वह सुधा भी विशिष्ट ही है। "सुधा ससि सारू"। साधारण सुधा का पानकर के देवगण निर्भीक हो गए, किन्तु उसके साथ ही उनमें उन्मत्तता आई और दैत्यों का नाश कर के भोग वासना में लग गए। साथ ही यह सुधा ईर्ष्या का भी कारण बन गई। देवगण इसे दूसरे को नहीं देना चाहते थे और इसके लिए बड़े-बड़े संग्राम हुए। किन्तु चन्द्रमा में रहनेवाला अमृत लोक-कल्याण-कारी है। वनस्पतियों को शक्ति प्रदान करता है। सन्तप्तों को शीतलता का दान देता है। और अपनी सुधा-वृष्टि सब जीवों पर समान रूप से करता रहता है मानो यह सुधाकर 'सन्त' है—

शरदातप निशि शशि अपहरई, सन्त दरश जिमि पातक टरई।

इसी प्रकार भरत स्नेह व्यवहार भी "शशि-सार-सुधा" है। अखिल लोक कल्याणकारी है। विषय-ताप-सन्तप्त जनों को भक्ति की शीतलता का दान देता है। साधक रूप वनस्पतियों को पुष्टि दान देता है और चकोर रूप सिद्धों को आह्लाद का दान।

इस प्रकार मन-ही-मन श्री भरत के सुयश की सराहना करने के पश्चात् वे अपने नेत्र खोलते हैं और देवी सुनयना को सम्बोधित कर के भरत-यश कहना प्रारम्भ करते हैं—

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि, भरत कथा भव बन्ध बिमोचनि।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

'सुमुखि' 'सुलोचान' भी यहाँ साभिप्राय है। तुमने भरत की चर्चा की इसलिए 'सुमुखि' हो, और नेत्रों से भरत जैसे प्रेमी का दर्शन किया, इसलिए 'सुलोचनि' हो। यही इनका अभिप्राय जान पड़ता है। उसके पश्चात् महाराज ने जो शब्द कहे हैं, वे बड़े ही महत्वपूर्ण है। अतः संक्षेप में सब पर कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक जान पड़ता है।

सबसे पहले अपनी असमर्थता का वर्णन श्री जनकजी ने किया—

धरम राज नय ब्रह्म बिचारु, इहाँ जथा मति मोर प्रचारु।
सो मति मोर भरत महिमाही, कहइ काह छलि छुअत न छाही ॥

देवि ! मेरी बुद्धि धर्म, राजनीति और ब्रह्म विचार में कुछ प्रवेश रखती है। किन्तु मेरी वह मति भरतमहिमा का वर्णन भला कैसे करे ? जब छल कर के भी उसकी छाया को स्पर्श नहीं कर पाती।

यहाँ श्री भरत की महिमा का प्रधान अभिप्राय उनका 'प्रेम' है। 'प्रेम' को महानुभावों ने 'अनिर्वचनीय' माना है। क्योंकि वह सूक्ष्मतर है।

गुण रहितं, कामना रहितं, प्रतिक्षण वर्धमानं, अविच्छिन्नं
सूक्ष्मतरं, अनुभव रूपं प्रेमस्वरूपं (ना० सू० ५४)

वह प्रेम जिसके हृदय में है, उसके लिए अनुभव रूप है। फिर सूक्ष्मतर होने से दूसरे की बुद्धि उसमें कैसे प्रविष्ट हो सकती है। अतः इस वास्तविक प्रेम का स्पर्श तो होने से रहा। तब उसकी छाया का ही स्पर्श करें। छाया का अभिप्राय है प्रेम का बाह्य लक्षण—जो प्रेमी के शरीर अथवा उसकी चेष्टा द्वारा प्रगट होता है। बाह्य चेष्टा को देखकर भी किंचित अनुमान किया जाता है हृदयस्थ भावों का—पुष्पवाटिका में सखी के शरीर में रोमांच, आँखों में अश्रु देखकर अन्य सखियों ने अनुमान कर लिया था। यदि इसी प्रकार श्री भरत की छाया का स्पर्श करना चाहें, तो यहाँ तो वह भी सम्भव नहीं है। छाया तो पड़ती है। अभिप्राय यह है कि सात्विक भावों का उदय तो शरीर में होता है।

पुलक शरीर सभा भए ठाढ़े, नीरज नयन नेह जल बाढ़े।

किन्तु इससे भरतजी की विचारधारा का अनुमान नहीं किया जा सकता। उनकी विचार-पद्धति सर्वथा अलौकिक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण के लिए हम उसी प्रसंग को ले लें, जहाँ यह चौपाई है। सभी लोगों ने यह कल्पना की थी कि वे अब लौटने का प्रस्ताव करेंगे। किन्तु उनका अनुमान भ्रामक सिद्ध हुआ। अतः महिमा ही नहीं उसकी छाया का भी स्पर्श नहीं किया जा सकता। 'छलि' शब्द का अभिप्राय है धोखे से भी। जैसे महर्षि ने चतुराई से भरत के हृदय की बात जान लेनी चाही, किन्तु वे तो न जान सके और अपना भेद बता बैठे। भरत अथाह समुद्र ही बने रहे। "पावत नाव न बोहित बेरा"।

अतः श्री भरत अनिर्वचनीय हैं। किन्तु अनिर्वचनीय होने का यह अर्थ नहीं कि वे समाज के लिए निरर्थक हैं—अपितु परम कल्याणकारी हैं।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद कवि कोविद बुध बुद्धि बिशारद।
भरत चरित कीरति करतूती, धरम शील गुन बिमल बिभूती।
समुझत सुनत सुखद सब काहू, सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू।

उपरोक्त चौपाई में नव व्यक्तियों के नाम गिनाए गए हैं, जो तीनों लोक का प्रतिनिधित्व करते हैं। विधि, गणेश, शिव और शारदा स्वर्ग लोक का, भगवान शेष पाताल लोक का और कवि, ब्रह्मज्ञानी, बुध और विशेष विद्वान मृत्युलोक का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोस्वामीजी का नव अंक के प्रति एक विशेष अनुराग है। इसका कारण अंकशास्त्र में नव का स्थान सबसे बड़ा है। इसलिए वे बहुत्व के प्रतिपादन में नव का ही सहारा लेते हैं। उदाहरण स्वरूप—

१
..............तुम चाहहु पति सहज उदासा।
२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
निर्गुन, निलज, कुवेष, कपाली, अकुल, अगेह, दिगम्बर, व्याली।

ठीक इसके विपरीत ऋषियों ने विष्णु में बहुत गुण दिखाए वह भी—

१ २ ३ ४ ५
अति सुन्दर, शुचि, सुखद, सुशीला, गावहिं वेद जासु यश लीला।

६ ७ ८ ९
...दुषन रहित, सकल गुनराशी, श्रीपति पुर, वैकुण्ठ निवासी।

किंवा प्रभु किसी भी प्रकार का पापी हो उसे शरण में ले लेते हैं। वहाँ भी नव प्रकार के पापियों का उल्लेख है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
कूर, कुमति, खल, कठिन, कलंकी, नीच, निशील, निरीश, निशंकी।

ऐसे अनेक उद्धरण दिए जा सकते हैं। भरत-चरित्र सबको सुखद है। यह प्रदर्शित करने के लिए वे नव व्यक्तियों का उल्लेख करते हैं। उनका चरित्र, कीर्ति, कर्त्तव्यज्ञान, धर्म-पालन, शील, गुण, निर्मल, ऐश्वर्य आदि गुण तो स्पष्ट हैं। वे समझने और सुनने में भी सुखद हैं। अभिप्राय यह है कि भले ही उनकी महिमा को हम पूर्ण रीति से न जान सके––उनके प्रेम तक किसी की पहुँच न हो। पर अनेक ऐसे भी गुण हैं, जिन्हें हम हृदयंगम कर सकते हैं–– इनसे लाभ उठा सकते हैं। नव गुणों में दो गुण 'प्रेम' और उनकी महानता से ओत-प्रोत व्यवहार यह तो अनिर्वचनीय है। किन्तु इनके साथ ही उनमें अन्य सात गुण हैं, जो लोक मंगलकारी हैं। पवित्रता में गंगा की अपेक्षा भी वे श्रेष्ठ हैं। गंगा-स्नान का फल शारीरिक शुद्धि और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग है। किन्तु इनके गुणों में अवगाहन करने से मुक्ति और प्रेम दोनों सुलभ हो जाता है। स्वाद में सुधा को भी लज्जित करनेवाला है। सुधा एक मात्रा तक ही पान की जाती है, किन्तु भरत-चरित्र-सुधा का पान करने से पान की इच्छा बढ़ती ही जाती है। कल्याण की दृष्टि से तो कोई तुलना हीं नही। पवित्रता और सुस्वादु दोनों गुण एकत्र होना कठिन है। पञ्चगव्य पवित्र तो है, किन्तु सुस्वादु नहीं। अतः उसका प्रासन सब नहीं कर सकते। भरत-चरित्र श्रवण मधुर भी है। अतः सहज ही सबका कल्याण करने में समर्थ है।

इतना कहते-कहते योगिराज सावधान हो गए। उन्होंने सोचा मैंने गुणों की गणना करा दी है। कुछ वस्तुओं से तुलना भी की है। अतः कोई उन्हें इनमें ही सीमित न मान ले। फिर पुनः कहते हैं–––

निरवधि गन निरुपम पुरुष, भरत भरत सन जानि।
कहिए सुमेरु कि सेर सम, कविकुल मति सकुचानि।।

विश्व की समस्त उपमाएँ सेर के सदृश हैं। अर्थात् जैसे तुला के एक पलड़े पर सेर रखकर सेर से वस्तुओं को तौला जाता है और बता दिया जाता है कि इस वस्तु की कितनी गुरुता है। इसी प्रकार उपमा देकर लोगों का भार निश्चित किया जाता है। किन्तु क्या सुमेरु को सेर के द्वारा तौलने का प्रयास कोई बुद्धिमान कर सकता है ? नहीं। इसी प्रकार श्री भरत रूप सुमेरू को भी उपमाओं द्वारा नहीं समझा जा सकता।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किन्तु महाराज को लगा जैसे मुझसे पुनः भूल हो गई। उपमा का खण्डन करते हुए भी मैंने उनकी महिमा को सुमेरु कह ही डाला। इस बार अपनी असमर्थता को ही उपमा द्वारा व्यक्त करते हैं––

अगम सबहिं बरनत बर बरनी, जिमि जलहीन मीन गमु धरनी।

भरतमहिमा का वर्णन उसी प्रकार असम्भव है, जैसे जलहीन भूमि पर मत्स्य का चलना। कवित्व शक्ति ही मीन है––

धुनि अवरेव कवित गुन जाती, मीन मनोहरते बहुँ भाँती।

लोगों के यश रूप जल में ही वह अपने तैरने की कला का प्रदर्शन करती है। विविध प्रकार से अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए पार कर सकती है। किन्तु भरतमहिमा जल नहीं––भूमि है। इसे यों स्पष्ट किया जा सकता है कि जल का आधार भी पृथ्वी ही है––

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई, कोटि भाँति कोउ करई उपाई।

उसी प्रकार समस्त यश जल भरत के किञ्चित् गुणों के ही आश्रित हैं। उनके एक भी गुण का अनुकरण करने से यश प्राप्त हो सकता है। यही आश्रित होना है। भरतजी आश्रय हैं। इसका अभिप्राय यही है कि भरत समस्त-गुणगणाश्रय प्रभु के सदृश ही हैं। तद्रूप हैं। अतः जैसे मीन का कार्य जल तक सीमित है, थल में एक पग भी नहीं चल सकती, उसी प्रकार भरतमहिमा का वर्णन भी असम्भव है।

महाराज ने कहा कि "अधिक क्या भरत महिमा राम को छोड़ कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जानता, किन्तु वे भी वर्णन नहीं कर सकते"––

भरत महा महिमा सुनु रानी, जानहिं राम न सकहिं बखानी।

इसके पश्चात् ज्ञान-मुकुट-मणि कौशल्याजी के प्रस्ताव पर आते हैं। पहले हमें कौशल्याजी के प्रस्ताव की भावना पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। उनके प्रस्ताव की मूल भित्ति इस धारणा पर आश्रित है कि श्री भरत के हृदय में राम के प्रति गूढ़ स्नेह है। यद्यपि वे स्पष्ट रूप से यह नहीं कहेंगे कि आप लक्ष्मण को लौटाकर मुझे साथ ले चलें, किन्तु उनके हृदय में यह इच्छा अवश्य

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

होगी। प्रभु यदि लक्ष्मण को साथ ले गए, तो तपस्वी भरत उसे सहन तो कर लेंगे, किन्तु उन्हें भीषण मानस कष्ट होगा कि राघवेन्द्र ने मुझे साथ ले जाना उपयुक्त न समझा। किन्तु यह तो कौशल्या माता का वात्सल्य है, जो उन्हें ऐसा सोचने को बाध्य करता है। प्रश्न है कि अम्बा का यह तर्क उपयुक्त है या नहीं? जहाँ तक साधारण व्यक्ति कल्पना कर सकते हैं सभी को ऐसा प्रतीत होगा कि अम्बा का तर्क उचित है। इसी के समर्थन में महाराज ने कहा भी कि--

बहुरहि लषन भरत बन जाहीं, सब कर भल सबके मन माँहीं।

किन्तु श्री भरत की भी यही विचारधारा है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनका प्रेम तर्क का विषय नहीं। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ तार्किक का तर्क भी उनके विषय में झूठा सिद्ध होगा। इसीलिए श्री जनक ने कहा कि लोगों का अपनी दृष्टि से ऐसा सोचना उपयुक्त है। फिर भी यह सत्य नहीं। बड़ी ही बुद्धिमानी से इसका कारण बताते हैं--

देवि परन्तु भरत रघुबर की प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।

इस बात को वे और भी स्पष्ट करते हैं। श्री भरत ममता और प्रेम की सीमा हैं और राघवेन्द्र समता की सीमा हैं। उनकी दृष्टि में भरत और लक्ष्मण में भेद कैसे संभव है? एक को लौटाना, दूसरे को ले जाना बिना विषम हुए कैसे हो सकता है। अतः प्रभु की ओर से ऐसा प्रस्ताव असम्भव है। यदि कहा जाय कि परिणामस्वरूप भरत को दुख होगा, तो यह भी भ्रामक है। जैसे समत्व की सीमा होने से राघव ऐसा नहीं सोचेंगे, उसी प्रकार स्नेह और ममत्व के कारण भरत को भी दुःख न होगा। इसे और भी स्पष्ट यों समझना चाहिए कि जहाँ ममत्व और प्रेम पूर्ण होता है, वहाँ प्रिय की किसी क्रिया में दोष नहीं दीखता। कठोर क्रिया भी प्रेममय दीखती है।

चढ़त न चातक चित कबहूँ, प्रिय पयोद के दोष।
ताते प्रेम पयोधि को, तुलसी नाप न जोख॥

चातक के ऊपर मेघ पत्थर बरसावे और अन्यों को जल दे, तो भी चातक के हृदय में यही भाव आता है कि "अहा! मेघ का मुझ पर कितना अपनत्व है। परायों का ही सत्कार पहले किया जाता है। तभी तो वह दूसरों को जीवन-दान दे रहा है।" यदि कोई पूछ दे कि "फिर भला तुम पर पत्थर क्यों बरसाता है?" तो वह उत्तर देता है। "तुम क्या जानो, वह कठोरता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

द्वारा स्नेह छिपाता है। साथ ही मेरे यश की वृद्धि भी तो करना चाहता हैं"—

प्रेम न परखिअ परुषपन, पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसे मेह ।।

ममत्व और स्नेह की सीमा होने के कारण श्री भरत के हृदय में निष्ठुरता की कल्पना ही उत्पन्न नहीं हो सकती। वे उसमें भी प्रभु का स्नेह और ममत्व ही देखेंगे। फिर लक्ष्मणजी को लौटाकर स्वयं जाने की आकांक्षा श्री भरत के हृदय में क्यों उत्पन्न होगी? स्वार्थ को छोड़ भले ही वह साहचर्य सुख का स्वार्थ हो, ऐसी आकांक्षा कैसे उत्पन्न हो सकती है। जहाँ तक मैं समझता हूँ श्री भरत तो स्वप्न में भी स्वार्थ-परमार्थ की बात नहीं सोचते हैं—

परमारथ स्वारथ सुख सारे, भरत न सपनेहु मनहुँ निहारे।

महाराज के कहने का अभिप्राय यही है कि हम लोग ऐसा प्रस्ताव इसीलिए करते हैं कि प्रभु-साहचर्य-सुख-रूप-परमार्थ के प्रति हमारी महत्व दृष्टि है। पर भरत का मन समस्त सुखों को छोड़ केवल चरण प्रेम को ही अपना साधन व साध्य दोनों मानता है—

साधन सिद्धि राम पग नेहू, मोहि लखि परत भरत मत एहू।

"प्रियतम साथ रखें या त्याग दें। जीवन भर विस्मृत रखें। किन्तु उनके चरणों में मेरा स्नेह बना रहे।" यही है सच्चे प्रेमी की आकांक्षा। और श्री भरत चाहते भी यही हैं—

जलद जनम भरि सुरति बिसारउ, जाचत जल पवि पाहन डारउ।
चातक रटनि घटे घटि जाई, बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई।

अतः साथ न रखने से उन्हें क्षोभ होगा यह धारणा भ्रामक है। श्री भरत की प्रसन्नता प्रभु के ही आश्रित है। वे उनकी आज्ञा का हृदय से पालन करेंगे। राघवेन्द्र की इच्छा के विरुद्ध सच्चे प्रेमी के मन में कोई संकल्प उठ ही नहीं सकता है—

भोरेहुं भरत न पेलिहहि, मनसहु राम रजाइ।
करिअ न सोच सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ ।।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वास्तव में ज्ञान-अग्रगण्य गूढ़ प्रेमी महाराज जनक श्री भरत हृदय के अधिक पारखी सिद्ध होते हैं अन्य सभी लोगों की अपेक्षा। और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि दोनों ही गूढ़ प्रेमी हैं––

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।
बन्दउँ परजन सहित बिदेहू, जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।

दोनों एक ही प्रेमधारा के उपासक होने के नाते अन्यों की अपेक्षा अधिक निकट हैं। महाराज की ही विचारधारा ऐसी जान पड़ती है, जिसमें भरत-विचारों के प्रति अन्याय नहीं किया गया है––

भगवत रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।

× × × ×

महर्षि वशिष्ठ, महात्मा विश्वामित्र, महाराज जनक आदि मिलकर श्री भरत की पर्णकुटी पर आते हैं। श्री भरत ने सबका यथा योग्य सत्कार कर के आसन दिया। बैठने के पश्चात् महाराज श्री ने सबका प्रतिनिधित्व करते हुए सब लोगों का यहाँ आने का कारण बताया––

तात भरत कह तेरहुत राऊ, तुमहि बिदित रघुबीर सुभाऊ।

दो० राम सत्य ब्रत धरमरत, सब कर सील सनेहु।
सँकट सहत सँकोच बस, कहिअ जो आयसु देहु॥

इसके पश्चात् श्री भरत के मुख से "सेवा-धर्म" का दिव्य रहस्य प्रगट हुआ। किन्तु उसके पूर्व उनका सहज दैन्य जागृत हो बोल उठा––

सुनि तन पुलकि नयन भरिबारी, बोले भरत धीर धरि भारी।
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू, कुल गुरु समहित माय न बापू।
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू, ग्यान अम्बु निधि आपुनु आजू।
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी, जानि मोहि सिख देइय स्वामी।
एहि समाज थल बूझब राउर, मौन मलिन मैं बोलब बाउर।

अपने को 'बाउर' और 'मलिन' मन माननेवाले महापुरुष के मुख से,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जिस सेवा-धर्म का प्राकटय हुआ, वह उनकी पवित्र निःस्वार्थ दृष्टि का सबसे बड़ा प्रमाण है—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना, सेवा धरम कठिन जग जाना।
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू, बैर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू।

थोड़े शब्दों में उस महापुरुष ने समग्र शास्त्र-पुराणों का सार ही व्यक्त कर दिया। सभी शास्त्र सेवा-धर्म को अत्यन्त कठिन बताते हैं। प्रश्न होता है कि सेवा-धर्म में क्या कठिनाई है? उत्तर स्पष्ट है। सेवा-धर्म और स्वार्थ में विरोध है। व्यक्ति के लिए स्वार्थ त्याग अतीव दुष्कर है। क्योंकि जब तक 'स्व' का भान है, तब तक स्वार्थ कैसे छोड़ा जा सकता है। मनुष्य के लिए प्रेम का त्याग ही कठिन है। श्रेय का त्याग तो दूर की बात रही। सेवक को तो 'श्रेय' का भी लोभ नहीं होना चाहिए, क्योंकि 'श्रेय' निम्नकोटि का स्वार्थ न होते हुए भी उच्च कोटि का स्वार्थ या परमार्थ तो है ही। इसी दृष्टि से मानस में मुनियों को भी स्वार्थी ही कहा गया है—

सुर नर मुनि सब की यह रीती, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।

जहाँ किंचित् भी स्वार्थ है, वहाँ सेवा-धर्म का निर्वाह भले ही वह ऊपर से निर्वाह-सा प्रतीत होता हो, होना सम्भव नहीं है। क्योंकि सेवक को सर्व-स्वार्पण करना पड़ता है। वस्तु त्याग वह भले ही कर दे, पर 'स्व' त्याग नहीं कर सकता। इस बात को वे एक उदाहरण से और भी स्पष्ट कर देते हैं—

बैर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू।

बैर अन्धा और प्रेम विवेकहीन होता है। कहने का तात्पर्य यह कि स्वार्थ के दो ही परिणाम होते हैं—बर अथवा प्रेम। यदि स्वार्थ पूर्ति न हुई, तो विरोधी भावना का उदय होगा। क्रोध में अन्धा होकर वह उचित-अनुचित का विचार छोड़ देगा। मानस में इसका उदाहरण स्पष्ट है—देवर्षि नारद का चरित्र।

स्वार्थ में ठेस लगते ही प्रभु के गुणगायक को उनकी प्रत्येक क्रिया में अवगुण दीखने लगा।

स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा नीच व्यवहार।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह शब्द नारद के नहीं, स्वार्थ के हैं। परिस्थिति इतनी जटिल हो जाती है कि प्रभु सामने खड़े हैं। पर उनका वास्तविक स्वरूप उन्हें नहीं दीखता और क्रोधान्ध होकर शाप दे देते हैं।

स्वार्थ का दूसरा परिणाम है 'प्रेम'। 'स्व तृप्ति' हुई तो राग हो गया। उसने कुछ मधुर बातें की, मन को सन्तोष हुआ तो प्रेम हो गया। कोई बात मान ली घनिष्टता वढ़ गई। यहाँ प्रेम को अपने पूर्ण अर्थ में लेना सम्भव नहीं है। क्योंकि यहाँ 'बैर'-'प्रेम' तुलनात्मक स्थान में रखे गए हैं। इसका अर्थ है राग-द्वेष। और जहाँ राग हुआ, विवेक शेष रह ही नहीं जाएगा। विवेक के अभाव में सेवा तो करेगा नहीं, निरन्तर इसी प्रयत्न में लगा रहेगा कि मेरी ओर देखकर मुस्करा दें। मुझसे दो मीठी बातें कर लें। स्व तृप्ति की चिन्ता ही उसका जीवन बन जाएगा। चिन्ता में सेवा होने से रही। और मानलीजिए प्रयत्न में सफलता मिली भी—उसने मुस्करा ही दिया—बस उसे देखकर विभोर हो गए। इसीलिए सेवा-धर्म के आचार्य गण रूप-सुधापान का लोभ भी छोड़ देते हैं। श्री हनुमानजी मुखचन्द्र की ओर देखते ही नहीं। सदा चरणों में दृष्टि लगाए सेवा में तल्लीन रहते हैं। श्री लक्ष्मण जी दूर बैठकर प्रभु की रक्षा करते रहते हैं।

इसीलिए सेवक प्रेम की तन्मयता की भी आकांक्षा नहीं करता है। वह प्रबुद्ध रहकर सेवा ही उचित समझता है। इस दृष्टि से देखने पर 'बैर'-'प्रेम' दोनों ही सेवा-धर्म के विरोधी हैं। क्योंकि ये दोनों ही स्वार्थ प्रेरित हैं। दोहावली रामायण में गोस्वामीजी दोनों को एक ही कोटि में समान गुणवाला वताते हैं—

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित बिलोचन बारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निन्दहि सुरसरि बारि ।।

श्री भरत द्वारा इस प्रकार स्वार्थ और स्वामि-धर्म के विरोध का उल्लेख एक विशेष कारण से ही किया गया है। प्रभु ने समग्र निर्णय का भार भरत पर छोड़ दिया है। श्री भरत के सामने कठिन समस्या है, क्योंकि पुरवासी अब भी यही चाहते हैं कि या तो प्रभु लौट चलें, या हम लोग भी यहीं रहें—

१. बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं।
२. जेहि घर भाव बाम बिधि तेही।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से उनकी विचारधारा का स्पष्टीकरण होता है। वे—

मन्दाकिनी मज्जन तिहुँ काला, राम दरश मुद मंगल माला।

की कल्पना में इतने आनन्द मग्न हैं कि राम की विचारधारा पर सोचने का अवकाश ही नहीं। 'प्रेम' ने 'प्रबोध' का हरण कर लिया है। पर श्री भरत जानते हैं कि यह दोनों ही सम्भव नहीं है। स्वयं प्रभु कह चुके हैं कि पितृ-आज्ञा उल्लंघन से मुझे दुख होगा। अतः उनसे लौटने का आग्रह करना अनुचित है। दूसरी ओर लोगों के निकट रहने से प्रभु को दोहरा संकोच होगा। एक तो लोगों को अपने लिए कष्ट उठाते देख, दूसरे उदासी धर्म का उल्लंघन। अब श्री भरत के समक्ष जो उलझन है, उसे वे स्पष्ट कर देते हैं कि हम लोग स्वार्थ छोड़कर सोचें, तभी सेवा-धर्म का निर्वाह होगा। अन्त में उन्होंने यही अनुरोध किया कि मुझे पराधीन जानकर श्री राम की रुचि, उनकी सत्य-सन्धता, और नियम का ध्यान रखते हुए सर्वसम्मति से सर्वहित निर्णय कीजिए—

राखि राम रुचि धरम ब्रत, पराधीन मोहि जानि।
सबकें सम्मत सर्व हित, करिअ प्रेम पहिचानि।

श्री भरत का भाषण समाप्त होते ही महाराज जनक सहित सारा समाज साधु-साधु कहने लगा। श्री मद् कवि कुल चूड़ामणि ने यहाँ श्री भरत की वाणी के लिए बड़ी सुन्दर उपमा दी है—

सुगम अगम मृदुमंजु कठोरे, अरथु अमित अरु आखर थोरे।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी, गहि न जाइ असि अद्भुत बानी।

भरतजी के शब्द सुगम हैं। किन्तु उनमें भाव अगम हैं। सुन्दर और कोमल होने पर भी वह कठोर हैं। अक्षर सीमित हैं, पर अर्थ असीम। जैसे मुख का प्रतिविम्ब दर्पण में दीखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह प्रतिविम्ब पकड़ा नहीं जा सकता। इसका स्पष्ट भावार्थ यह है कि श्री भरत की वाणी मुख के सदृश है, जिसका प्रतिविम्ब स्वच्छ दर्पण रूप हृदय वाले श्री वशिष्ठ, महाराज जनक, महामुनि विश्वामित्र जी, के हृदय में पड़ रहा है। अभिप्राय यह है कि ये लोग भरत-भाषण के भाव को हृदयंगम कर चुके हैं। किन्तु जैसे कोई उस प्रतिविम्ब को पकड़ना चाहे, भले ही दर्पण हाथ में हो, पर पकड़ नहीं पाता, वही दशा इस समय इन महापुरुषों की है। अधिकारी हृदय प्राप्त होना ही मानो उनके हाथ में दर्पण होना है। अब वे चाहते हैं कि भरत

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भाषण से ही स्पष्ट निर्णय कर लें (यही प्रतिविम्ब को पकड़ने की चेष्टा है)। किन्तु भरतजी ने निर्णय के लिए उन लोगों को ही विचार करने की सम्मति दी। स्वयं अपनी 'पराधीनता' का निर्देश कर बता देते हैं कि मेरा कोई स्वतन्त्र निर्णय नहीं। प्रभु का निर्णय ही मेरा निर्णय है। हाँ, आप लोग स्वतन्त्र हैं। अतः जो उचित समझें, वही प्रस्ताव प्रभु के यहाँ प्रस्तुत करें। वे स्वयं निर्णय का संकेत देकर भी निर्णय का बोझ उन्हीं पर डालते हैं। कोई नया निर्णय करने की स्थिति में उसे मान ही लें, यह भी निश्चित नहीं। क्योंकि अपने को 'पराधीन' बताकर निर्णय मानने के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में उनके भाषण से निर्णय करना और भी असम्भव हो गया। यही प्रतिविम्ब का न पकड़ पाना है। वास्तव में श्री भरत ने जो बातें कही हैं, वे सुगम अगम ही है। वे निम्नलिखित बातें मुख्य रूप से कहते हैं—

(१) मैं निर्णय करने योग्य नहीं हूँ।
(२) मैं सेवक हूँ।
(३) सेवा और स्वार्थ में विरोध है।
(४) राम की रुचि की रक्षा करनी चाहिए।
(५) वे धर्मव्रती हैं।
(६) निर्णय सर्वसम्मति से कीजिए।
(७) सबका हित और सबके प्रेम की रक्षा हो।

उपरोक्त बातों में संगति लगाना असम्भव है। एक ओर वे प्रेम और सेवा का विरोध बताते हैं। दूसरी ओर लोगों के प्रेम की रक्षा की बात करते हैं। स्वयं में निर्णय की अयोग्यता बताते हैं और 'राम-रुचि-रक्षा' का भी संकेत कर देते हैं। सर्वसम्मति से सर्वहित से निर्णय करने का अनुरोध करते हैं। अपने को पराधीन बताकर उससे तटस्थ रखते हैं। अतः कहना ही पड़ेगा—

गहि न जाय अस अद्भुत बानी।

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उन्होंने परस्पर असम्बद्ध या असंगत बातें कही हों। श्री भरत के दृष्टिकोण में तो पूर्णसंगति है। उसका स्पष्टीकरण आगे हो जाता है।

× × × ×

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ऐसी अनिश्चित स्थिति में ही सब लोग राघवेन्द्र के निकट पहुँचे। इधर इन प्रेम-मूर्तियों को एकत्र आते देखकर स्वार्थी देवता भयभीत हो गए। स्वार्थ अन्धा होता है। अतः विचारहीन हो देवताओं ने शारदा को आमन्त्रित किया और "भरत-मति" परिवर्तित करने की प्रार्थना की। देवी हंसवाहिनी शारदा ने बड़ा ही भावमय उत्तर दिया—

बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी, बोली सुर स्वारथ जड़ जानी।
मो सन कहहु भरत मति फेरू, लोचन सहस न सूझ सुमेरू।
बिधि हरिहर माया बड़ि भारी, सोउ न भरत मति सकै निहारी।
सो मति मोहि कहत करु भोरी, चंदिनि करकि चंडकर चोरी।
भरत हृदय सिय राम निवासू, तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकाशू।

हंसवाहिनी यह जान गईं कि ये सब स्वार्थ के कारण जड़ हो रहे हैं। अतः स्पष्ट कर दिया कि मेरी तो बात ही क्या, भरत मति को ब्रह्मा, विष्णु, शिव की माया भी नहीं देख सकती। माया नर्तकी के सदृश है। जैसे नर्तकी अपनी कुचेष्टाओं से अस्थिर मति-रूपाकुल स्त्रियों को आकृष्ट कर उन्हें पथ-भ्रष्ट कर देती है। उसी प्रकार विभिन्न देवताओं की माया नर्तकी है। सरस्वती की माया भी सुन्दर नर्तकी है। क्योंकि इसे विशेष कला ज्ञात है। ब्रह्मा आदि की माया और भी प्रबल है। देव माया में तो केवल सौन्दर्य है—वाणी माया में कला और सौन्दर्य दो गुण और ब्रह्मादि की माया में कला, सौन्दर्य और शक्ति तीन गुण हैं। परन्तु तब तक मति-रूपाकुल स्त्री पतित नहीं हो सकती, जब तक कि किंचित् चंचलता उसमें स्वयं न हो। अगर वह स्थिर होती, तो अपने गुरुजनों की सेवा छोड़कर वारांगना की ओर दृष्टि ही क्यों डालेगी। अतः बुद्धिमानी तो इसी में है कि इस माया नर्तकी की ओर देखे भी नहीं—

होइ बुद्धि जौ परम सयानी, तिन तन चितव न अनहित जानी।

श्री 'भरत मति' की तो बात ही निराली है। यह तो एकान्त भाव से भगवच्चरणानुरागिनी है। हृदय के अन्तःपुर में सदा अपने प्रियतम की सेवा-पूजा-चिन्तन में तल्लीन रहती है। उसे इतना अवकाश नहीं कि वह बाहर निकल कर माया का नृत्य देखे। और प्रभु के एकान्त रंग भवन में नर्तकी कैसे प्रविष्ट हो सकती है। अतः उसे पथभ्रष्ट करना तो दूर रहा—"सोउ न भरत मति सकै निहारी"—देखना भी असम्भव है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वीणापाणि ने कहा—"भला उस दिव्य मति को भुलावा देने के लिए तुम मुझसे कहते हो ? क्या चन्द्र-किरण सूर्य को चुरा सकती है ?" अभिप्राय यह कि चन्द्र-किरण का कार्य है अंधकार का अपहरण करना। उसी तरह सरस्वती का कार्य भी अज्ञानान्धकार का किंचित् अपहरण करना है। किन्तु उससे सूर्यापहरण की प्रार्थना करना मानो ज्ञान-सूर्य के नाश की प्रार्थना करना है। यह ध्यान रहे कि चन्दिनि अन्धकार का नाश नहीं कर पाती, वह तो उसमें प्रकाश मात्र फैलाने की चेष्टा करती है। इसी प्रकार बुद्धि के द्वारा अज्ञान नाश नहीं होता है, वह केवल थोड़ी सहायता कर पाती है। अज्ञानान्धकार का समग्र नाश तो विज्ञान सूर्य के उदय से ही सम्भव है। स्वयं अल्प प्रकाश पूर्ण प्रकाश को कैसे चुरा सकता है। वह तो उसी में लीन हो जाएगा। अभिप्राय यह कि यदि मैं उनकी बुद्धि चुराने जाऊँ, तो मैं भी वहीं उनके मत में दीक्षित होकर रह जाऊँगी। यदि हे देवताओ! तुम यह कहो कि आप स्वयं न सही, अपनी माया को ही भेज दीजिए वह तो चन्दिनि नहीं है, तो यह भी निरर्थक है, क्योंकि सूर्य के समक्ष अन्धकार नहीं जा सकता। जहाँ राम-रूप-दिव्य नित्य सूर्य का निवास है, वहाँ मायान्धकार का प्रवेश कैसे होगा ? उसका नाश अवश्यम्भावी है। ऐसा कहकर गौरांगी वीणापाणि ब्रह्म लोक को चली गईं।

भगवान श्री राघवेन्द्र ने सभी सज्जनों का स्वागत करके, उनसे बैठने की प्रार्थना की। बैठने के पश्चात् महर्षि वशिष्ठ ने जनक-भरत का सम्पूर्ण संवाद सुनाया। और प्रार्थना की कि अब आप जैसा कहें, हम लोग वही करें—

तात राम जस आयसु देहू, सो सब करै मोर मत एहू।

शील निधि प्रभु ने प्रणाम करके उत्तर दिया—

सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी, बोले सत्य सरल मृदुबानी।
विद्यमान आपुनि मिथिलेसू, मोर कहब सब भाँति भदेसू।
राउर राय रजायसु होई, राउरि सपथ सही सिर सोई।

दो० राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख, बनइ न उत्तर देत॥

यहाँ जो एक विचित्र वातावरण है कि कोई निर्णय नहीं देता है, सब एक दूसरे के ऊपर टालते हैं, उसका एक बड़ा ही मनोवज्ञानिक कारण है। निर्णय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

की रूपरेखा सब प्रधान व्यक्तियों के मन में एक-सी है। महर्षि वशिष्ठ तो प्रारम्भ से ही प्रभु के वन जाने के पक्ष में हैं। स्वयं राघव के हृदय में भी यही बात है। उन्हें देव-कार्य करना है। महाराज जनक से भी याज्ञवल्क्य जी ने सारा भविष्य बता रखा है। अतः वे भी यही निर्णय स्थिर कर चुके हैं और स्वयं श्री भरत भी राघवेन्द्र के धर्म-संकट को देखकर लौटाने का विचार छोड़ चुके हैं।

प्रश्न होता है कि फिर सब टाल क्यों रहे हैं? उत्तर है—प्राथमिकता करने में प्रत्येक को संकोच हो रहा है। वशिष्ठजी सोचते हैं—"यदि हम ऐसा प्रस्ताव करेंगे, तो लोग मुझे निठुर मान लेंगे। कहेंगे इनके हृदय में लौटाने की इच्छा ही न थी। यह तो मुनियों का स्वार्थ देख रहे हैं, फिर भरत . . . . . . ।"

महाराज जनक सोचते हैं—"लोग क्या कहेंगे? अपने जामाता को वन जाने के लिए कहकर यह केवल अपने विवेक का ही बड़प्पन रखना चाहते हैं। और भरत क्या चाहते हैं? . . ."

अब हम बन ते बनहि पठाई, प्रमुदित फिरब बिवेक बड़ाई।

प्रभु सोचते हैं—"गुरुजनों के समक्ष निर्णय देना धृष्टता है। फिर श्री भरत समग्र साज सम्भार लेकर कष्ट उठाकर आए हैं। उनके वचनों की पूर्ति न करके मैं कैसे उन्हें लौटने के लिए कहूँ?"

श्री भरत सोचते हैं—"मैं आज्ञाकारी हूँ। सेवक का धर्म निर्णय देना नहीं, निर्णय का पालन है।"

सब मौन हैं। कोई निष्ठुर बनना नहीं चाहता। ऐसा प्रस्ताव कर के अयश कौन ले। और तब इस कार्य को पूरा किया प्रभु-पद-पद्म-पराग-मधुप प्रेममूर्ति श्री भरत ने। उन्होंने सोच लिया कि सभी लोग संकुचित हो रहे हैं, अतः मुझे ही यह कठोर कार्य करना होगा। धन्य है वह निःस्वार्थ महाव्रती। गोस्वामीजी ने एक भावपूर्ण रूपक द्वारा उस परिस्थिति में भरत-कार्य की महानता का चित्रण किया—

सभा सकुच बस भरत निहारी, राम बन्धु धरि धीरज भारी।
कुसमउ देखि सनेह सभाँरा, बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा।
सोक कनक लोचन मति छोनी, हरी बिमल गुन गन जग जोनी।
भरत बिवेक बराह बिशाला, अनायास उघरी तेहि काला।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विन्ध्यागिरि की वृद्धि से एक बार ऐसी परिस्थिति आ गई कि विश्व को सूर्य का प्रकाश पाना कठिन हो गया। महर्षि अगस्त ने इस लोक-संकट को दूर किया। महर्षि को देखकर वह भुक गया, आज्ञा हुई कि मैं दक्षिण से जब तक न लौटूँ, तब तक इसी प्रकार भुके रहो। न महर्षि ही लौटे और न विन्ध्य ही उठा। श्री भरत ने देखा कि आज भी ठीक वैसा ही हो रहा है। हम सब का स्नेह विन्ध्यागिरि के समान बनकर प्रभु के धर्म-पालन-रूप-सूर्य को ढकना चाहता है। इससे विश्व का अहित ही होगा। साथ ही राघवेन्द्र को संकोच। अतः उन्होंने अपने विवेक-रूपी-अगस्त्य द्वारा उसका निवारण कर दिया।

किंवा आज श्री भरत का कार्य वैसा ही है, जैसा हिरण्याक्ष द्वारा पृथ्वी का हरण कर लेने पर भगवान बाराह द्वारा उसका उद्धार। शोक ही हिरण्याक्ष है। उसने लोगों की मति-रूपा विमल गुणमयी पृथ्वी का अपहरण कर लिया है। श्री भरत के 'विवेक-रूप-विशाल-बाराह' ने उद्धार कर दिया।

यहाँ दो उपमाएँ दी गई हैं। क्योंकि श्री भरत के द्वारा दो कार्य सम्पन्न हुए। लोग शोक और संकोच के कारण उत्तर नहीं दे रहे थे। "प्रभु का धर्म पालन आवश्यक था, अतः उन्हें जाने देना चाहिए।" किन्तु हृदय में इस कल्पना से शोक और संकोच दोनों उमड़ पड़ते थे कि राघव को कर्तव्यपालन करने देना चाहिए। यह कहने में संकोच होता था और उनके वन में रहने की कल्पना से हृदय व्यथित हो जाता था। महात्मा भरत का स्नेह देखकर लोगों का संकोच और भी बढ़ जाता था कि प्रेमी तो लौटाने आवे और हम लोग वन में रहने का निर्णय देकर विवेक का प्रयोग करें। यह कितनी लज्जा की बात है। महाराज जनक के "अब हम वन ते बनहिं पठाई, प्रमुदित फिरब विवेक बड़ाई" के व्यंग में यही भावना निहित है। श्री भरत ने स्वयं अपने स्नेह को रोककर उन लोगों के संकोच को दूर कर दिया। साथ ही शोक के कारण वे लोग कुछ कह नहीं पाते थे, सो स्वयं ही खड़े होकर लोगों की मति का उद्धार कर दिया।

दो उपमाओं का एक मधुर अभिप्राय यह कि महर्षि अगस्त्य सन्त थे और श्री 'बाराह' साक्षात् भगवान। श्री भरत ने अकेले ही दोनों के समान महान कार्य कर डाला। हाँ एक बात और भी बड़ी महत्वपूर्ण है। अगस्त्य द्वारा विन्ध्यगिरि निवारण में कोई कठिनाई न हुई। विन्ध्य आज्ञाकारी और श्रद्धालु था। अतः वह दण्ड का पात्र नहीं था। किन्तु पृथ्वी का उद्धार करने में भगवान बाराह को हिरण्याक्ष का बध करना पड़ा। स्नेह विन्ध्यगिरि है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसका नाश तो अपेक्षित है ही नहीं। शोक हिरण्याक्ष है। अतः उसका नाश किया। स्मरण रहे कि पुराणों में दोनों क्रिया विभिन्न कालों में सम्पन्न हुई। किन्तु श्री भरत ने एक ही काल में एक ही वाक्य से स्नेह को सँभाल लिया और शोक का नाश करके लोगों की मति का उद्धार किया।

श्री भरत सबको प्रणाम करते हैं। उसके पश्चात् समस्त गुरुजनों सहित प्रभु की नम्र प्रार्थना। भावमूर्ति के नयन कमल मुंद गए। हृदयनिवासिनी वीणापाणि का स्मरण किया। और वे मन के मानसरोवर से निकल कर मुख कमल में आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीति से युक्त श्री भरत की वाणी सुन्दर हंसिनी (नीर क्षीर पृथक्करणी) की तरह है——

करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे, राम राउ गुरु साधु निहोरे।
छमब आजु अति अनुचित मोरा, कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा।
हियँ सुमिरी शारदा सुहाई, मानस ते मुख पँकज आई।
बिमल बिवेक धरम नय साली, भरत भावती मंजु मराली।

दो० निरखि बिवेक बिलोचनन्हि, सिथलि सनेहँ समाजु।
करि प्रनाम बोले भरतु, सुमिरि सोय रघुराजु॥

भूमिका से ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत प्रसंग कितना गम्भीर है। इसका कारण भी है कि अब तक श्री भरत एक विशुद्ध प्रमी के रूप में रहे और उनके प्रेम ने सबको पराजित कर दिया। महर्षि वशिष्ठ और मर्यादा पुरुषोत्तम भी उनके प्रेम द्वारा अपने को वन्दी अनुभव करने लगे। पर श्री भरत जैसे प्रेमी प्रभु को पराजित नहीं करना चाहते। उन्हें संकोच में नहीं डालना चाहते। अतः अपने प्रेम को रोककर परम विवेकी के रूप में अवतरित हो रहे हैं। कितना निगूढ़ आत्मसमर्पण है। उसकी इच्छा, उसकी प्रसन्नता के लिए 'प्रेमी' आज 'विवेकी' बन गया। आज वह सर्वथा नए क्षेत्र में बोल रहा है। अतः कठोरता के लिए क्षमायाचना करता है। हंसवाहिनी का आह्वान करता है। और अपने हृदयस्थ प्रभु युगल स्वरूप का स्मरण करता है। सदा प्रेम भरे नेत्रों से निहारने वाला आज विवेक बिलोचनों से सबकी ओर देखता है। और तब प्रारम्भ करता है अपने भाषण को——

"भगवन्! आप मेरे पिता, माता, सुहृद, गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। सरल हृदय, श्रेष्ट स्वामी, शीलागार, शरणागत,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रक्षक, सर्वज्ञ सुजान, समर्थ, गुणों का आदर करनेवाले, पाप और अवगुणों का नाश करनेवाले हैं। आप जैसे स्वामी--आप ही हैं। और स्वामि-द्रोह में मैं भी अद्वितीय हूँ। मैं मोह के कारण आपके और पिताजी के वचनों का उल्लंघन करके सारे समाज के साथ यहाँ आया। संसार के समस्त प्राणी अच्छे, बुरे आपकी ही आज्ञा का पालन करते हैं। कोई ऐसा नहीं, जो उसका उल्लंघन कर सके। किन्तु इस कुसेवक ने वह भी किया। और आपने मेरी इस धृष्टता को स्नेह व सेवा मान लिया। अपनी सहज करुणा से मेरा भला किया। मेरे दूषणों को ही भूषण का रूप दे दिया। चारो ओर मेरी यश गाथा फैल गई। क्यों न हो आपकी तो यह रीति ही है। महान पापी, नास्तिक, समस्त दुर्गुणों से पूर्ण व्यक्ति भी यदि एक बार शरणागत होकर आपको प्रणाम कर दे, तो आप उसे अपना लेते हैं। उसके दोषों को देखकर भी उस पर ध्यान नहीं देते और उसके गुणों को सुनकर स्वयं मुग्ध हो जाते हैं। साधु समाज में भी उसकी प्रशंसा करते हैं। आप को छोड़कर ऐसा कौन स्वामी होगा, जो सेवक की समस्त सेवा करने के पश्चात् भी स्वयं ही संकुचित रहे कि मैंने इसके लिए कुछ नहीं किया। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि आपको छोड़ अन्य कोई भी ऐसा नहीं कर सकता।"

गोस्वामीजी के शब्दों में--

पसुनाचत शुक पाठ प्रबीना, गुन गति नट पाठक अधीना ।

दो० यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिर मौर ।
को कृपालु बिनु पालिहै, बिरदावलि बरजोर ।।

सोक सनेह कि बाल सुभाए, आयउँ लाइ रजायसु बाएँ ।
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओर, सबहिं भाँति भल मानेउ मोर ।
देखेउँ पाय सुमंगल मूला, जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ।
बढ़े समाज बिलोकेउँ भागू, बड़ी चूक साहिब अनुरागू ।
कृपा अनुग्रह अँगु अघाई, कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ।
राखा मोर दुलार गोसाईं, अपने सील सुभाएँ भलाई ।
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई, स्वामि समाज सँकोच बिहाई ।
अबिनय बिनय यथा रुचि बानी, छमिहि देउ अति आरति जानी ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दो० सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ खोरि ।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारी मोर ।।

प्रभुपद पदुम पराग दोहाई, सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई ।
सो करि कहउँ हिए अपने की, रुचि जागत सोवत सपने की ।
सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई, स्वारथ छल फल चारि बिहाई ।
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा, सो प्रसादु जन पावै देवा ।
अस कहि प्रेम बिबस भए भारी, पुलक शरीर बिलोचन बारो ।
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई, सभउ सनेह न सो कहि जाई ।
कृपा सिन्धु सनमानि सुबानी, बैठाए समीप गहि पानी ।

उपरोक्त भाषण की व्याख्या करना––रेशमी वस्त्र में टाट जोड़ देना है। किन्तु इतना ध्यान दिलाना अपेक्षित है कि महामना भरत ने इसमें अपने अयोध्या से आने को अनौचित्य के रूप में घोषित कर दिया। यह इस भाषण की सर्वथा नवीनता सूचित करता है। साथ ही पिछले भाषण के दो-तीन प्रस्ताव भी उन्होंने नहीं दुहराए–(१) हम दोनों वन जायँ और आप युगल लौट जायँ, (२) हम तीनों वन जायँ और आप युगल लौट जायँ, (३) न तरु फेरिअहिं बन्धु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ। इन प्रस्तावों के साथ आज्ञा देने की प्रार्थना से राघवेन्द्र का संकोच बना रहता। अतः वे कहते हैं कि मेरी समस्त इच्छाएँ आपने पूर्ण कर दी। अब आपकी आज्ञा ही प्राप्त होनी चाहिए। कहना न होगा कि इन्हीं दो कारणों से श्री भरत ने प्रारम्भ में कह दिया था कि "कहउँ बदन मृदु वचन कठोरा।" इस भाषण से यह स्पष्ट है कि श्री भरत ने समस्त कठिनाइयों को हल कर दिया। बस केवल निर्णय की घोषणा मात्र शेष रही। वह श्री भरतजी प्रभु का ही अधिकार मानते हैं, अपना नहीं। कठिन कालकूट का पान कर के भोलानाथ भरत ने अमृत वितरण का कार्य स्वयं न लेकर प्रभु को ही दिया। यही तो उस महापुरुष की महानता है।

प्रेममूर्ति भरत का स्वभाव सौशील्य देखकर कौशलेन्द्र सहित सारा समाज विदेह हो गया। सभी लोग उनके भ्रातृत्व की प्रशंसा मन-ही-मन कर रहे हैं। आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी।

रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा धनी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भरतहिं प्रसन्सत बिबुध बरसत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निशागम नलिन से।

हाँ! श्री भरत के इस निर्णय से पुरवासी जन संकुचित हो गए, क्योंकि इनकी आकांक्षा थी कि वे श्री राघव से लौटने का आग्रह करेंगे। गोस्वामी जी ने एक बड़ी ही भावपूर्ण उपमा से इस स्थिति का चित्रण किया है। जैसे रात्रि का आगमन देखकर कमल समूह संकुचित हो जाता है। प्रभु का वियोग ही रात्रि है। अभी तक भरत रूप सूर्य के आश्रय से पुरवासी प्रफुल्लित और निश्चिन्त थे, किन्तु उनको भी सेव-धर्म के अस्ताचल में अस्त होते देख पुरवासी जलजों की समस्त आशा जाती रही।

इस व्यथापूर्ण अवसर पर ही देवराज इन्द्र ने आर्त्त नर-नारियों पर उच्चाटन का प्रयोग कर दिया।

श्री भरत, जनक, मुनिमण्डली और मातृमण्डल को छोड़ अन्य सभी लोगों पर इसका प्रभाव पड़ा। ऐसी परिस्थिति में पुरवासी बड़ी ही द्वन्द्वात्मक व जटिल मनस्थिति में पड़ गए। लोगों को घर की स्मृति आ गई---दूसरे ही क्षण राम-प्रेम की स्मृति हुई और वन में रहना उचित जान पड़ने लगा। मन, बुद्धि के इस द्वन्द्व से सभी लोग व्यथित हो रहे हैं। किन्तु एक दूसरे से कहते नहीं। लज्जानुभव करते हैं।

भय उचाट बस मन थिर नाँही, छन बन रुचि छन सदन सोहाई।
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी, सरित सिन्धु संगम जनु बारी।

ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि राम-स्नेही पुरवासियों पर देवमाया का प्रभाव क्यों पड़ा?

सबसे प्रधान कारण तो यह है कि समस्त पुरवासी अब भी राघवेन्द्र को लौटाने के पक्ष में है। यहाँ श्री भरत से उनका स्पष्ट मतभेद है। वे 'स्व' का त्याग पूर्णरीति से नहीं कर पाए। अपनी इच्छा को कौशल कुमार की इच्छा में एकमेक कर शून्य नहीं कर पाए हैं। इसमें उनका इतना दृढ़ आग्रह है कि 'प्रभु को लौटाने में कितना मानस कष्ट होगा' इसका भी ध्यान नहीं। जीव वहीं दुर्बल होता है, जब प्रभु इच्छा से अलग अपनी नन्हीं-सी धारा को पृथक् बहाना चाहता है। तब उसका सूख जाना स्वाभाविक है। यहाँ एक बात और

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जैसे वेद 'नेति नेति' कहकर ब्रह्म का वर्णन करता है, उसी प्रकार हमारे महाकवि ने नेति मुख से श्री भरत-भक्ति का वर्णन किया है। महाकवि कहते हैं कि उनके प्रेम, सौशील्य आदि गुण सुनने में तो सुखद है, किन्तु वर्णन करना कठिन है। क्या कठिनाई है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं कि जिसकी भक्ति का किंचित् अंश देखकर ज्ञान-शिरोमणि जनक, महात्मा वशिष्ठ आदि महानुभाव प्रेममग्न हो गए (मग्न का अर्थ है वाणी न निकलना, असमर्थ हो जाना) "भरत भगति सबकै मति जन्त्री" उसकी महिमा को तुलसी कैसे कहें ? प्रश्न हुआ तब फिर चेष्टा ही क्यों करते हो, मौन क्यों नहीं हो जाते ? तो उत्तर देते हैं कि जिस भक्ति के प्रभाव से वे लोग प्रेममग्न हो गए, उसी भक्ति के प्रभाव से मेरे हृदय में सुमति विकसित हुई। महाकवि के कहने का अभिप्राय यह कि जिन लोगों के पास सुमति थी, (श्री जनकादि) वे तो प्रेममग्न हुए, किन्तु मेरे पास तो वह भी न थी। अतः मुझे मग्नता प्राप्त न होकर सुमति (बोलने की इच्छा) प्राप्त हुई। क्योंकि श्री भरत का प्रेम सब पर एक-सा प्रभाव नहीं डालता—

जौ न होत जग जनम भरत को, सचर अचर चर अचर करत को।

चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बना देना उसका कार्य है। श्री जनक आदि सुमतिवान होने से चेतन थे। उन्हें प्रेममग्न करके जड़ बना दिया और मैं बुद्धिहीन होने से जड़ था, अतः सुमति देकर चेतन बना दिया। अच्छा कवि महाशय ! आपको सुमति प्राप्त हुई है, तो फिर सुनाइए कुछ भरत-महिमा।

तब कवि कुल चूड़ामणि कहते हैं कि यह भी सम्भव नहीं। क्योंकि महिमा बड़ी है और सुमति छोटी। अभिप्राय यह कि पात्र जितना बड़ा होता है, उसमें उतना ही पदार्थ आता है। अतः मुझमें सुमति आई अवश्य, पर मेरे अनुरूप ही। महिमा वर्णन करने योग्य सुमति उपलब्ध नहीं हुई। फिर महिमा बड़ी है और सुमति छोटी। अतः कविकुल की परम्परा को ध्यान में लाकर संकुचित हो गई। कवि का यह भाव बड़ा ही मधुर है।

कुल में जब कोई नववधू आती है, तब उसे मर्यादा का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। वह अपने से पूर्व आई हुई बधुओं का ही अनुकरण करती है। यहाँ गोस्वामीजी अपनी सुमति का कविकुल में नवीन बधू के रूप में उल्लेख करते हैं। भरत-महिमा सबकी पूजनीया सास की तरह है। उसके प्रति नवीन बधू के हृदय में नव उल्लास है। वह उनसे कुछ बात करना चाहती है। किन्तु

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उससे पूर्व आई हुई बधुएँ आदर-श्रद्धा के कारण मौन हैं। (पूर्वगता बधुएँ हैं श्री शारदा, महात्मा वशिष्ठ की मति, महाराज जनक की मति) यह सब की सब भरत-महिमा के विषय में मौन रहती हैं। और उनके सामने पहुँचते ही संकुचित हो जाती हैं। जैसे—

(१) कहति प्रीति शारद सकुचाई।

(शारदा)

(२) भरत महा महिमा जल राशी, मुनि मति तीर ठाढ़ि अबलासो।

(महात्मा वषिष्ट)

(३) सोमति मोरि भरत महिमा ही, कहै काह छल छुअति न छाहीं।

(जनक)

अतः कवि कुल की यह मर्यादा देखकर गोस्वामीजी की सुमति रूपा नव वधू अपनी धृष्टता पर संकुचित हो जाती है। इसी दृष्टि से गोस्वामी जी कहते हैं कि "कवि कुल कानि मानि सकुचानी"। सीधी भाषा में कहें तो इसका अर्थ हुआ कि जब बड़े-बड़े कवि न कह सके, तो मैं क्या कहूँ? कहने की इच्छा तो बड़ी प्रबल है, क्योंकि महिमा के गुणों पर मेरी सुमति मुग्ध है। पर जैसे इच्छा होने पर भी बालक अपनी बात वाचा-शक्ति के अभाव में नहीं कह पाता, उसी तरह वह भी असमर्थ है। (जिसे बालक क्षुधा लगने पर वाणी के अभाव में रुदन के द्वारा अपनी असमर्थता का ज्ञापन करता है, उसी प्रकार भरत-महिमा में अभिरुचि होने पर भी वे भाषा-शक्ति के अभाव में असमर्थ हैं। अतः असमर्थता का ज्ञापन कर रहे हैं।)

वाणी को पवित्र कर सकने के अभाव में कवि की सुमति निराश नहीं हो गई, उसने नेत्र से आनन्द लेना प्रारम्भ किया। उसकी ओर महाकवि संकेत करते हैं।

श्री भरत का यश निर्मल चन्द्र है और सुमति चकोर कुमारी। भक्त के हृदयाकाश में उस नव इन्दु का उदय देखकर एकटक देख रही है। यहाँ चकोर-कुमारि भी साभिप्राय है। चकोरी तो चकोर की पत्नी भी है। अतः उसे दो से स्नेह है 'चकोर' और 'चन्द्रमा' से—किन्तु यह सुमित तो 'चकोर-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कुमारि' है। इसका अनुराग एक मात्र चन्द्र में ही है। इसी प्रकार कवि की सुमति अन्य किसी की ओर दृष्टि ही नहीं डालती। उसका अनुराग एकमात्र भरत यश चन्द्र में है।

अन्त में कवि कहता है कि यदि श्री भरत का यश मेरी मति नहीं कह पाती, तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं। क्योंकि भरत स्वभाव का वर्णन तो वेदों को भी सुगम नहीं है। पर कवि ! तब भी तो तुम उनके विषय में कहते ही हो। यह क्यों ? उत्तर देते हैं—"मेरी लघु बुद्धि की चंचलता क्षमा हो।" प्रश्न उठता है कि उसकी मति लघु होने पर भी भक्ति प्रदत्त है। अतः इस चपलता में कोई रहस्य अवश्य होगा।

कवि कहता है कि हाँ यही बात है। भले ही पूर्ण रीति से न कह सके, फिर भी श्री भरत का सद्भाव कहने-सुनसे से श्री सीता राम चरणों में अनुराग अवश्य हो जाता है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसे ऐसा करने से प्रेम न हुआ हो। पर कवि ! यदि कोई कहने की शक्ति न रखता हो किंवा सुनाने वाला न मिले तब क्या करें ?

कवि उत्तर देता है कि "स्मरण तो हो सकता है"। भरत और राम के प्रेम का स्मरण कर के जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम न उत्पन्न हो, उस-सा अभागा संसार में दूसरा नहीं। इस प्रकार कवि कुल चूड़ामणि भक्ताग्रगण्य गोस्वामी जी अपनी असमर्थता के साथ ही भरत स्वभाव के स्मरण का फल भी बता देते हैं "राम चरण रति"। कैसी विलक्षण महिमा है। 'प्रेम' जो 'मुक्ति' की अपेक्षा भी दुर्लभ है—जिस राम भक्ति की दुर्लभता को यों बताया गया है—

नर सहस्त्र महँ सुनहुँ पुरारी, कोउ एक होइ धर्मव्रत धारी।
धर्मशील कोटिक मँह कोई, बिषय विमुख बिराग रत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई, सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई।
ग्यानवतं कोटिक मँह कोऊ, जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी, दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी
धर्मशील बिरक्त अरु ज्ञानी, जीवनमुक्त, ब्रह्मपर प्रानी।
सबते सो दुर्लभ सुरराया, राम भगति रत गत मद माया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वही प्रेम प्रत्येक जीव के लिए सुलभ है। भरत यश के कथन, श्रवण, स्मरण से--

कीन्हेहुँ सुलभ सुधा बसुधाहूँ।

स्तब्धता भंग की मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राघवेन्द्र ने। आज प्रभु भी भाषण दे रहे हैं श्री भरत के पश्चात्। साधारण तो क्या महान व्यक्ति की बात भी उनके बाद नीरस प्रतीत होती है। अतः आज मानो श्री राम भी अपनी समस्त ज्ञानमाला का स्मरण कर भाषण दे रहे हैं। इसलिए महाकवि भी सभी विशेषण एकत्र कर देते हैं--

देखि दयाल दशा सबही की, राम सुजान जानि जन जी की
धरम धुरीन धीर नय नागर, सत्य सनेह सील सुख सागर।
देशकाल लखि समय समाजू, नीति प्रीति पालक रघुराजू।
बोले बचन बानि सरबस से, हित परिनाम सुनत ससि रस से।

वक्ता-श्रोता दोनों ही अद्वितीय हैं। यदि वक्ता प्रभु हैं, तो श्रोता की विशेषता राघव के मूँह से ही सुनिए—

तात भरत तुम धरम धुरीना, लोक बेद बिद प्रेम प्रवीना।

दो० करम बचन मानस बिमल, तुम समान तुम तात।
गुरु समाज लघु बन्धुगुन, कुसमय किमि कहिजात।।

"तुम समान तुम तात" इससे अधिक किसी के विषय में क्या कहा जा सकता है। आदि से अन्त तक कौशल किशोर का भाषण भरत के प्रति आदर, स्नेह, वात्सल्य तथा धार्मिकता से परिपूर्ण है। वह सचमुच ससि-रस है, जो आज भी हम सदृश कुलिश हृदयों को द्रवित कर देता है। गोस्वामीजी की लेखनी से ही उन शब्दों की सुधा माधुरी का पान कीजिए—

तात तात बिनु बात हमारी, केवल गुरुकुल कृपा सँभारी।
न तरु प्रजा परिजन परिवारू, हमहि सहित सब होत खुआरू।
जौ बिनु अवसर अथँव दिनेसू, जग केहि कहहु न होइ कलेशू।
तस उतपात तात बिधि कीन्हा, मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दो॰ राज काज सब लाजपति, धरनि धरम धन धाम ।
गुरु प्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिणाम ।।

सहित समाज तुम्हार हमारा, घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ।
मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू, सकल धरम धरनी धर सेसू ।
सो तुम करहु करावहु मोहू, तात तरनि कुल पालक होहू ।
साधक एक सकल सिधिदेनी, कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।
सो बिचारि सहि संकट भारी, करहु प्रजा परिवार सुखारी ।
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई, तुमहि अबधि भरि बड़ि कठिनाई ।
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा, कुसमय तात न अनुचित मोरा ।
होहिं कुठाँ सुबन्धु सहाए, ओडिअहि हाथ असनिहु के धांए ।

दो॰ सेवक कर पद नयन से, सुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुजन सराहँहि सोइ ।।

भाषण को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में वे भरत की प्रशंसा करते हैं। दूसरे में स्थिति की जटिलता और गुरु वशिष्ठ, महाराज श्री जनक की स्तुति करते हैं। तृतीय भाग में स्पष्ट कर देते हैं कि इस समय समस्त निर्णय तुम्हारे ही हाथ में है। इसके लिए दो बातें प्रभु ने बड़े ही कवित्वमय शब्दों में कहीं। "समग्र धर्म पृथ्वी के सदृश्य हैं और गुरु, पिता, स्वामी की आज्ञा शेष के सदृश्य हैं। समग्र धर्म इसी आधार पर टिके हुए हैं।" यह कहने का भाव है। अब शेष को भी आधार की अपेक्षा है और वह आधार तुम हो। तुम्हारे चाहने से ही धर्म रक्षित रह सकता है। त्रिवेणी विश्व कल्याणकारिणी हैं। उसी प्रकार आज्ञापालन से भी कीर्ति, ऐश्वर्य और सद्मति रूप त्रिवेणी का प्रार्दुभाव होगा। जिसका आवाहन कर लोग मुक्त होंगे। पर यह भी तभी सम्भव है, जब तुम चाहोगे। अन्त में चौथे भाग में कहते हैं कि तुम्हें कोमल समझ कर भी विपत्ति का सबसे बड़ा भाग दे रहा हूँ, पर क्या करूँ। अपने को ही तो कष्ट दिया जा सकता है। तुम्हीं मेरे लिए सब हो। मुख क्या बिना हाथ, पैर और नेत्र की शक्ति के समग्र अंगों का पोषण करने में समर्थ हो सकता है ? अब तो तुम्हीं मेरे हाथ, नेत्र, चरण–तीनों हो। संकट का समय है। अतः हाथ बनकर रक्षा करो। सब लोग प्रेमान्ध हो रहे हैं—हम लोगों को नेत्र बनकर मार्ग दिखाओ। और तुम स्वयं ही चरण बनकर चलो।" "सो तुम करहु करावहु मोही।"

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपरोक्त बातें प्रभु ने मधुर सांकेतिक शब्दों में श्री भरत से कही। सभी लोग राघव की स्नेह सुधा-सिक्तवाणी को सुनकर प्रेमातिरेक से समाविस्थ हो गए। वाणी मौन हो गई। श्री भरत का मुख प्रसन्नता से चमक उठा। उनका सारा विषाद जाता रहा। राघवेन्द्र ने आज्ञा दे दी, इससे बढ़कर अपनत्व की क्या बात होगी ? अतः अब माता के कृत्य आदि का भी समस्त शोक जाता रहा। उठकर खड़े हुए। मानो गूंगे को वाणी मिल गई हो। अभिप्राय यह है कि जैसे गूंगा अस्पष्ट शब्दों में बोलता है, अपने मनोभावों को वाणी के अभाव में व्यक्त नहीं कर पाता, उसी तरह श्री भरत का पहला भाषण अस्पष्ट था। अब प्रभु की आज्ञा मिल जाने से वे भी स्पष्ट बोले। "भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू"। बड़ी ही प्रसन्नता भरी वाणी में श्री भरत ने कहना प्रारम्भ किया—

नाथ भयउ सुख साथ गए को, लहेउँ लाहु जग जनम भये को।
अब कृपालु जस आयसु होई, करो सीस धरि सादर सोई।
सो अबलँब देव मोहि देई, अवधि पार पावौ जेहि सेई।

दो० देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुसासन पाई।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाई।।

प्रत्येक शब्द में कितना आह्लाद है और बाल सुलभ सरलता। अपनी बात का रंचमात्र भी आग्रह नहीं—उस प्रेमव्रती के हृदय में। प्यारे की वाक्य रक्षा पर शतशत जीवन निछावर कर देने की इच्छावाला वह प्रेमी धन्य है।

इसके पश्चात् महात्मा भरत ने बड़े ही नम्र और प्रेममय शब्दों में चित्रकूट दर्शन की आज्ञा माँगी। और वात्सल्य निधि रामभद्र ने भी सहर्ष अनुमति प्रदान की। साथ ही अभिषेक के निमित्त आए हुए जल को महर्षि अत्रि की आज्ञानुसार स्थापित करने की आज्ञा दी। देवताओं ने सुरतरु सुमनों की वृष्टि की। 'जय भरत' 'जय राम' की ध्वनि से सारी वनस्थली गूंज उठी।

× × × ×

वास्तव में तो प्रेमी की यह चित्रकूट दर्शन की प्रार्थना, प्रियतम प्राणाभिराम के चिन्तन-स्मरण के साथ ही राघव-चरणांकित भूमि में, उस भूरि भाग्यमयी धूल में लिपटने की आकांक्षा का सूचक है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वन-यात्रा प्रारम्भ हुई और सबसे पहले विभिन्न तीर्थों से आया हुआ जल एक विशिष्ट कूप की रचना करके उसमें स्थापित किया गया। महर्षि अत्रि ने उसका नामकरण किया "भरत कूप"—

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा, अति पावन तीरथ जल जोगा।
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी होइहहिं बिमल करम मन बानी।

महामुनि ने लौटकर श्रीमद् राघवेन्द्र को भरत कूप महिमा सुनाई। कौशल किशोर के हृदय में प्रसन्नता उमड़ पड़ी। उस रात्रि को सबने जागरण किया। धर्म और प्रेम की कथाएँ होती रहीं। प्रातःकाल पुनः यात्रा प्रारम्भ हुई। महात्मा अत्रि के साथ तप-मूर्ति भरत ने उपानह-रहित यात्रा प्रारम्भ की। उनके सुकुमार चरण कमलों को देखकर पृथ्वी लज्जित होकर मृदु हो गई। क्यों न हो? भरत को कितना कष्ट दिया था इस भूमि ने लौटाने की इच्छा से, फफोले पड़ गए थे। पर श्री भरत कृपा से ही भूभार-हरण संभव हुआ। मन में लज्जित होकर आज वह कोमलता की मूर्ति बन गई। जिसे गोस्वामीजी के शब्दों में पढ़िये—

कोमल चरण चलत बिनु पनहीं, भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं।
कुस कँटक काँकरी कुराई, कटुक कठोर कुवस्तु दुराई।
महि मँजुल मृदु मारग कीन्हें।

वायु देव भी त्रिविधि गुणों से युक्त हो मधुर, शीतल, सौरभ पूरित बिजन डुलाकर थकान मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। सम्भव है सोचा हो कि मेरा पुत्र तो प्रभु के पावन चरणों की सेवा करके अपने को धन्य करेगा ही, मैं ही पीछे क्यों रहूँ? अहा! भरत की सेवा से मैं शीतल हुआ, उनके पावन अंग के संस्पर्श से आज मैं वास्तव में सुरभित हुआ।

त्रिविध समीर बहइ सुख लीन्हे।

आज देवता अपने कृत्य से लज्जित हो पुष्प-वृष्टि द्वारा उनका मार्ग और भी सुखद बना देना चाहते हैं। मेघ छत्र बनकर छाया कर रहे हैं। सघन वन की पादप पंक्तियाँ फल-फूलों से भर उठीं। वे कुसुम फल भार से झुक कर मार्ग के दोनों किनारों से मिलकर तोरण सजाए स्वागत कर रही हैं। झुकी हुई लताएँ पवन के हिलोरे में उनके सुकुमार शरीर का स्पर्श कर लेती हैं। कहीं-कहीं तो श्री भरत को अपनी विशाल भुजाओं से उन्हें विलगाते हुए मार्ग बनाना

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पड़ता है। उस समय लता-वल्लरियों की स्थिति अवर्णनीय हो जाती है, पुलक से अंग-अंग फूल उठते हैं, तृन भी किसी से पीछे क्यों रहें? वे भी मंगलमय श्री चरणों को मृदुता से चूम लेते हैं। मृग समूह समीप एकत्र हो अपने विशाल नेत्रों से उस रूप-सुधा का पान कर रहे हैं। तो पक्षियों में होड़-सी लग रही है। कहीं कोकिल कमनीय कण्ठ से कुहू-कुहू कर उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। तो कहीं पपीहा पियु-पियु पुकार उठता है। मयूर के अंग-अंग थिरक उठते हैं। सबके हृदय में उत्कण्ठा है, प्रसन्नता है, स्वागत में स्पर्धा है। प्राण-प्रिय पाहुने जो हैं, उनके ही नहीं, हृदयेश्वर तरुण तमाल वर्ण राघव के भी—

सुमन बरसि सर वन करि छाँही, बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं।
मृग बिलोकि, खग बोलि सुबानी, सेवहि सकल राम पिय जानी।

भरत सब वस्तुओं को नेह भरे नेत्रों से निहारते हैं, सभी वस्तुएँ दिव्य प्रतीत होती हैं। महर्षि से पूछते हैं और बड़े उत्साह से वे बताते भी हैं। किन्तु सारा स्वागत समारम्भ उन्हें तो राम की स्मृति में डुबा देता है। कहीं किसी पावन कुण्ड का महत्व श्रवण कर, स्नान करने के बहाने उसकी ओर एकटक देखने लगते हैं। वह प्रभु के श्री अंग के रंग से मिलता-सा है—तो कहीं किसी तरु के नीचे बैठ जाते हैं और प्रिया प्रियतम के मंगलमय ध्यान में निमग्न हो जाते हैं। उनके स्नेह को देखकर वन-देव आशीर्वाद देते हैं। और ढाई पहर पश्चात् लौट आते हैं अपने प्रभु के पाद पद्मों में—

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं, नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाँहीं।
पुन्य जलाशय भूमि बिभागा, खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा।

चारु बिचित्र पवित्र बिशेखी, बूझत भरत दिब्य सब देखी।
सुनि मन मुदित कहत कषि राऊ, हेतु नाम गुन पुण्य प्रभाऊ।
कतहुँ निमज्जन कतहुं प्रनामा, कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।
कतहुँ बैठमुनि आयसु पाई, सुमिरत सीय सहित दोउ भाई।
देखि सनेह सुभाउ सुसेवा, देहिं असीस मुदित बन देवा॥

दो० देखे थल तीरथ सकज, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुयश, मयउ दिवसु भइ साँझ॥

× × × ×

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रातःकाल स्नान के पश्चात् सारा समाज एकत्र हुआ। श्रीमद् राघवेन्द्र के लिए "आज का मुहूर्त शुभ है"—ऐसा मन में निश्चित किया, किन्तु शील-निधि को कहने में संकोच लगता है। एक बार वे महर्षि, श्री जनक और भैया भरत की ओर दृष्टि डालकर मुख नीचा कर लेते हैं। कौन जाने उनकी उस मूक दृष्टि का क्या रहस्य था? पर एक बात स्पष्ट थी कि शीलनिधि याचना कर रहे थे कि उन लोगों में से कोई इस परिस्थिति में मेरे शील की रक्षा कर ले—मुझे न कहना पड़े कि "आज जाइए"। पहले गुरु वशिष्ठ की ओर दृष्टि जाती है। "गुरुदेव! आप का कहना अनुचित भी न होगा। फिर आप धर्मज्ञ शिरोमणि और धैर्यशाली हैं। शिष्य की लाज आप के हाथ में है।" मानो मूक नेत्रों से प्रभु ने यही प्रार्थना की थी गुरु वशिष्ठ से। पर लजा कर महर्षि ने मस्तक नीचे कर लिया। "राघव! यह न हो सकेगा मुझसे! मैं इतना निष्ठुर कैसे बनूँ। तुम्हें छोड़कर जाने का प्रस्ताव मुझसे न होगा।" सम्भव है मुनि के झुके हुए भाल में पढ़ लिया हो राघव ने। तब निराश होकर दृष्टि डालते हैं महाराज श्री जनक पर—"आप तो ज्ञानियों के भी शिक्षक हैं। विदेह राज! आप ही इस मोह को दूर कीजिए। मेरा त्राण कीजिए।" किन्तु वे बड़ी ही व्यथा भरी दृष्ठि से कौशलेन्द्र की ओर देखते हैं—"बस राम! यह मुझसे न कहो। मैं ज्ञान का इससे बड़ा परिहास क्या मान सकता हूँ कि तुमसे पृथक् होने का प्रस्ताव करूँ। यह क्रूरता मुझसे न होगी नाथ!" तब निरुपाय होकर शील-संकोच भरे नयनों से भरत की ओर—अपने कोमल-प्राण प्रिय, लाड़िले भरत की ओर, करुणा और याचना भरी दृष्टि डालते हैं। उनकी दृष्टि ने कहना प्रारम्भ किया—"भरत......।" तब तक खड़े हो जाते हैं प्रेममूर्ति—"समझ गया प्रभु! आप इस दृष्टि से न देखें। आपकी याचना मुझे असह्य है। आप का भरत ही इस निष्ठुर कार्य को सम्पन्न करेगा। आज प्रेम राज्य में एक नई बात लोग सुन लें। प्रेमी कहलाने वाला निष्ठुर हृदय व्यक्ति प्रियतम से प्रस्ताव करता है कि मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।" यही मूक उत्तर था उस महामना का। हमारे राम को संकुचित न होना पड़े, बस इतने के लिए विश्व का यह अनोखा प्रेमव्रती सब कुछ करने को प्रस्तुत है। कहीं इस महात्याग की तुलना हो सकती है......।

कोई जा रहा है प्रियपात्र प्रियतम, और आज्ञा माँगता है प्रेयसी से—"मैं जाना चाहता हूँ, आज्ञा दो"। और प्रेयसी को नहीं सूझ पड़ता है कि वह क्या कहें? वह पूछ बैठती है—

रोकँहिं जौ तौ अमंगल होत, सनेह नसै जो कहौं पिय ज्ाइ . .

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जौ कहौं जाहु न तो प्रभुता जौ कुछु न कहौं तो हिए दुख पाइए ।
जौ कहौं जीहैं तुम्हारे बिना नहि, तो हरिचन्दजू क्यों पतिआइए ।
ताते पयान समय तुमही तुम्हें का कहौं मोहि पिया समझाइए ।

वास्तव में ऐसी ही कठिन समस्या है। वह सहृदया थी, उसका सोचना उचित है। किन्तु यहाँ की स्थिति निराली है। प्रियतम नहीं, प्रेमी कहने जा रहा है—"मैं जाऊँगा आज"। क्यों ऐसा कह रहा है वह? इसीलिए कि उसके प्राणेश्वर को यह कहने में संकोच लग रहा है कि "आज जाओ"। उन्हें शील न छोड़ना पड़े—इसके लिए वह स्वयं शील समाप्त कर के बोलेगा। धन्य है "तत्सुख सुखित्व" का आदर्श पालक—

भल दिन आजु समुझि मन माँहीं, राम कृपाल कहत सकुचाहीं।
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी, सकुचि राम पुनि अवनि बिलोकी।

के उत्तर में प्रेमी का कथन देखिए—

भरत सुजान राम रुख देखी, उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी।
करि दण्डवत कहत कर जोरी, राखी नाथ सकल रुचि मोरी।
मोहिं लगि सहेउ सबहिं सन्तापू, बहुत भाँति दुख पावा आपू।
अब गोसाँई मोहि देउ रजाई, सेवौं अवध अवधि भरि जाई।।

दो० जेहिं उपाय पुनि पाय जनु, देखै दीन दयालु।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोमल पाल कृपालु।।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाँईं, सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं।
राउर बदि भल भव दुख दाहूँ, प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू।
स्वामि सुजानु जानि सबही की, रुचि लालसा रहनि जन जी की।
प्रनत पालु पालिहि सबकाहू, देउ दुहू दिसि और निबाहू।
अस मोहि सब विधि भूरि भरोसो, किए बिचारु न सोचु खरोसो।
आरति मोर नाथ कर छोहू, दुहु मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू।
यह बड़ दोष दूर करि स्वामी, तजि सँकोच सिखइय अनुगामी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपरोक्त प्रार्थना में भी उनका दैन्य देखन योग्य है। वे अपनी समस्त क्रियाओं को दोषयुक्त देखते हैं। पर प्रभु को उनके स्नेह का स्मरण दिलाते हैं। साथ ही "समस्त पुरजन परिजनों की लालसा आप पूर्ण करेंगे"—इसमें अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए उपदेश देने की प्रार्थना करते हैं। सब कुछ जानते हुए भी प्रभु मुख की वाणी सुनना चाहते हैं। यह उनकी भव्य भक्ति का ही एक दृष्टान्त है।

राघवेन्द्र भरत की योग्यता से परिचित हैं। फिर भी वात्सल्य उमड़ पड़ा और भरत की लालसा पूर्ण हो गई। अपनत्व से भरा आदेश मिला—

तात तुम्हारि मोरि परिजन की, चिंता गुरुहिं नृपहि घर बन की।
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेषु, हमहिं तुमहिं सपनेहु न कलेसू।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु, स्वारथ सुजसु धरमु परमारथु।
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई, लोक बेद भल भूप मलाई।
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले, चलेहु कुमग पग परहि न खाले।
अस बिचारि सब सोच बिहाई, पालहु अवध अवधि भर जाई।
देसु कोसु परिजन परिवारू, गुर पद रजहिं लागि छर भारू।
तुम्ह पुनि मातु सचिव सिखमानी, पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।

दो० मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालह पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक।।

राज धरम सरबस एतनोई, जिमि मन माहँ मनोरथ गोई।

इस प्रकार थोड़ी-सी पंक्तियों में प्रभु द्वारा धर्म सर्वस्व ही व्यक्त हुआ। श्री भरत के हृदय को इससे धैर्य तो हुआ, पर फिर भी एक आधार के विना पूर्ण सन्तोष नहीं होता है। राघवेन्द्र भक्त परवस हैं अतः उसकी इच्छा पूरी करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। किन्तु गुरुजनों की उपस्थिति में मर्यादा के ध्यान से वे संकुचित हो रहे हैं। अन्त में स्नेह की विजय हुई। श्री भरत के चरणानुराग से वे परिचित हैं। साथ ही "मोरे शरण राम की पनहीं" की भावना लेकर आए हैं—अतः भाव वस्य प्रभु ने उन्हें चरण पादुका प्रदान की। और आज प्रेममूर्ति ने उसे सहर्ष मस्तक पर धारण कर लिया—

भरत सील गुरु सचिव समाजू, सकुच सनेह बिबस रघुराजू।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दोन्ही, सादर भरत सीस धरि लान्ही।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अहा ! उस काष्ठ पादुका का मूल्य हम लोग क्या जान सकते हैं। हम लोगों का भावहीन हृदय उन दिव्य युगल रक्षकों को क्या पहचाने ? वास्तव में तो विभिन्न भाववालों ने उसका अपनी भावना के अनुरूप ही दर्शन किया।

पुरवासियों न देखा और हर्षविभोर हो गए। उन्हें लगा मानो प्रभु ने हम सब की प्राण-रक्षा के लिए दो रक्षक दिये हैं।

जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।

किन्तु गूढ़ सनेही महाराज श्री जनक ने देखा और मुस्करा पड़े। अहा ! यह तो भरत-प्रेम-रत्न को छिपाने के लिए भावमय संपुट (सन्दूक) है—

सम्पुट भरत सनेह रतन के।

मंत्रज्ञ महात्मा वशिष्ठ की दृष्टि में वह रा और म दो अक्षर हैं। जो जीव के लिए साधनमय हैं। "आखर जनु जुग जीव जतन के"।

माताओं की दृष्टि में वह कुल-रक्षक दो किवाड़ हैं। "कुल कपाट कर कुशल करम के।"

सेवा की भावना में कुशल धर्म के लिए दो हाथ हैं।

सेवकों के लिए सेवा-धर्म का मार्गदर्शन कराने के लिए दो नेत्र हैं—

"बिमल नयन सेवा सुधरम के"

किन्तु कोई उस दिव्य भाव का स्पर्श नहीं कर सका, जहाँ तक यह भावोन्मादी प्रेमव्रती पहुँचा। हमारे भैया भरत की दृष्टि में, वे दो पादुकाएँ साक्षात् "श्री सीता और राम हैं।" कोई उस प्रेमी की दृष्टि से तो देखे—

उसके हृदय में रंचमात्र सन्देह या भ्रम नहीं है कि यह युगल स्वरूप नहीं हैं। मुझे लगता है अवश्य ही पादुका रूप में राघव लौट आए अपने भरत के साथ। कहीं भरत से पृथक् राम रह सकते हैं ? हाँ मर्यादा का पालन तो करना ही था। अतः लोकदृष्टि से पादुका दी। पर पादुका थी कहाँ— प्रभु के पास ? मानस में उनका 'पायदे पाँव' चलना स्पष्ट है, तब फिर हमारे सर्व समर्थ जब अनेक रूप धारण कर सकते हैं, तो एक और सही। प्रेमी के लिए पादुका बन गए। यह नवीन अवतार धारण करना पड़ा अपने भरत के लिए। उनसे एकान्त में मधुर संलाप करने के लिए।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्त में वह क्षण भी आ गया—जब भरत को विदा करने के लिए प्रेम पराधीन करुणा वरुणालय भाव-स्रोत कौशलेन्द्र अपनी विशाल भुजाओं से प्रेममूर्ति भ्राता भरत को हृदय से लगा लेते हैं। आज धीर शिरोमणि का धैर्य जाता रहा। घनश्याम के स्नेही नैन बरस पड़े। वह अविरल अश्रु प्रवाह क्या है ? प्रभु के हृदय का भाव-स्रोत ही जो इन नेत्रों के द्वारा प्रवाहित हो रहा है। रोम-रोम से प्रेम व्यक्त हो रहा है। एक दूसरे के गाढ़ालिंगन से पृथक् ही नहीं होना चाहते। राघवेन्द्र अपनी व्यथा के भार से हिचकियाँ लेकर रुदन कर रहे हैं। मानो वे कहना चाहते हैं "भरत तू ने तो पा लिया आधार—पर मैं किस आधार पर अवधि व्यतीत करूँ ?" उस समय की स्थिति भाषा से परे है। स्वार्थी देवता भी व्यथित हो उठे। महाराज श्री जनक तथा मुनिगण जो अपनी ज्ञान-निष्ठा व दृढ़ता के लिए विश्व में प्रसिद्ध थे, वे भी आज—और वे भी नहीं उनका वैराग्य तथा उनका विवेक भी प्रेममग्न हो गया—

तन मन बचन उमग अनुरागा, धीरधुरन्धर धीरज त्यागा।
बारिज लोचन मोचत बारी, देखि दशा सुर सभा दुखारी।
मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से, ज्ञान अनल मन कसे कनक से।
जो बिरंचि निर्लेप उपाए, पदुप पत्र जिमि जग जस जाए।

दो॰ तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार।।

चारों ओर घोर व्यथा और स्नेह का साम्राज्य छाया हुआ है। महा-कवि का हृदय रुदन कर रहा है, नेत्र भी बरस रहे हैं, पर वह अपनी लेखिनी को चलाए जा रहे हैं। हाथ काँप उठता है। शरीर शिथिल हो रहा है। मन कह रहा है—"बस बस कवि अब रहने दो राम और भरत का वियोग। यह क्या लिख रहे हो।" पर कवि कर्तव्य पराधीन है। उसका कार्य है घटना का वर्णन। तब कवि का हृदय पुकार उठता है—

बरनत रघुबर भरत बियोगू, सुनि कठोर कवि कहिहहिं लोगू।

राघव रुद्ध कण्ठ, जल पूरित नेत्रों से भरत को समझाते हैं। पर क्या समझावें—स्वयं ही उनके धैर्य का बाँध टूट गया है। उसके पश्चात् प्रभु ने शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया। हृदय प्रसन्नता से भर उठा। मन-ही-मन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कह उठे—"धन्य हो मूकव्रती ! तुम्हारा जीवन सफल हो गया। तुमने भरत का अनुगमन किया है। तुम्हारा भाग्य अतुल है।"

सारा समाज प्रभु से यथायोग्य मिलकर चलने के लिए प्रस्तुत हो गया। श्री भरत ने पुनः राघवेन्द्र के पुनीत पद-पद्मों की बन्दना की और उसके बाद चित्रकूट निवासी मुनियों की बन्दना करते हैं--रुद्ध कण्ठ से कहते हैं--"हमारे प्रभु राम की रक्षा करना"। वन देव की स्तुति करते हैं। "देव! हमारे कौशल पाल तुम्हारे आश्रय में निवास करते हैं। उन्हें कष्ट न हो। इस दीन की यही प्रार्थना है।" स्नेह पूरित हृदय से महात्माओं ने आशीर्वाद दिया। आश्वासन दिया। वार-वार चलते हैं और लौटकर प्रभु के अंक से लिपट जाते हैं। अहा! वह स्नेह, वह करुणा क्या वाणी का विषय है? समस्त पुरवासी ही नहीं, पशु भी प्रभु के वियोग से व्यथित हो रहे हैं। अश्व आँसू बहाते हुए कृपालु कौशल पाल की ओर देखते हैं। करुणानिधान भी स्नेह से अपने कोमल कर कमलों से उनका स्पर्श करते हैं--पुचकारते हैं। पर उनका हृदय फटा जा रहा है--पग आगे की ओर पड़ते ही नहीं। विवश होकर जाना पड़ रहा है। आज वे वायुवेग को लज्जित करनेवाले नहीं हैं--उनकी गति मन्थरता की सीमा है--

हृदय राम सिय लषन समेता, चले जाँहि सब लोग अचेता।
वसह बाजि गज पशु हिय हारे, चले जाँहि परबस मन मारे।

× × × ×

उधर कोमल कारुणिक रामभद्र लौटकर बटवृक्ष के नीचे बैठ आँसू बहा रहे हैं। भरत के स्नेह का वर्णन प्रियाजी व लक्ष्मण को सुनाते हैं, पर कण्ठ रुद्ध हो जाता है--कह नहीं पाते। फिर प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि कहे बिना रहा नहीं जाता। चित्रकूट का प्रमोद और मंगल से पूर्ण वन विषाद की सीमा बन गया है। समस्त तरु, लता, वल्लरी कुम्हलाई हुई हैं। पक्षियों का कमनीय कूँजन कहीं सुनाई नहीं पड़ता। मृगों का समूह, जिस मार्ग से भरत गए हैं, उस ओर देखता हुआ आँसू बहा रहा है--

प्रभु सिय लषन बैठि बट छाँहीं, प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं।
भरत सनेह सुभाऊ सुबानी, प्रिया अनुज सन कहत बखानी।
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी, श्री मुख राम प्रेम बस बरनी।
तेहि अवसर खग मृग जल मीना, चित्रकूट चर अचर मलीना।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

× × × ×

इधर श्री भरत अवध में पहुँच गए हैं। शासन कार्य के लिए यथायोग्य नियुक्ति कर के शत्रुघ्नजी को मातृसेवा का कार्य सौंपते हैं। समस्त पुरवासियों को सान्त्वना देकर सुखपूर्वक निवास की प्रार्थना करते हैं। इसके पश्चात् दोनों भ्राता गुरुदेव के निकट जाकर उन्हें प्रणाम करते हैं और "नियम पूर्वक" रहने की आज्ञा माँगते हैं। स्नेह, प्रसन्नता और आदर से महर्षि का हृदय भर आया। आज तक आस्तिक वैदिकों ने जो स्वतन्त्रता भगवान को भी नहीं दी—वे कहते हैं "वेद ही प्रामाण्य है। भगवान का भी वही आचरण उपदेश मान्य है, जो वैदिक हो।" क्योंकि वेद ही उनकी दृष्टि में "सकल दोष शंका कलंक पंक अस्पष्ट" है। व्यक्ति में तो अनेक दोष हो सकते हैं। जब आस्तिक जन वेद ही को प्रामाण्य मानते हैं, भगवान को नहीं, तब किसी व्यक्ति को प्रमाण मानना तो दूर रहा। पर विश्व इतिहास में एक व्यक्ति ऐसा भी हुआ, जिसे वेद सदृश ही प्रमाण योग्य स्वीकार किया गया। वह हैं हमारे धर्म मूर्ति भरत। और यह प्रामाण्य भी किसी साधारण जन ने नहीं ब्रह्मपुत्र धर्म-शास्त्र निर्माता महर्षि वशिष्ठ ने स्वीकार किया। आज उन्होंने श्री भरत से स्पष्ट कह दिया–भरत! मैं अन्यों को ही धर्माधर्म का निर्णय बता सकता हूँ। पर तुम को ......।

समुझब कहब करब तुम जोई, धरम सार जग होइहि सोई।

इतना महान वह व्यक्ति नम्रता की मूर्ति है। गुरुदेव से आज्ञा लेकर ही शुभ मुहूर्त में राघवेन्द्र की पुनीत पादुका को सिंहासनासीन करते हैं। पादुका श्री से आज्ञा लेकर नन्दिग्राम में पर्णकुटी निर्माण करके उसमें निवास करते हैं। और उनकी रहनि का वर्णन गोस्वामीजी के शब्दों में पढ़िए—

जटा जूट सिर मुनि पट धारी, महि खनि कुस साँथरी सँवारी।
असन बसन बासन ब्रत नेमा, करत कठिन ऋषि धरम सप्रेमा।
भूषन बसन भोग सुख भूरी, मन तन बचन तजे तिन तूरी।
अवध राजु सुरराजु सिहाहीं, दशरथ धन लखि धनद लजाहीं।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा, चंचरीक जिमि चम्पक बागा।

प्रभु जिन नियमों का पालन मर्यादा की दृष्टि से कर रहे हैं, यह महान प्रेमी उनकी अपेक्षा कठिन नियमों का पालन स्वेच्छा से कर रहा है। वल्कल वस्त्र, जटाजूट, यही उनका श्रृंगार है। नीरस कन्द-मूल आहार। किन्तु

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह सब त्याग कष्टपूर्वक नहीं—क्योंकि लोग धर्मपालन के लिए कष्टपूर्वक त्याग करते हैं। यहाँ तो "करत कठिन ऋषि धरम सप्रेमा" हृदय में राम-प्रेम, बुद्धि में वैराग्य और आचरण में त्याग यह है उस महाव्रती का संक्षिप्त परिचय। जिस राज्य के लिए संसार में बड़े-बड़े संग्राम होते हैं, उन राज्यों में सर्वाधिक ऐश्वर्य संयुक्त यह अवध राज्य न लुभा सका उस असिधार व्रती को। वे नित्य अवध का प्रबन्ध करते हैं। वहाँ की आकर्षक सामग्रियाँ उनके दृष्टि-पथ में आती हैं, किन्तु उनके प्रति उनके मन में कोई राग उत्पन्न नहीं होता। राम-पद-पद्म-मधुकर उस राज्य में उसी प्रकार निवास करता है, जैसे चम्पक वन में चंरीक। चातक का-सा अचल नेम-प्रेम और हंस का विवेक दोनों एकत्र हैं उस प्रेमी में।

शरीर प्रतिदिन क्षीण हो रहा है, पर मन में राम प्रेम पीनता बढ़ती जा रही है। मुखमण्डल अभूतपूर्व कान्ति से चमक रहा है। सौन्दर्य यथापूर्व है। शारीरिक शक्ति भी स्थिर है। प्रेम भरे हृदय से पादुका भगवान का पूजन करते हैं। और सचमुच वे भी उनसे मधुरालाप करते हैं, आज्ञा देते हैं।

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥

शरीर अहर्निशि रोमांच से उत्फुल्ल रहता है। आँखों से होता रहता है अनवरत अश्रु प्रवाह और जिह्वा पर प्रियतम का मधुमय 'राम नाम'। उस रहनि पर जिसकी दृष्टि पड़ जाती है, वह भी प्रेममग्न हो जाता है। नन्दिग्राम का कोना-कोना तप और प्रेम के पवित्र वातावरण से भरपूर हो रहा है। गीतावली रामायण के कई पदों में महाकवि ने उस सरस झाँकी का चित्रण किया है। उसमें से दो पद यहाँ अर्पित किए जाते हैं—

मोहि भावति, कहि आवत नहिं भरत जू को रहनि।
सजल नयन सिथलि बयन प्रभु-गुन-गन कहनि।
असन-बसन-अयन-सयन धरम गरुअ गहनि।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि।
सीता-रघुनाथ-लषन-बिरह-पीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक राम चरन चहनि ॥

× × × ×

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जबतें चित्रकूट ते आए।
नन्दि-ग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परन कुटी करि छाए ।।१

अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें।
प्रभु-पद-प्रेम-नेम-व्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ।।२

सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे।
प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ।।३

तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु, त्यों त्यों प्रीति अधिकाई।
भए न हैं, न होहिगें कबहूँ भुवन भरत से भाई ।।४

यद्यपि महाकवि रामानन्य हैं और सर्वत्र उन्हें अपने राम का ही गुण दीखता है। जैसा श्री गीधजी के प्रसंग में---यद्यपि प्रभु के कार्य में उन्होंने प्राणार्पण कर दिया था, अतः उन्हें मुक्ति मिलनी स्वाभाविक है। पर उसमें भी वे अपने राघव का ही गुण देखते हैं--

गीध अधम खग आमिष भोगी, गति दीन्ही जो जाँचत जोगी।

शबरीजी यद्यपि परम भक्तिमती थीं, पर उनको गति देने में भी उन्हें अपने कौशलपाल कृपालु के ही गुण दीखते हैं--

जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्ह असनारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ।।

उपरोक्त उद्धरणों से उनका पक्ष प्रगट है। किन्तु आज रामानन्य सब नियम भूल तुलना कर बैठे प्रेममूर्ति श्री भरत और भगवान राघवेन्द्र की। और निर्णय भी बड़ा विलक्षण दे दिया--

लखन राम सिय कानन बसहीं, भारत भवन बसि तप तन कसहीं।
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू, सब बिधि भरत सराहन जोगू।

एक ओर है राघव लक्ष्मण और जगज्जननी जानकी की तपस्या दूसरी ओर भवनस्थ भरत की तपस्या। किन्तु दोनों ओर अच्छी तरह देखने से यह ज्ञात हो जायगा कि सब प्रकार से श्री भरत ही सराहने योग्य हैं---और वे यह मत "सब लोगू" कहकर व्यक्त करते हैं। निर्विवाद सिद्ध है यह सिद्धान्त।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री राघव	श्री भरत
पितृ-आज्ञा से वन में गए हैं, किन्तु साथ में श्री किशोरीजी और प्रेममूर्ति लक्ष्मण जैसे सेवक हैं। सदा जागरूक रहकर सेवा करने वाले।	पिता ने राज्य दिया है, किन्तु स्वेच्छा से तपस्या कर रहे हैं। स्वयं ही पादुका व पुरवासियों की सेवा करते हैं, सेवा नहीं लेते।
श्री लक्ष्मण	
अहर्निशि सेवा में संलग्न हैं, किन्तु साहचर्य संयोग का सुख प्राप्त है।	श्री लक्ष्मण केवल प्रभु की सेवा में संलग्न हैं। पर यह महाव्रती तो प्रभु, उनकी पादुका, उनकी प्रजा, सब की सेवा कर रहा है। साथ ही विरहाग्नि में शरीर को तपा रहे हैं।
श्री किशोरीजी	
सर्व त्याग कर के आई हैं, पर वह तो पतिव्रता का कर्त्तव्य है। फिर सबसे बड़ी बात कि अहर्निशि प्रियतम का साहचर्य उनका स्नेह-सम्भाषण प्राप्त है।	पर यहाँ तो सर्व त्याग करने के पश्चात् भी प्रभु को संकोच न हो, इसलिए न साथ की प्रार्थना की न लौटने को कहा। स्वयं विरह कष्ट उठा रहे हैं।

अतः यह तो निर्विवाद है कि महामना भरत का स्थान सर्वोत्कृष्ट है अयोध्या काण्ड में श्री 'भरत रहनि' का उल्लेख होने के पश्चात् लंकाकाण्ड में ही उनका उल्लेख आता है। स्वभावतः इस बीच अयोध्या में कोई उल्लेखनीय नवीन घटना नहीं हुई। प्रेममूर्ति अहर्निशि पुरवासियों की रक्षा और शासन का प्रत्येक कार्य करते हुए भी राम-प्रेम, स्मरण, चिन्तन, में तल्लीन रहे। उनके उस विलक्षण असिधार व्रत की तुलना प्रेममयी गोपियों से ही की जा सकती है।

या दोहने१वहनने मथनोपलेप ।
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो ।
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ।

(श्रीमद्— १०-४४-१५)

जो गोपियाँ गाय दुहते, धान कूटते, दही बिलोते, आँगन लीपते, बालकों को झुलाते, बच्चों को रोटी देते, घरों में छिड़काव करते तथा झाड़ देते समय

१३

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रेमपूर्ण चित्त से, आँखों में आँसू भरे, वाणी से नन्दनन्दन श्री कृष्ण के गुणगान किया करती हैं, वे तद्गत्चित्ता गोपियाँ धन्य हैं।

यहाँ एक प्रश्न का उत्तर दे देना भी अपेक्षित है। कुछ लोगों को जिज्ञासा होती है कि श्री भरत कभी-कभी दर्शनों के लिए क्यों नहीं चले जाते थे ? अयोध्या और चित्रकूट की दूरी भी कुछ ऐसी नहीं थी कि वहाँ जाने में बहुत विलम्ब लग।

गम्भीर प्रेम की दृष्टि से विचार करने पर श्री भरत का वहाँ न जाना ही उचित प्रतीत होता है। यों तो प्रेमियों की गति ही निराली है। वृन्दावन से मथुरा की दूरी ही क्या ? महाभागा प्रेममयी गोपियाँ अर्हनिशि उनके लिए व्याकुल रहीं। उनकी व्यथा का वर्णन पढ़कर वज्र भी पिघल जाय। किन्तु वे एक बार भी तो ब्रज से मथुरा न आईं। क्यों ? उस न जाने में उनका प्रेम ही तो कारण था। भावुक जनों ने इसका अनेक प्रकार से उत्तर दिया है। यही तो अन्तर है 'काम' और 'प्रेम' में। प्रेमी जनों का सर्वस्व उनकी सारी चेष्टा केवल प्रियतम को सुखी बनाने के लिए है। "मेरे किसी कार्य से उन्हें लज्जित होना पड़े", यह वे कैसे सोच सकते हैं।

श्री भरत जा सकते थे, पर वे जानते थे कि इससे हमारे राघव को संकोच होगा। उनकी उदासी मर्यादा भंग होगी। मेरी देखा-देखी सभी आते-जाते रहेंगे। अतः बाध्य होकर उन्हें चित्रकूट का त्याग कर दूसरे वन में भटकना होगा। अपने नेत्र-सुख के लिए वह प्रियतम को संकोच, कष्ट में कैसे डाल सकते थे ? फिर उन पर भगवान कौशलेन्द्र ने प्रजा-रक्षण का कार्य सौंपा है। और वे प्रतिक्षण सावधान होकर राघव की वात्सल्य भाजन प्रजा का रक्षण कर रहे हैं। उस व्रत से वे विचलित हों—भला उस आज्ञाकारी द्वारा यह कैसे सम्भव था। जो कुछ निषादराज समाचार भेज देते, वे तो बस उतने में ही सन्तोष कर लेते थे। पर एक दिन वह भी छिन गया। क्योंकि वही हुआ, जिसकी आशंका थी। कुछ लोग दर्शन के लिए जाने लगे और मर्यादा पुरुषोत्तम ने चित्रकूट त्याग का संकल्प कर लिया—

बहुरि राम अस मन अनुमाना, होइहि भीर सबहिं मोहि जाना।

प्रभु वहाँ से चले गए। इसकी सूचना पत्रिका द्वारा श्री निषादराज ने प्रेममूर्ति के निकट भेज दी। वे तो मार्ग ही देखा करते थे इस शुभ अवसर का। शीघ्रतापूर्वक गुरुदेव के निकट वह पत्र पहुँचा दिया। और गुरुदेव

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

का स्नेह देखिए। वे वृद्ध महर्षि स्वयं ही पत्र लेकर घर-घर रुद्ध कण्ठ से डोलते सुनाते फिर रहे हैं। दूसरे को यह कार्य सौंपना उन्हें भाता ही नहीं। माता कौशल्या के निकट भी महर्षि ने समाचार सुनाया। उनके लाड़िले राघव का समाचार मिला है। साथ ही वे महर्षि अगस्त्य के शिष्य के साथ हैं-- इस कल्पना से उन्हें बड़ा साहस है। उनके लिए तो वह जीवन मूरि है। पुलकित हृदय से वे अपनी सखि को यह संवाद सुनाती हैं--

सुनी मैं, सखि ! मँगल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निषाद राज की आजु भरत पहँ आई।
कुवँर सो कुसल छेम अलि ! तेहि पल कुल-गुरु कहँ पहुँचाई।
गुर कृपालु सँभ्रम पुर घर घर सादर सबहिं सुनाई।
बधि बिराध, सुर साधु सुखी करि, ऋषि-सिख-आसिष पाई।
कुंभज शिष्य समेत सँग सिय, मुदित चले दोउ भाई।
बीच विन्ध्य रेवा सुपास थल बसेहैं परन-गृह छाई।
पँथ-कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास सुनि गाई।

× × × ×

इसके पश्चात् लंकाकाण्ड में ही महाकवि फिर हमें भावसागर श्री भरत का दर्शन कराते हैं।

अर्ध रात्रि के समय जब सारी अयोध्या निस्तब्ध है--सब लोग निद्रा निमग्न हैं--तब भी देखिए एक असिधार व्रती जाग रहा है। उसके नेत्र में निद्रा कहाँ ? भगवान नन्दनन्दन की किसी वियोगिनी भावुक गोपी ने स्वप्न में प्रियतम के दर्शन किए और प्रातःकाल उस स्वप्न-मिलन की घटना सर्वोत्कृष्ट भाव-मग्ना-गोपी को सुनाई। उस प्रेममयी ने कहा--"धन्य हो गोपी ! जो तुम स्वप्न में तो उनसे मिल लेती हो। किन्तु सखी यहाँ तो प्राणप्यारे के जाने के पश्चात् वैरिणी निद्रा भी छोड़ कर चली गई"।

अस्माकं तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणी।

प्रेमियों की गति बड़ी निराली है। उनके रोम-रोम में उनका प्यारा प्राणेश्वर रम रहा है। अब नेत्रों में किसी वस्तु के लिए स्थान कहाँ। किसी ने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मस्ताने कबीर से कहा--"महात्मा वृद्ध हो रहे हैं। नेत्र में काजल दिया करिए"--प्रेमी बोल पड़ा--

कबिरा काजर रेखहूँ, अब तो दई न जाए ।
नैननि पीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाए ।

और कज्जल ही नहीं, निराकार निद्रा के लिए भी उसमें स्थान नहीं--

आठ पहर चौंसठ घड़ी, मोरे और न कोय ।
नैना माँहीं तू बसै, नीदहिं ठौर न होय ।

तो सचमुच श्री भरत के नेत्रों में नींद को भी ठौर नहीं। किन्तु न जाने अपशकुन क्यों हो रहा है। हृदय धड़क रहा है। राघव की चिन्ता से हृदय व्यथित हो उठा। उसी समय आकाशमार्ग में पर्वतधारी कोई विशाल व्यक्ति दीख पड़ा। अपशकुन तो हो ही रहे थे, उन्होंने सोचा प्रभु का विरोधी कोई राक्षस है, जो उनसे बस न चलने पर अयोध्या को नष्ट करने आया है। और सच तो यह है कि उस नटनागर की ही तो प्रेरणा थी श्री भरत के हृदय में। उस खिलाड़ी को सूझ गया होगा कोई खेल--सम्भव है भक्तराज श्री हनुमान जी को शिक्षा देने के लिए ही उसने ऐसी प्रेरणा दी हो। यूँ श्री भरत स्वभावतः बड़े शान्त हैं। उनका अस्त्र प्रेम है--धनुष-बाण नहीं। फिर भी वे साधारण व्यक्ति नहीं। उसके बल का दिग्दर्शन कराने के लिए यह घटना महान संकेत है। बाण लिया पर बिना नोक धनुष की प्रत्यंचा खिंची और वायु वेग से जाते हुए अतुलित-बल-बज्रांग-महावीर-हनुमान पृथ्वी पर गिर पड़े। मूर्च्छित होते ही भक्त के मुख से निकला--'राम-राम'। श्री भरत का हृदय काँप उठा। दौड़ पड़े। हा ! नाथ। क्या यही शेष था--इस अभागे द्वारा भक्त पर प्रहार हुआ। दैन्य मूर्ति अपार ग्लानि से गड़ गए। उठाकर गोदी में ले लेते हैं--जगाते हैं। पर मूर्च्छा भंग नहीं होती। तब सपथ ली स्नेही ने--

बिकल बिलोकि कीश उर लावा, जागत नहिं बहु भाँति जगावा ।
मुख मलीन मन भए दुखारी, कहत बचन भरि लोचनवारी ।
जेहि बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा, तेहि पुनि यह दारुन दुखदीन्हा ।
जो मोरे मन बच अरु काया, प्रीति राम पद कमल अमाया ।
तौ कपि होउ बिगत श्रम शूला, जौं मो पर रघुपति अनुकूला ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अमोघ औषधि का प्रयोग किया था प्रेमी ने। श्री हनुमान उठ बैठे। सामने देखते हैं---अहो! क्या प्रभु विजयी होकर लौट आए। या यह भी कोई राक्षस की माया है? अचानक ध्यान हो आया। अहो! यह तो प्रभु पद-पद्म-मधुकर भरत और शत्रुघ्न हैं।

भरत-सत्रु सूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम लषन रन जोति अवध आए, कैधौं मोहि भ्रम।
कैधौं काहू कपट ठयो है।

स्नेह उमड़ पड़ा---चरणों में गिर पड़े। प्रेमपूरित हृदय से आँसू बहाते हुए श्री भरत ने उठाकर हृदय से लगा लिया।

प्रेम पुलकि पहिचानि के पद पदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहु भाइन।
सनेह सों उर लाय लयो है।

किन्तु सारा समाचार सुनते ही ग्लानि की सीमा न रही। फिर भी इस समय चिन्ता का अवसर नहीं। श्री हनुमान से कहते हैं---"भक्तराज! आप मेरे बाण पर बैठ जाएँ, क्षण भर में मैं आपको राघवेन्द्र भगवान के निकट पहुँचा दूँगा।" महावीर चकित हो गए---क्या कह रहे हैं, राजकुमार? सुमेरु से भी अधिक गुरु मेरा भार वाण कैसे सम्भाल सकता है? हृदय में एक अभिमान की छाया आई। परीक्षा के लिए सोचा, "देखूँ तो बाण पर चढ़ कर"---देखते हैं---परन्तु आश्चर्य और महा आश्चर्य। भक्तराज हनुमान सावधान हो गए। तुरन्त ध्यान हो आया---जिनकी गुणगाथा नित्य प्रभु श्री मुख से गाते हैं, वे ही हैं ये प्रेममूर्ति-भरत। न जाने कहाँ से मुझे यह भ्रम हुआ। बाण से उतर कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। वाष्प-वारि-पूरित-नेत्र व भाव भरे शब्दों में धन्य भरत का उच्चारण करते हैं।

समाचार कहि गहरु भो तेहि ताप तयो हैं।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठवौं,
सुनि हरि-हिय गरब गूढ़ उपयो है।
तोर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुन गननि जयो है।
धनि भरत! धनि भरत! करत भयो।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मगन मौन रह्यो, मन अनुराग रयो है।
यह जल-बिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यों, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसि दास रघुबीर-बन्धु-महिमा को सिन्धु तरि को कबि
पार गयो है।

समुद्रोल्लंघन करनेवाले महावीर भी इस महिमा के सिन्धु को नहीं पार कर सके। श्री हनुमान शीघ्र गति से यह कहते हुए चले कि आपकी कृपा से मैं बाण-गति से ही पहुँचूंगा। पर मार्ग में वे प्रतिक्षण पुलकित हो रहे हैं। कभी प्रेममूर्ति का बाहुबल स्मरण करके, तो कभी उनकी तपस्या का स्मरण कर के श्रद्धावनत हो जाते हैं। उनके प्रेम की स्मृति से तो उनका रोम-रोम प्रेम-मय हो जाता है।

भरत बाहुबल शीलगुन, प्रभु पद प्रीति अपार।
जात सराहत मनहिं मन, पुनि पुनि पवन कुमार॥

होतो नहिं जौ जग जनम भरत को।
तौ कपि कहत, कृपान-धार मग चलि, आचरत बरत को?
धीरज-धरम धरनि धर धुरहूँते गुरु धुर धरनि धरत को।
सब सद्गुन सममानि आनि उर, अघ ओगुन निदरत को?
सिवहु न सुगम सनेह राम पद, सुजननि सुलभ करत को?
सृजि निज जस-सुर तरु तुलसी कहँ, अभिमत फरनि फरत को?

इधर श्री भरत के हृदय में व्यथा के साथ ही द्वन्द्व का उदय भी हो आया। एक ओर राघवेन्द्र की आज्ञा, तो दूसरी ओर प्रभु पर भीषण संकट। निश्चय ही यह एक बड़ी जटिल समस्या थी। जिस पर आज भी प्रश्न उठाया जाता है। ऐसा समाचार सुनकर भी श्री भरत सहायता के लिए क्यों न गए? उनके हृदय में यह प्रश्न उठा था। उस द्वन्द्व के लिए गोस्वामीजी ने मार्मिक उपमा दी है——

आयसु इतहिं स्वामि सँकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिदरयों अकाश सो, कैसे कै जात सियो हैं?

"आकाश फट जाए, तो उसे कैसे सिया जाए?" कितना मार्मिक भाव है। आकाश का फटना असम्भव है। वह सर्वत्र व्यापक और निराकार है। यहाँ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यह घटना ही आकाश का फटना है। भगवान राम के लघु भ्राता शेषावतार श्री लक्ष्मण एक तुच्छ राक्षस से पराजित हो जाएँ—अखिल ब्रह्माण्ड नायक संकट में। कैसा महान आश्चर्य है। आकाश के फटने की अपेक्षा भी असम्भव। पर सुन चुके हैं स्पष्ट। तब क्या करें? उसे सिएँ? कौन सिए? किससे सिएँ?

एक पंक्ति में गुप्त रूप में गोस्वामीजी ने उत्तर दे दिया। ध्यान से पढ़ने पर रहस्य प्रगट हो जाता है। संकट से व्याकुल होकर सहायता के लिए जाना चाहें, यह स्वाभाविक है। पर प्रभु को तो यह अभीष्ट नहीं है। उनका सारा नाटच ही बिगड़ जाएगा। यह खेल, जो बन्दर-भालुओं की सेना को साथ में लेकर किया जा रहा है एक ओर रह जाएगा। फिर घर से सहायता लेने से व्रत-भंग की भी आशंका है। अतः अन्तर्यामी सूत्रधार ने ऐश्वर्य की स्मृति करा दी। ऐसा नहीं है कि प्रेमियों को ऐश्वर्य-ज्ञान नहीं होता। वैसे तो नाटच-रक्षा के लिए प्रभु उन्हें अधिकांश समय माधुर्य से पूरित रखते हैं। क्योंकि सदा ऐश्वर्य-ज्ञान से नाटच न हो सकेगा। पर उसी तरह कभी-कभी लीला-रक्षा के लिए ऐश्वर्य-ज्ञान की भी आवश्यकता पड़ जाती है। अतः उस समय माहात्म्य ज्ञान को उदित कर देते हैं। श्री लक्ष्मणजी तो माधुर्य के अनन्योपासक हैं। सदा ऐश्वर्य-ज्ञान से दूर रहकर अविवेकी पुरुष की भाँति राम-सेवा में संलग्न हैं—

सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं, जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं।

फिर भी राघव जब आवश्यकता समझते हैं, तो हृदय में ऐश्वर्य-ज्ञान का उदय करा देते हैं। खरदूषण १४ सहस्र सेना लेकर आक्रमण करते हैं। ऐसी परिस्थिति में अनन्यव्रती महावीर लक्ष्मण को प्रभु आज्ञा देते हैं—

लै जानकिहि जाहु गिरि कन्दर, आवा निशिचर कटक भयंकर।

और लक्ष्मणजी जानकी को लेकर चले जाते हैं। सोचिये यदि उस समय ऐश्वर्य-भाव उदित न हो, तो उस संकट के समय अकेले उन्हें छोड़कर लक्ष्मण जा सकते हैं? क्या पतिव्रता शिरोमणि जानकी वहाँ से हट सकती थीं? आज्ञा का कारण यहाँ नहीं। क्योंकि आज्ञा तो प्रभु वन में साथ जाने के लिए भी नहीं दे रहे थे। पर दोनों प्रेमी उस समय कहाँ माने? पर यहाँ सूत्रधार ने उन दोनों के हृदय में अपना महत् ऐश्वर्य प्रकट कर दिया। "भृकुटि विलास सृष्टि लय होई" का ध्यान आते ही वे सहर्ष चले गए।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री भरत की भी यही स्थिति हुई। उनके हृदय में द्वन्द्व देख नटनागर ने प्रेरणा की और बुद्धि ने कहा—"क्या आकाश फट सकता है ?" उत्तर मिला—"नहीं।" बुद्धि ने कहा—"यदि कभी आकाश फटा प्रतीत हो, तो सीने की चेष्टा करनी चाहिए या नेत्र भ्रम मानना चाहिए ?" उत्तर मिला—"सोने की चेष्टा सर्वथा हास्यास्पद है। भ्रम निवृत्ति का प्रयास उचित है। तब फिर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक कर्तुं-अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभु पर संकट कैसे सम्भव है। सहायता करने जाना केवल उनकी लीला में विघ्न डालना है। संसार कहेगा—"भरत प्रेमी नहीं, वह संकट में सहायक न हुआ ?" उन्होंने सोचा—"यह तो मुझे अभीष्ट ही है। मैं उनकी लीला में विघ्न क्यों बनूँ ?" बस हृदय समाहित हो गया। "तुलसिदास बिदरयो अकाश सो कैसे कै जात सियो है" से स्पष्ट कर देते हैं।

और ध्यान से पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री हनुमान भी समग्र लंका नष्ट करने में समर्थ थे और समुद्र तट पर आवेश में ऐसा कहते भी हैं—

सहित सहाय रावणहिं मारी, आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।

किन्तु प्रभु की लीलाप्रियता का स्मरण कर लज्जित हो जाते हैं। जामवन्त से उचित सम्मति माँगते हैं। वे भी इतनी ही सम्मति देते हैं कि "पता लगाकर आओ"—क्योंकि प्रभु जब कपि-सेना साथ लेकर स्वयं उसका वध करेंगे, तो उनकी यश-वृद्धि होगी। हम लोगों को उनका यश न लेना चाहिए।

परिकर की इस भावना से स्पष्ट है कि प्रधान व्यक्ति तो सभी लीला से परिचित हैं—अतः वे उस नाटक के अनुरूप ही कार्य करते हैं। राघव के हाथ में स्मृति और विस्मृति दोनों ही हैं। इन दोनों से वे समान रूप में अपने नाट्य को सफल बनाते हैं। अतः साक्षात् पार्षद विवेकी श्री भरत का सहायता के लिए न चल पड़ना माधुर्य-लीला न होकर ऐश्वर्य-लीला का सूचक है।

× × × ×

अवधि का अन्तिम दिवस ! कितना सुमधुर, कितना मादक, कितना आह्लादपूर्ण होगा उसका प्रतिक्षण प्रेमी के लिए। उसकी समस्त साधना, व्याकुलता इसी क्षण के लिए तो है। जीवन के अनेक दिवसों में वह दिन उसका जीवन है—प्राण है—आशा और विश्वास है—सर्वस्व है। किन्तु यदि कहीं

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उसके हृदय में प्रियतम प्राणवल्लभ के आने में सन्देह उत्पन्न हो जाए, तो सम्भवतः उसके लिए वह दिवस सबसे संकटपूर्ण जन्म मृत्यु की पीड़ा से भी अधिक पीड़ाकारक सिद्ध होगा। क्योंकि मृत्यु और जन्म न होने पर भी उसका क्षण पर क्षण मरण और क्षण में नवजीवन होता है।

आज अवधवासियों के लिए वही अन्तिम दिवस है--अवधि का शेष दिन। प्रत्येक व्यक्ति तपस्यामय जीवन व्यतीत कर रहा है--अपने सौन्दर्य रसाम्बुनिधि अखिल हेय प्रत्यनीक गुण गण-निधि-राम का दर्शन पाने के लिए। स्वभावतः उन्हें आशा थी कि प्रभु पैदल पधारेंगे। अवश्य शृंगवेरपुर पहुँचने पर श्री निषादराज हमें सूचित करेंगे। किन्तु कोई सूचना नहीं आई। उस समय की उनकी व्याकुलता, उत्कण्ठा अवर्णनीय है। दूत नहीं आया, फिर भी शकुन हो रहे हैं। कहीं क्षेमकरी ने शुभदर्शन देकर प्रिय आगमन की सूचना दी। तो कहीं श्यामा कल-कण्ठ से कूँजने लगी। उन्हें विश्वास हो गया कि आज अवश्य आ रहे हैं हमारे श्याम सुन्दर सजल जलद नील राघव। उनकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना।

वात्सल्यमयी अम्बा कौशल्या तो उन्मादमय जीवन बिता रही हैं। किसी सखी ने सूचना दी कि आज ही लाड़िले वत्स राघव के आने का मंगलमय दिवस है, किन्तु हाँ आज कोई शुभ पत्रिका निषादराज की सुनाने वाला नहीं। करुणा पूरित हृदय, क्षीण शरीर माँ के शरीर में अद्भुत शक्ति-संचार हो आया। महल गगनचुम्बी भवन के धौरहरे पर चढ़ गई। दक्षिण दिशा की ओर बड़ी ही व्याकुलता, उत्कण्ठा और व्यथा भरे नेत्रों से मार्ग निहार रही हैं। कोई पथिक दीख गया--माँ ने कहा सखि! बुलाओ तो उस पथिक को वह कहाँ से आ रहा है। हमारे राम के पास से न! अवश्य ही उसने अपनी माँ के सान्त्वन्दार्थ भेजा होगा उसे। किन्तु तभी देखती है कि पथिक तो दूसरी ओर जा रहा है। भयभीत होकर सोचती हैं, क्या सचमुच आज अवधि का अन्तिम दिन है?

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वै हैं।
चढ़ि धौरहर, बिलोकि दषिन दिसि, बूझ धौ पथिक कहाँते आएवै हैं।
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकिगात लागे लोचन च्वै हैं।
निज बासरनिबरष पुरवैगो बिधि, मेरे तहाँ करम कठिन कृत क्वै हैं।
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनिसुनि सुख स्वै हैं।
तुलसिदास मो सी कठोर-चित कुलिस-साल भंजनि को ह्वै है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मूर्च्छा आना चाहती है व्याकुलता के कारण, तभी क्षेमकरी आकर मँडरान लगी भवन के ऊपर। माँ को धैर्य होता है, प्रार्थना कर रही हैं उस क्षेमकरी से—

छेमकरी ! बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लषन कब ऐ हैं, अम्ब ! अवध रजधानी ।
ससि मुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि सोचनि बेद बखानी ।
देवि ! दया करि देहि दरश फल, जोरिपानि बिनवहिं सब रानी ।
सुनि सनेहमय बचन, निकट ह्वै, मँजुल मंडल के मँडरानो ।
शुभ मँगल आनन्द गगन-धुनि, अकनि-अकनि उर-जड़नि जुड़ानी ।
फरकन लगे सुअँग बिदिसि दिसि, मन प्रसन्न, दुख-दसा सिरानी ।
करहि प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु, मानि बिविध बलि सगुन सयानी ।

उनको पूर्ण विश्वास हो गया—रामभद्र के शुभागमन का।

पर यहाँ नन्दिग्राम में बैठे हुए चिर प्रतीक्षा संलग्न प्रेममूर्ति श्री भरत की स्थिति सबसे अधिक निराली है। उस भावुक शिरोमणि को भी सकुन हो रहे हैं, किन्तु उसका हृदय प्रसन्न न हो सका। क्योंकि अन्य लोग तो उस अवधि जहाज के यात्री हैं, पर इस तप-मूर्ति को तो नौका भी खेना है। चौदह वर्ष प्रतिक्षण अनवरत रीति से नाव को सकुशल खेता रहा यह नाविक इस आशा से कि इस समुद्र का भी एक छोर है। और उस छोर पर हमारे प्राणधन नव जलधर रुचिहारी करुण वरुणालय रामचन्द्र के दर्शन होंगे। पर आज कोई सूचना न प्राप्त होने से उसकी आशा निराशा में परिणित हो रही है। भूमि के दूर से भी दर्शन नहीं हो रहे हैं। पथिकों से उसकी व्याकुलता की तुलना नहीं हो सकती। उसका अंग-अंग निर्जीव हो रहा है। हा नाथ ! अब क्या होगा ? व्यथा भरे हृदय से विचार करने लगा वह नाविक—वह महाव्रती दीनता की प्रतिमूर्ति है। दूसरा होता तो उसके कण्ठ से निकल पड़ता—"हा निठुर ! तुझे थोड़ी भी परख नहीं किसी के हृदय की"—प्रेमी को ऐसा कहने का अधिकार है। वे कभी खीझकर व्याकुलता के आवेश में कह भी देते हैं—"बेदरदी तोहि दरद न आवै।" यह स्नेह-सिक्त वाणी प्रभु को बड़ी प्यारी लगती है। श्री किशोरीजी ने श्री हनुमान से कह ही तो दिया—

कोमल चित कृपालु रघुराई, कपि केहि हेतु धरो निठुराई।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर इस अनोखे प्रेमी के मन में तो यह भी नहीं आता। उसे तो स्वयं में ही सारा दोष दीखता है। राघवेन्द्र में नहीं। "आए क्यों नहीं"--मन ने उत्तर दे दिया कि "वे तो परम कारुणीक हैं, किन्तु हम जो कुटिल हैं"—

कारन कवन नाथ नहिं आयउ, जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।

बुद्धि ने कहा--"नहीं, वे तुम्हें कुटिल नहीं मानते। उन्होंने तो चित्रकूट में घोषणा कर दी थी कि उर आनत तुम पर कुटिलाई, जाई लोक परलोक नसाई। अतः ऐसा सोचना भ्रामक है।" मन चीत्कार कर उठा--"नहीं। नहीं--यह सब कुछ नहीं। यह तो प्रभु ने शिष्टाचार के कारण कह दिया होगा। वे सरल चित्त हैं, कैकेयी को भी कब उन्होंने बुरा कहा"--

दोष देहिं जननिहि जड़ तेई, जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।

क्या इससे उनकी सरलता व शिष्टाचार नहीं सूचित होता। बुद्धि ने कहा--"तुम्हारे पास है कोई प्रमाण कि तुम्हें वे कुटिल समझते हैं?" मन ने कहा है--अवश्य है। कार्य ही इसका प्रमाण है। मुझे साथ न ले जाकर लक्ष्मण को साथ में ले जाना ही सूचित करता है कि उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं। अहा! धन्य हैं लघु भ्राता लक्ष्मण! वे सच्चे चरणानुरागी हैं। इसी से तो साहचर्य के योग्य माने गए हैं"--

अहह धन्य लछिमन बड़ भागी, राम पदारबिन्द अनुरागी।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा, ताते नाथ सँग नहिं लीन्हा।

बुद्धि भी सहज में हार माननेवाली नहीं। उत्तर दे दिया--"किन्तु उन्होंने तो कह ही दिया था कि तुम जैसा कहो, मैं करूँगा। तुमने स्वयं साथ में जाने का निर्णय नहीं दिया, तो वे क्या करते?" मन घबराया--"हाँ। बात तो तर्कसंगत थी।" किन्तु तभी सस्मरण हो आया मन को एक घटना का--"हाँ! मैं जान गया वे क्यों नहीं आए। भले ही प्रारम्भ में मैंने कुटिलता न की हो। किन्तु जब प्राणप्रिय लक्ष्मण के प्राण संकट में थे, भक्तराज हनुमान औषधि लेकर जा रहे थे, तब मैंने क्या किया। दो-दो भक्तों का प्राणहारी मैं बनने जा रहा था। क्या यह साधारण अपराध है। यदि प्रभु मेरी इस करनी पर ध्यान दें, तो एक कल्प नहीं, सौ करोड़ कल्प में भी मेरा उद्धार न होगा"--

जौ करनी समुझै प्रभु मोरी, नहि निस्तार कल्प शत कोरी।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किन्तु तभी स्मरण हो आया भाववस्य प्रभु के स्वभाव का।

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ, दीन बन्धु अति मृदुल सुभाऊ।
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई, मिलिहहि राम सगुन शुभ होई।

राघव के करुणामय कोमल स्वभाव का स्मरण होते ही श्री भरत का हृदय आनन्दमग्न हो गया। अहा! मैं भी कैसा कुविचारी हूँ, जो अपनी ओर देखता हूँ। मैं चाहे जैसा होऊँ, किन्तु वे तो करुणापूरित हैं। अतः वे मुझ कपटी पर भी कृपा करेंगे ही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्य पुरवासियों की पीड़ा का निवारण किया सकुनों ने। किन्तु श्री भरत को शान्ति प्राप्त हुई। 'स्वभाव-स्मृति' से। सकुन उसमें सहायक मात्र हुआ।

श्री भरत को ही व्याकुलता हो ऐसी बात नहीं। इधर लंका विजय के पश्चात् प्रभु को भी कुछ अच्छा नहीं लगता है। विभीषण ने विश्राम की प्रार्थना की। किन्तु राघव के मुख से व्यथापूर्ण वाणी निकल पड़ी—

तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि, निमिष कलप सम जात।
तापस वेष गात कृष, जपत निरन्तर मोहि।
देखौं बेगि सो जतन करु, सखा निहारौं तोहि।
बीते अवधि जाउँ जौ, जिअत न पावौं बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर।

सारे शरीर में रोमांच हो आया——आँखों से आँसू बरस पड़े अपने लाड़िले भरत का स्मरण करके। पुष्पक विमान से यात्रा प्रारम्भ हुई। किन्तु उसकी गति भी प्रभु को मन्थर प्रतीत हो रही है। आशंका और भय से हृदय धड़क रहा है। यही आशंका कि यदि मेरे भरत ने प्राण छोड़ दिये, तो मैं जाकर क्या करूँगा? रहा नहीं गया। किसको भेजें? श्री हनुमान को छोड़ किसी अन्य की गति पर उन्हें विश्वास नहीं। अतः उनसे ही कहते हैं——

भरतहिं कुशल हमार सुनायउ, समाचार लै तुम चलि आयउ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अहा ! कितनी उत्कण्ठा है। सोचने लगे कहीं उस प्रेमी के साहचर्य में आनन्दमग्न हो यह मुझे विस्मृत न कर दें। तब मेरे प्राणप्रिय भरत का समाचार मुझे कैसे प्राप्त होगा। अतः आज्ञा देते हैं कि "समाचार लै तुम चलि आयउ।" श्री हनुमान पुलकित हो रहे हैं इस सौभाग्यमय सुअवसर की कल्पना से। "अहा ! आज मेरा कितना सौभाग्य है, जो मुझे सबसे पहले प्रेमी को 'सु-दर्शन' का सन्देश सुनाने का अवसर प्राप्त होगा।" भावमय कल्पना में विभोर होते हुए रसिकवर श्री अंजनीनन्दन नन्दिग्राम में पहुँच गए। देखते हैं कि--

दो० बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, श्रवत नयन जलजात।।

सजल जलद-सा श्याम वर्ण, कृश शरीर, आँखों से अनवरत अश्रुप्रवाह, मुख से 'राम'-'राम', 'हा राम' का भाव भरा उच्चारण। उस तपःपूत प्रेम-मय भावमूर्ति का दर्शन कर श्री हनुमान को हर्षातिरेक हो गया। प्रेम उमड़ पड़ा। दोनों नेत्र बरस पड़े--

देखत हनूमान अति हरषेउ, पुलक गात लोचन जल बरसेउ।

प्रेमी के इस प्रेम को देखकर विचारमग्न हो जाते हैं। कैसा भाव-रस-सागर है यह नवाम्बुद। चौदह वर्ष प्रतिक्षण अश्रुप्रवाह, चिन्तन, प्रजा-रक्षण किया है इस असिधार व्रती ने। हम लोगों में यह प्रेम, यह भाव, सेवा परायणता कहाँ ?

मन महँ बहुत भाँति सुख मानी, बोलेउ श्रवण सुधा सम बानी।

भाव आहलाद भरे शब्दों में प्रिय भक्त ने कहना प्रारम्भ किया—

जासु बिरह सोचहु दिन राती, रटहु निरन्तर गुन गन पाती।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता, आवत कुशल देव मुनि त्राता।
रिपुरन जीति सुयश सुरगावत, सीता सहित अनुज प्रभु आवत।

अहा ! वह पियूषा वाणी कर्ण में प्रविष्ट होते ही श्री भरत आनन्द-मग्न हो गए। अमृत से भी अधिक मधुर, चन्द्रमा से भी अधिक शीतल, वह

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वाणी श्री भरत के हृदय के समस्त दुखों का हरण कर लेती है। पर श्री भरत उठते नहीं। बैठे ही बैठे पूछते हैं—

को तुम तात कहाँ ते आए, मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।

आश्चर्य होता है कि इतना मंगलमय समाचार ले आनेवाले को प्रणाम नहीं। स्वागत नहीं। क्यों? श्री भरत की स्थिति तो उस समय बड़ी विलक्षण है। नेत्र बन्द हैं। आँसू बरस रहे हैं। उसी समय शब्द सुनाई पड़ता है—आनन्दमय, मंगलमय। किन्तु प्रेमी को प्रसन्नता के साथ सन्देह है कि कहीं मेरी व्याकुलता या भावना के कारण तो ऐसा नहीं सुनाई पड़ रहा है? पर हृदय कहता है—"कल्पना ही सही", किन्तु नेत्र इस भय के मारे नहीं खोलते कि कहीं सचमुच भावना न सिद्ध हो जाए। श्री हनुमानजी के शब्द सुनकर उन्हें यही भय होता है कि यह मेरी भावना ही है—

रामेति रामेति सदैव बुद्धया विचिन्त्य वाचा ब्रुबुनी तमेव ।
तस्यानुरूपं च कथा तदर्थमिवं प्रपश्यामि तथा श्रृणोमि ।
मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि (वाल्मीकि ५।३२।११–१३)

एक बहुत ही भावमय दोहा स्मरण आता है मुझे इस अवसर पर। कोई विरहिणी ब्रजांगना सयन-कक्ष में पड़ी सो रही है। स्वप्न में उसे ब्रजेन्द्र कुमार का दर्शन होता है और वे जगाने लगते हैं—किन्तु भावमयी गोपी नेत्र नहीं खोलना चाहती। क्यों, क्या रूठी है? नहीं, नहीं—नेत्र खोलने में उसे भय लगता है। किस बात का?

सपने में साईं मिले सोवत लिया जगाय ।
आँख न खोलूँ डरपती मति सपना होइ जाय ।।

अहा—कैसी मार्मिक व्यथा है "मति सपना होइ जाइ"। कहीं यह दर्शन स्वप्न न सिद्ध हो जाय? यही भावना इस समय हमारे प्रेममूर्ति की है। "मति सपना हो जाए।" नेत्र नहीं खोलते और आँखें मूँदे ही पूछते हैं—

को तुम तात कहाँ ते आए, मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।

परीक्षा हो गई—सत्यता की। क्योंकि उत्तर मिला।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना, नाम मोर सुनु कृपा निधाना।
दीन बन्धु रघुपति कर किंकर।

इतना सुनना था कि दौड़कर हृदय से लगा लेते हैं——

सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।

दो अनन्य भक्तों का मिलन है। एक दूसरे के प्रति श्रद्धापूरित हृदय से मिलते हैं। दोनों के हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा है। हृदय में न समा सका, तो नेत्र-मार्ग से छलक पड़ा——

मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता, नयन स्रवत जल पुलकित गाता।

श्री भरत अनुभव करते हैं कि मैं श्री हनुमान के समक्ष ऋणी हूँ। इस सन्देश के बदले में क्या दिया जा सकता है और स्नेह भरे शब्द में केशरी किशोर से कहते हैं——

कपि तव दरस सकल दुख बीते, मिले आजु मोहि राम पिरीते।
बारबार बूझी कुशलाता, तो कहुँ काह देउँ सुनु भ्राता।
एहि सन्देश सरिस जग माँही, करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं।
नाहिन तात उऋन मै तोही, जव प्रभु चरित सुनावहु मोहीं।

पूछते हैं प्रियतम प्रभु की मंगलमयी कथा और श्री हनुमान चरणों में प्रणाम कर के (हाँ कितना आश्चर्य——नियम तो यह है कि श्रोता वक्ता को प्रणाम करे, किन्तु मानो श्री भरत जैसा श्रोता पाकर वक्ता कृतकृत्य हो गया)। अतः दण्डवत् कर के प्रभु की विजय-कथा का वर्णन करते हैं——

तब हनुमन्त नाइ पद माथा, कहे सकल रघुपति गुन गाथा।

इसके पश्चात् ही दैन्यमूर्ति ने श्री हनुमानजी से लजाते हुए एक प्रश्न पूछा——

कहु कपि कबहुँ कृपालु गोसाईं, सुमिरहि मोहिं दास की नाईं।

कैसा नम्रता से भरा प्रश्न है। उनको जीवन में इससे बड़ा कोई सुख नहीं जान पड़ता कि प्रभु ने कभी दास रूप में उनका स्मरण कर लिया हो।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

श्री हनुमान तो भोले भाई भरत की इस सरल वाणी को सुनकर चरण पकड़ लेते हैं। अहा! यह नम्रता! जिनका गुण स्वयं राघव गाते हैं—

निज दास ज्यों रघुबंश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो।
सुनि भरत बचन विनीत अति, कपि पुलकि तन चरननि परयो।
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्गुन सिन्धु सो।

मन-ही-मन श्री भरत के सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए श्री हनुमान उत्तर देते हैं—जिसे सुनकर बार-वार पवनात्मज को श्री भरत हृदय से लगाते हैं। प्रसन्नता में सब कुछ विस्मृत हो गया। वह उत्तर था—

राम प्राण प्रिय नाथ तुम, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलन भरत सुनि, हरष न हृदय समात।

इसके पश्चात् दोनों प्रेमियों को कर्तव्य की स्मृति आई। श्री भरत नगर की ओर और श्री हनुमान राघवेन्द्र की ओर प्रस्थान करते हैं।

× × × ×

अयोध्या का कोना-कोना पुरवासियों की हर्षमय ध्वनि से मुखरित हो उठा। आज वियोगव्यथा रजनी का विहान है। ऊषा ने प्राची में अरुण गुलाल बिखेर कर मानो रवि-पथ को सुसज्जित कर दिया है। बस अब भगवान भुवन भास्कर उदित होनेवाले हैं। सुना है भानुकुल भूषण आज पुष्पक विमान से आ रहे हैं। लोगों के नेत्र विकसित हो ऊपर की ओर निहार रहे हैं। तोरण, बन्दनवार, कदली-स्तंभ से नगर सुसज्जित किया जा रहा है। आज राम आ रहे हैं। आज महाराजाधिराज पधार रहे हैं—प्राणवल्लभ के दर्शन होंगे—लाड़िले राम आ रहे हैं—मर्यादा पुरुषोत्तम आ रहे हैं। सब अपनी-अपनी भावना व कल्पना में निमग्न हैं। स्वागत के लिए दधि, दूर्वा, पुष्प, फल, मंगलमय धान्य स्वर्ण थालों में सजाए सुमुखि सुलोचनि ललनावृन्द कोकिलाधिक कमनीय सुकण्ठ से राधव की गुणगाथा गाती हुई राजपथ से चलीं। कहाँ! उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं। बस उनके कर्ण कुहरों में शब्द प्रविष्ट हुआ "नवाम्बुधर-रुचिहारी-रावणारि अवध पधार रहे हैं।" शीघ्रता से दौड़ पड़ी। हाँ!

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दौड़ी---आज मर्यादा कहाँ ? स्वयं नगरी भी आज सुसज्जित नव-वधू की भाँति पन्थ निहार रही है प्राण-प्रेष्ठ का। उल्लास, उत्कण्ठा, उमंग, प्रत्येक जन के अंग-अंग से फूटी पड़ रही है। सौरभ और शीतलता से सनी मधुर मन्द वायु बह रही है। सरयू भी आज समुज्वला हो गई। वियोग कृश होने पर भी उसके अंग तरंग में नवोत्साह है। इठलाती हुई तट पर सुशोभित तरुवृन्द तृण समूह के ऊपर शीतल जल का छींटा मार कर कहती है--"उठो--उठो। तुमने सुना नहीं आज आ रहे हैं हमारे नयनाभिराम सौन्दर्य सुधा सागर कोटि काम रमणीय राम। एक बार पुनः हम सब का भाग्य उदित हुआ है। यह तट उनकी मधुरवाणी से कूँजित हो उठेगा। तृण! अहा तुम साधारण भाग्यवान नहीं। उनके अनावृत श्री चरणों का स्पर्श प्राप्त करोगे, और तरु! तुम भी उनके श्री अंग का आलिंगन प्राप्त कर के धन्य होओगे। एक बार हमारी धारा में वे लोकपावन प्रभु पुनः क्रीड़ा करेंगे।" तरु झूम उठे--तृणों ने स्नान किया। हरित स्वच्छ होकर वे भी प्रतीक्षा मग्न हैं। बस चारो ओर प्रतीक्षा---उस समय उनके नयन चकोर जैसे सुधाकर के उदय की प्रतीक्षा में अधीर हो रहे हैं। महाकवि ने इस सुअवसर का अतीव मधुर चित्र अंकित किया है---मानस और गीतावली में---

हरषि भरत कोसल पुर आए, समाचार सब गुरुहि सुनाए।
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई, आवत नगर कुसल रघुराई।
सुनत सकल जननी उठि धाई, कहि प्रभु कुसल भरत समुझाँई।
समाचार पुरवासिन्ह पाए, नर अऊ नारि हरषि सब धाए।
दधि, दुर्बा, रोचन, फल फूला, नव तुलसी दल मँगल मूला
भरि भरि हेम धार भामिनी, गावत चलिं सिन्धुर गामिनी।
जै जैसहिं तैसहिं उठि धावहिं, बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।
एक एकन्ह कहँ बूझहि धाई, तुम्ह देखे दयाल रघुराई।
अवध पुरी प्रभु आवत जानी, भई सकल शोभा कै खानी।
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा, भई सरजू अति निर्मल नीरा।

इधर गीतावली में होनेवाले वार्तालाप का मधुर आनन्द देखिए---

सुनियत सागर सेतु बँधायो।
कोसल पति की कुसल सकल सुधि कोउ इकदूत भरत पहँलायो।

CC-0. In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

बध्यो विराध त्रिसिर खर दूषन सूर्पनखा को रूप नसायो ।
हति कबंध बल अंध बालि दलि कृपा सिन्धु सुग्रीव बसायो ।
सरनागत अपनाई बिभीषन रावन सकुल समूह बहायो ।
बिबुध समाज निवाजि बाँह दै बँदि छोर वर बिरद कहायो ।
एक एक सो समाचार सुनि नगर लोग जहँ तहँ सब धायो ।
घन धुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों बूड़त जलधि पार सो पायो ।
अवधि आजुयों कहत परसपर बेगि विमान निकट पुर आयो ।

× × × ×

प्रतीक्षा की बेला समाप्त हुई। पुष्पकयान भूमि पर उतरा। कोटि कन्दर्प कमनीय दूर्वादल द्युति तनु भगवान श्री रामचन्द्र यान से उतर कर पृथ्वी पर श्री चरण रखते हैं। श्री अवध की पावन भूमि आनन्दमग्न हो गई। किन्तु राघव की दृष्टि ढूंढ़ रही है 'किसी को'—और वह सामने नहीं है। लज्जित संकुचित छिपी दृष्टि से विप्रवृन्द के पीछे खड़ा रूप सुधा का पान कर रहा है। प्रभु इस समय प्रेमी को नहीं छेड़ते। धर्म धुरीण धनुष-बाण पृथ्वी पर रख कर गुरु चरणों की ओर गमन करते हैं। दौड़कर महर्षि के चरणों में लिपट जाते हैं। प्रत्येक ब्राह्मण की सादर अभ्यर्थना करते हैं। प्रेमी अधीर हो रहा है मिलने के लिए, पर तब भी उसे प्रभु की मर्यादा का ध्यान है। ब्राह्मणों से मिलन समाप्त होते ही प्रभु प्रेमी की ओर देखते हैं और प्रेममूर्ति चरणों से लिपट जाते हैं। राघव उठाकर हृदय से लगाना चाहते हैं—"भरत तुम्हारा स्थान यहाँ है—यहाँ देखो—मेरे हृदय में। लाल! उठो वत्स!" किन्तु प्रेमी अश्रु से भिगो रहा है उनके पाद-पद्मों को। छोड़ना नहीं चाहता—"न नाथ मेरे लिए यही उपयुक्त स्थान है। मैं इन्हें अब न छोड़ूंगा। तुम्हारे श्री चरणों को स्वतन्त्र न करूँगा। पता नहीं कब प्रस्थान कर दें।" राघव अपनी विशाल भुजा में भैया भरत को समेट कर मानो आश्वासन देते हैं कि "नहीं भरत अब तुम्हें छोड़कर जाने की कल्पना भी मेरे हृदय में न उठेगी। उठो! उठो! मेरे व्यथित हृदय को सन्तप्त न करो। शीतल करो।" और हठात् उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। दोनों के नेत्रों से अनवरत अश्रुप्रवाह हो रहा है। अहा! उस कमनीय चित्तहारी चित्र की कल्पना से ही हृदय न जाने किस रंग में डूब जाता है। दो हृदय प्रेमी और प्रियतम के, भक्त और भगवान के, भरत और राम के मिले हुए हैं। दोनों में कोई दूरी, कोई भेद

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रतीत ही नहीं होता। दोनों श्याम घन मिलकर एक अद्भुत रस वर्षा कर रहे हैं। जिसमें सारी अयोध्या और सारा नभमंडल भींग रहा है, आनन्द मग्न हो रहा है। अमृत बरस रहा है। प्रेमी रसिक जन पान कर रहे हैं इस दिव्य दृश्य का। उस समय वे उन्मत्त जैसे प्रतीत हो रहे हैं। उस चित्त-हारी दृश्य का वर्णन महाकवि इस प्रकार करते हैं——

गहे भरत पुनि प्रभु पद पँकज, नमत जिनहि सिव मुनि संकर अज।
परे भूमि नहिं उठत उठाए, बरि करि कृपा सिन्धु उर लाए।
श्यामल गात रोम भए ठाढ़े, नव राजीव लोचन जल बाढ़े।

छंद :– राजीव लोचन श्रवत जल तन ललित पुलिकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं, मिले प्रभु त्रिभुवन धनी।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहँ, जात नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगारु तनु धरि, मिले बरु सुषमा लही।
बूझत कृपानिधि कुशल भरतह्निं, बचन वेगिन आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते, भिन्न जान जो पावई।
अब कुशल कौशलनाथ आरत जानि जन दरशन दियो।
बूड़त विरह बारीस कृपा निधान मोहि कर गहि लियो।

स्नेह भरे शब्दों में राघव पूछते हैं——"वत्स भरत कुशल" . . . और कण्ठ रुद्ध हो गया। इधर प्रेममूर्ति की दशा तो और भी निराली है। उत्तर देना चाहते हैं, पर कण्ठ रुँध गया है। बड़ी कठिनाई से कहते हैं——"अब कु...श...ल कौशलनाथ आरत जानि जन दर...शन दियो——बूड़त बिरह बारीस कृपा निधान मोहि कर गहि लियो।"

इतनी कथा सुनाते-सुनाते भगवान शंकर का कण्ठ भी रुद्ध हो गया। प्रेमभरी भवानी ने कहा भगवत्! स्वयं न मग्न होइए। दासी पर भी कृपा हो। भूतभावन शिव ने कहा——प्रिये अहा! वह सुख वर्णनीय नहीं। हमारे लिए भी वह दुर्लभ है। "जान जो पावई" में कैसी मधुर ईर्ष्या है। सचमुच उस सुख का, उस मिलनानन्द का भागी विश्व में भरत को छोड़ और कौन हो सकता है। भरत से मिलकर प्रभु शोभित हुए। महाकवि कह देते हैं—— "जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि"——शृंगार प्रेम बिना सर्वथा नीरस है। व्यर्थ है। इसका एक बड़ा मधुर भाव है। साधारणतया शृंगार का आश्रय

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

माना जाता है काम और काम है दुखों का मूल। प्रभु के आने का प्रयोजन है लोगों का चित्त अपने इस दिव्य शृंगार के द्वारा लौकिक शृंगार से हटाकर अनन्त सौंदर्य माधुर्य रस सिन्धु स्वयं में डुबाकर अमर बना देना। इस अलौकिक शृंगार का वैशिष्टय श्री भरत जैसे प्रेमियों द्वारा ही सिद्ध होता है। लौकिक शृंगार विषयी और भोगी बनाता है। और इस अखिल रस सार शृंगार के उपासक हैं श्री भरत जैसे वीतरागी तपस्वी। अतः बिना इस प्रेमालिंगन के प्रभु भी शोभित नहीं होते हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,